

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

क्रम संख्या

काल न०

पृष्ठ

२३८५

३६०.८ चन्द्रिका

[illegible]

नाममाला

अनेकार्थनिघण्टुः एकाक्षगीकोशश्च



प० अम्भनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, सप्ततीर्थ

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

一、本行在2015年12月31日及2016年12月31日，均符合《公司法》及《证券法》规定的上市条件，不存在因重大违法违规行为被中国证监会予以行政处罚，或者涉嫌重大违法违规行为正被中国证监会立案调查或者尚未完结的严重证券市场违法违规行为的情形，不存在任何可能导致其不符合上市条件的重大违法违规行为。

{ मूत्र्य
साढे तीन रुपये

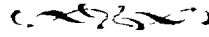
भारतीय ज्ञानपीठ काशी

स्व० गृण्यल्लोका माता श्री मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति में
तन्मपुत्र मेठ शान्तिप्रसाद जी द्वारा

संस्थापित

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश हिन्दी कन्नड तामिल आदि प्राचीन भाषाओं में
उपलब्ध आगमिक दार्शनिक पौर्णिक सार्धन्यिक और एतिहासिक आदि विविध विषयों पर
जनसार्धन्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन, उसका मूल और यथामुम्भव अनुवाद
आदि का साथ प्रकाशन होगा। जन भक्तों की सचिया जिलाध्य-
समूह विविध विद्वानों के अध्ययनग्रन्थ और लोकाहितकारी
जन सार्धन्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होंगे।



ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक (संस्कृत विभाग)
प्रो० महेन्द्रकुमार जैन, न्यायाचार्य, जैन-प्राचीनन्यायतार्थ, आदि
बौद्धदर्शनाध्यापक संस्कृत महाविद्यालय
हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

संस्कृत ग्रन्थाङ्क ६

प्रकाशक—

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,

दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस सिटी

मुद्रक—पृथ्वीनाथ भार्गव, भार्गव भूषण प्रेस, गायवाट, काशी।

स्थापनाद
फाल्गुन कृष्ण ९
वीर नि० सं० २४७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी १९४४

नाममाला



स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JNANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

SANSKRIT GRANTHA No 6

NAMAMALA

BY

MAHAKAVI DHANANJAYA

With the

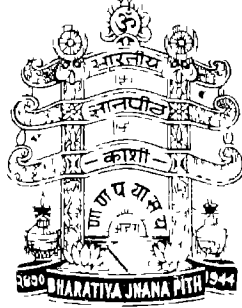
BHASHYA

OF

AMARAKIRTI

AND

The Anekathamghantu and Ekakshari Kosha



EDITED WITH NOTES

By

PD SHAMBHU NATHA TRIPATHI

Vyakaranacharya Supta Tirtha

Published by

BHARATIYA JNANA-PITHA KASHI

First Edition }
1000 Copies

CHAITRA VHSAMVAT 2176

VHSAMVAT 2007

APRIL 1950

{ *Price*
Rs 3 8

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

Founded by

SETH SHANTI PRASAD JAIN

In memory of his late benevolent mother

SHRI MOORTI DEVI

JNANA-PITHA MOORTI DEVI JAIN GRANTHAMALA

In this Granthamala critically edited, Jain agamic, Philosophical, Pauranic literary, historical and other original texts available in Prakrit, Sanskrit Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil Etc. will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies of competent scholars and Jain literature of popular interest will also be published

GENERAL EDITOR OF THE SANSKRIT SECTION

Prof. MAHENDRA KUMAR JAIN

VIJAYACHARYA, JAIN PRACHIN UCHAYATIRTHI Etc

**Professor of Bauddha Darshana, Sanskrit Mahavidyalaya
Banaras Hindu University**

SANSKRIT GRANTHA No. 6

Publisher

AYODHYA PRASAD GOYALIYA

SECY

BHARATIYA JNANAPITHA KASHI

DURGAKUND ROAD, BANARAS CITY

Founded in
Falgun Krishna 9,
Vir Sam 2470

}

All Rights Reserved

{ **Vikram Samvat 2000**
18th Feb 1944

FOREWORD

The Bharatiya Jnanapitha, Banaras, founded by Shri Shantiprasad Jain to perpetuate the memory of his mother Murtidevi, has undertaken an ambitious plan of scholarly publications dealing with all aspects of Ancient Indian Culture with a very broad outlook and vision, and has already issued a few works in various languages such as Sanskrit, Prakrit, Pali etc. The undertaking has secured a learned scholar of proved ability in Pandit Mahendra Kumar, Nyayacharya, of the Sanskrit Mahavidyalaya of the Banaras Hindu University as a General Editor. The Jnanapitha has already published a few works and has a number of others in active preparation.

The present volume contains two small works of the famous lexicographer Dhananjaya. The first is called N A M A M A L A, a collection of synonyms, while the other is called A N E K A R T H A—N A M A M A L A, recording words with plurality of senses. The first work contains just 200 stanzas, while the other is smaller still. The most important feature of the first work is that it publishes for the first time the Bhashyas of AMARAKIRTI, who gives etymological explanations of each and every word in the work, and adds a few more synonymous words from his own observation. His Bhashyas follows the same methods as are used by Ksurasvamin in his famous commentary on AMARAKOSA. The entire work is very carefully edited with appropriate references to authorities by Pandit Shambhunath Tripathi, a Saptatitha and also a Vyakanacharya of repute. On reading his foot-notes, I often felt that Pandit Tripathi exceeds the Bhasyakirta both in ingenuity and accuracy, nay, I would go further and say that his etymological explanations are happier still. I am sure the scholars will admire his work in the foot-notes.

The volume is further equipped with several indexes. They include naturally the word-indexes of both the works edited, but there are in addition index recording additional words from Amarakirti's Bhasya, a list of Yaugika words, a list of works and authors cited and a list of quotations cited in the work, all this being done by Pandit Mahadeva Chaturvedi, Vyakanacharya. In fact the editorial part of the volume is as thorough as is humanly possible, and I have nothing but high admiration for the ability of Pandit Mahendra Kumar, the General Editor, in securing such a team of scholars to produce this volume.

Banaras Hindu University
6th September 1949

}

P L VAIDYA, M A , D Litt,
Mayurbhanj Professor and Head of The
Department of Sanskrit & Pali.

प्राक्कथन

(हिन्दी अनुवाद)

अपनी पूज्य माता मूर्तिदेवीजी की स्मृति के लिए साहु शास्त्रिप्रसाद जी जैन द्वारा स्थापित भारतीय ज्ञानपीठ बनारस ने विद्वत्तापूर्ण प्रकाशनों की एक उत्साहवर्धक योजना हाथ में ली है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के विशाल दृष्टि व कल्पना वाले सभी अंगों का प्रकाशन इस योजना के अन्तर्गत है तथा अब तक इस मन्थ से संस्कृत, प्राकृत, पाली, आदि विभिन्न भाषाओं के कतिपय ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इस योजना के सम्पादन के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के सुयोग्य विद्वान् प० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, प्रधान सम्पादक के रूप में प्राप्त हैं। ज्ञानपीठ से अब तक कई एक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं और कई एक प्रकाशनों के लिए तैयार हैं।

वर्तमान ग्रन्थ में प्रसिद्ध कोशकार धनञ्जय की दो कृतियाँ सम्मिलित हैं। पहली नाममाला कहलाती है जिसमें पर्यायवाची शब्दों का सग्रह है और दूसरी अनेकार्थ नाममाला, जिसमें अनेक अर्थ-बोधक शब्दों का सग्रह है। पहली कृति में २०० श्लोक हैं जब कि दूसरी कृति उससे काफी छोटी है। प्रथम कृति का सम्बन्ध में उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इस पर लिखा गया अमरकीर्ति का भाष्य पहले पहल प्रकाश में आ रहा है। अमरकीर्ति ने नाममाला के प्रत्येक शब्दों की व्युत्पत्ति देकर स्पष्टीकरण किया है और अपनी दृष्टि में आए कुछ और पर्यायवाची शब्दों को शामिल कर दिया है। उनके भाष्य की वही सरणि पद्धति है जो कि अमरकोश की प्रसिद्ध टीका में क्षीरस्वामी ने अपनायी है।

सम्पूर्ण कृति का सम्पादन स्वातन्त्र्य पण्डित शम्भुनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सप्ततीय ने बड़ी सावधानी से तथा प्रमाणों का उपयुक्त उद्धरण देते हुए किया है। उनकी टिप्पणियों का अध्ययन करने से, मुझे अनेक बार प्रतीत हुआ है कि पण्डित त्रिपाठी—युक्ति और शुद्धि दोनों में कहीं-कहीं भाष्यकार को भी मात कर गये हैं, इतना ही नहीं, उनके व्युत्पत्ति संबंधी स्पष्टीकरण और भी अच्छे हैं। मुझे विदवास है कि विद्वान् लोग टिप्पणी में त्रिपाठी जी के प्रयत्न की प्रशंसा करेंगे।

ग्रन्थ में अनेक अनुक्रमणिका लगा दी गई हैं। उनमें सम्पादित दोनों कृतियों की शब्द सूची का सम्मिलित होना तो स्वाभाविक ही है परन्तु इसके अतिरिक्त अमरकीर्ति के भाष्य के अतिरिक्त शब्दों की सूची, योगिक शब्दों की सूची, उद्धृत ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ताओं की सूची तथा ग्रन्थ में उद्धृत वाक्यों की सूची भी सम्मिलित की गई है। यह सब पण्डित महादेव जी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्यने किया है। सूचमुच म ग्रन्थ का सम्पादकीय भाग उतना पूर्ण बना दिया गया है जितना मानवी शक्ति में संभव था। और इस सब के लिए मैं प्रधान सम्पादक पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य की योग्यता की सराहना करता हूँ जिन्होंने ऐसे ग्रन्थ के प्रकाशन में इस प्रकार की विद्वत्समृद्धि को एकत्रित किया है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
६ सितम्बर, १९४९

}

पी० एल० वैद्य
एम० ए० डी० लिट०
मयूरभञ्ज प्रोफेसर तथा
अध्यक्ष, संस्कृत पाली विभाग।

प्रस्तावना

“शब्दब्रह्मणि निष्ठात परब्रह्माधिगच्छति”—ब्रह्मबिन्दु०

शब्दब्रह्म में पारंगत व्यक्ति परब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। यह सिद्धान्त इस बात को सूचना देता है कि साधक को पहिले शब्दशक्ति और उसकी मर्यादा तथा भाव का ज्ञान आवश्यक है। यदि उसे शब्द के वाच्यार्थ भावार्थ और तात्पर्यार्थ की प्रक्रिया का बोध नहीं है तो वह भटक सकता है। वस्तुतः शब्द भावों के होने का एक लगड़ा वाहन है। जब तक सकेतग्रहण न हो तब तक उसकी कोई उपयोगिता ही नहीं है। एक ही शब्द सकेतभेद से भिन्न भिन्न अर्थों का वाचक होता है। इसीलिए दर्शनशास्त्रों में एक पक्ष यह भी उपलब्ध होता है कि शब्द केवल वक्ता की विवक्षा को सूचित करते हैं, पदार्थ के वाचक नहीं हैं। ‘घट’ शब्द का सकेत वक्ता ने जिस रूप में जिस श्रोता को ग्रहण करा दिया है उसी अभिप्राय का द्योतन वह शब्द उस श्रोता को करा देगा। शब्द विद्यमान अर्थ को भी कहता है और अविद्यमान को। एक खरनिषाण भी शब्द है जिसका अलङ्घ्य वाच्य पदार्थ इस ससार में नहीं है और घट शब्द भी है जिसका वाच्य घटा मौजूद है। अतः शब्द के सम्बन्ध में यह निश्चय करना कि—यह शब्द अर्थवाची है और यह अनर्थवाची-टेडी खोर है। फिर भी शाब्दिकों ने यह प्रयत्न किया है शब्द के सार्थकत्व और अनर्थकत्व का विवेक हो जाय।

उसका मुख्य उपाय है शक्तिग्रह या सकेतग्रहण। जिस अर्थ में जिम शब्द का सकेतग्रहण होता है वह उस अर्थ का वाचक हो जाता है। यह सकेत कब किसने ग्रहण कराया इसका निर्णय कठिन है। ईश्वर को सकेत ग्रहण कराने के लिए घमोटना श्रद्धा की वस्तु है। उसका इतना ही अर्थ है कि वृद्धपरम्परा से शब्द सकेत का ग्रहण बराबर होता आया है और वह अनादि है। उसमें विशेष हेर फेर होकर भी सामान्यतया सकेत की परम्परा अनादि है। जब से यह जीव है तभी से शब्दसकेत है। इस सकेतग्रहण के उपाय निम्न लिखित हैं —

“शक्तिग्रह व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च ।

वाक्यम्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति मान्निध्यतः सिद्धपदम्य वृद्धा ॥”

अर्थात्—व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष, विवरण और प्रसिद्ध शब्दके सान्निध्य से सकेत ग्रहण होता है। इनमें व्याकरण से यौगिक शब्दों का व्युत्पत्ति द्वारा सकेत ग्रहण हो भी जाय पर रूढ और योगरूढ शब्दों का सकेत ग्रहण व्याकरण से नहीं हो सकता। अन्ततः कोश ही एक ऐसा उपाय बचता है जिसमें सभी प्रकार के शब्दों का सकेत-ग्रहण हो जाता है।

कोश अर्थात् खजाना या भंडार। व्याकरण से सिद्ध या वृद्धपरम्परा से प्रसिद्ध कौंसे भी यौगिक रूढ या योगरूढ आदि शब्दों का अनेकार्थ के साथ सग्रह कोश में होता है। भाषा वही समृद्ध और जीवित समझी जाती है जिसका शब्द भंडार पर्याप्त हो और जिसमें व्यवहार और परमार्थ के लिए उपयोगी सभी शब्द विद्यमान हों। जिसमें अन्य भाषाओं के या विदेशी शब्दों के पचाने की या उन्हें स्व-स्वरूप करने की सामर्थ्य हो। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा उतनी समृद्ध नहीं बन सकी। इसका कारण यह रहा है कि इस भाषा पर एक वर्ग का प्रभुत्व रहा और उसने इसकी पाचन शक्ति को धर्म अधर्म के कल्पित बन्धन से जकड़ दिया था। उस वर्ग ने उस युग में प्रचलित अपभ्रंश और प्राकृत बोलियों का जो उस समय की जनबोलिया थीं उच्चारण करना पाप गोषित किया था। फिर भी संस्कृत की जो प्रकृति प्रत्यय उपसर्ग आदि के योग से शब्दोत्पादन शक्ति थी

उसीके कारण यह बन्धनबद्ध होकर भी विद्वद्भोग्य अवश्य बनी रही। संस्कृत को लोकभाषा का पद या सबकी बोली होने का सौभाग्य नहीं मिल सका। इस भाषा सम्बन्धी धर्मार्थम विचार ने संस्कृत के कोशागार को भी सीमित कर दिया।

भाषा के एकाधिकारियों ने तो यहाँ तक कह डाला है कि अपभ्रंश या अन्य लोकभाषा के शब्दों में वाचक शक्ति ही नहीं है। यष्टि का अपभ्रंश लट्ठी या लाठी है। ये लट्ठी या लाठी शब्द में वाचकशक्ति स्वीकार नहीं करना चाहते। इनका कहना है कि वाचकशक्ति तो 'यष्टि' शब्द में ही है। लट्ठी या लाठी शब्द सुनकर जो श्रोता को लाठी पदार्थ का ज्ञान होता है उसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम ही श्रोता लाठी शब्द को सुनकर संस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण करता है और फिर उस 'यष्टि' शब्द से पदार्थबोध होता है। अर्थात् ऐसे श्रोता को जिसने स्वप्न में भी 'यष्टि' शब्द नहीं सुना उसे भी लाठी शब्द से पदार्थ बोध के लिए संस्कृत 'यष्टि' शब्द का स्मरण आवश्यक है।

इस भाषाधारित वर्गप्रभुत्व से संस्कृत भाषा एक विशिष्ट वर्ग की भाषा बन कर रह गई। पा० महाभाष्य के पस्पश आह्निक में लिखा है कि—“तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छिन वै, नापभाषित वै, म्लेच्छो ह वा एष अपभ्रंशः।” अर्थात् ब्राह्मण को न तो म्लेच्छ शब्दों का व्यवहार करना चाहिए और न अपभ्रंश का ही। अपभ्रंश म्लेच्छ है। अपभ्रंश का विवरण भी वहीं यह दिया है—“यदि तावच्छब्दोपदेशं क्रियते, गौर्गव्येनस्मिन्पदिष्टे गम्यत एतद् गाव्यादयोऽशब्दा इति।” अर्थात्—गौ शब्द है और गावी गैया आदि अपभ्रंश है।

यद्यपि भाषा को संस्कृत रखने के लिए व्याकरण का संस्कार आवश्यक है तभी वह एक अपने निश्चित रूप में रह सकती है, लिंग और वचन का अनुशासन भी इसीलिए आवश्यक होता है, परन्तु उसके उच्चारण में किसी जाति विशेष का या वर्ग विशेष का अधिकार मानने से उसकी व्यापकता तो रक ही जाती है। नाटकों में स्त्री, शूद्रो तथा दामो से प्राकृत भाषा का बुलवाया जाना उक्त रूढ़ि का ही साक्षी है।

इतना ही नहीं, धर्मक्षेत्र में साधु शब्द अर्थात् संस्कृत शब्द का उच्चारण ही पुण्य माना गया। इसका यह महज परिणाम था कि धर्म का ठेका भी भाषा प्रभुत्व के द्वारा एक वर्ग विशेष को मिला। हुआ भी यही। धर्म का अधिकार और उससे अधिक सम्बन्ध एक वर्ग का हो गया।

इस सम्बन्ध में मौलिक क्रान्ति महाश्रमण महावीर और बुद्ध ने की। उनमें भाषा के इस कटिपत बन्धन को तोड़ कर जनभाषा में धर्म का उपदेश दिया और स्त्री शूद्र तथा पामर से पामर व्यक्तियों के लिए धर्म का क्षेत्र खोला। धर्म के उच्च पद के लिए जाति का कोई बन्धन इनने स्वीकार नहीं किया। इस भाषाक्रान्ति से प्राकृत भाषाओं का विकास हुआ। यह नहीं है कि प्राकृत भाषाएँ व्याकरण और लिंगानुशासन से मुक्त हो। उनके अपने व्याकरण हैं, अपने नियम हैं, जिनके अनुसार वे पल्लवित पुष्पित और फलित होती रही हैं।

महावीर और बुद्ध के काल से लेकर ईसा की तीसरी सदी तक प्राकृत भाषाओं की गति मिलती रही। अशोक के शिलालेख प्राकृत भाषा में उपलब्ध होते हैं। शासनादेश प्राकृत भाषा में चलते रहे हैं। पुन संस्कृत युग में इन भाषाओं की गति मन्द पड़ी। इस युग में जैन और बौद्ध आचार्यों ने भी ग्रन्थरचना संस्कृत में ही की। यही कारण है कि दोनों के विपुल साहित्य से संस्कृत का कोशागार भरा हुआ है। दार्शनिक क्षेत्र में उथल पुथल तो नागार्जुन विग्नाग समन्तभद्र सिद्धसेन अकलक आदि के ग्रन्थों से ही मची। तात्पर्य यह कि श्रमण परम्परा ने मध्यकाल में संस्कृत भाषा के विकास में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ—

नाममाला कोश का एक सुन्दर और व्यवहारोपयोगी आवश्यक शब्दों से समृद्ध ग्रन्थ है। महा-कवि धनञ्जय ने २०० श्लोकों में ही संस्कृत भाषा के प्रमुख शब्दों का चयन कर गागर में सागर भर दिया है। शब्द से शब्दान्तर बनाने की इनकी अपनी निराली पद्धति है। जैसे पृथिवी के नामों के आगे 'धर' शब्द जोड़ देने से पर्वत के नाम, 'मनुष्य' के नामों के आगे 'पति' शब्द जोड़ देने से राजा के नाम, 'वृक्ष' के नामों के आगे 'चर' शब्द जोड़ने पर बन्दर के नामों का बन जाना आदि।

इसपर अमरकीर्ति विरचित भाष्य सर्वप्रथम प्रकाशित किया जा रहा है। इस भाष्य में प्रत्येक शब्द की व्याकरणसिद्ध व्युत्पत्ति सूत्रनिर्देश पूर्वक बताई गई है। उणादि से सिद्ध हो या अन्य रीति से पर कोई भी शब्द निर्व्युत्पत्ति नहीं रह पाया है। इन व्युत्पत्तियों की प्रामाणिकता के लिए महा-पुराण, पद्मनन्दि शास्त्र, यशस्तिलक चम्पू, नीतिवाक्यामृत, द्विसन्धानकाव्य, बृहत्प्रतिक्रमण भाष्य, महाभारत, सूक्तिमुक्तावली, शब्दभेद, अनेकार्थध्वनिमञ्जरी, अमरसिंह भाष्य, आशाधर महाभिवेक, नीतिसार, शाश्वत, हैमीनाममाला आदि ग्रन्थों तथा यशकीर्ति, अमरसिंह, आशाधार, इन्द्रनन्दि, क्षीरस्वामी, पद्मनन्दि, श्रीभोज, हलायुध आदि ग्रन्थकारों को नाम निर्देशपूर्वक प्रमाणकोटि में उपस्थित किया है। अनेक व्युत्पत्तियाँ तो अमरकीर्ति की कल्पना के अच्छे उदाहरण हैं। यथा—

“अत्रिये क्षुद्रजन्तवोऽयं स्पर्शनेति मरुत्” अर्थात् जिसके स्पर्श से क्षुद्र जन्तु मर जाय वह मरुत् है।

“न नन्दति भ्रातृजाया यस्या मत्या सा ननान्दा” जिसकी मौजूदगी में भौजाई खुश न हो वह ननादा—ननद है।

“यज्ञाना पशुकारणलक्षणानामरि यज्ञारि” अर्थात् पशुयज्ञ का विरोधी महादेव है। आदि।

इसके साथ ही एक अनेकार्थ निघण्टु भी मुद्रित किया गया है। इसके अन्त में निम्नलिखित पुष्पिका लेख है —“इति महाकविधनञ्जयकृते निघण्टुसमये शब्दसंकीर्णं अनेकार्थप्ररूपणो द्वितीय-परिच्छेदः।” इसकी एक मात्र अशुद्धतम प्रति प० जुगलकिशोरजी मुस्तार अधिष्ठाता बीरसेवा-मन्दिर से प्राप्त हुई थी। रचना शैली आदि से यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह उन्हीं धनञ्जयकी कृति है, यद्यपि पुष्पिका वाक्य में स्पष्ट रूपसे धनञ्जय का उल्लेख है। इसके साथ ही एक अज्ञानकर्तृक एकाक्षरी कोष का भी मुद्रण किया है। इसकी हस्तलिखित प्रति भा बीर-सेवा-मन्दिर से ही प्राप्त हुई थी।

प्रस्तुत संस्करण—

अमरकीर्तिकृत भाष्य की एकमात्र अशुद्ध प्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन झालरा-पाटन से प्राप्त हुई थी। इसीके आधार से इसका सम्पादन प० शम्भुनाथजी त्रिपाठी ने किया है। संस्करण में जो अनेक परिशिष्ट हैं वे सब प० महादेवजी चतुर्वेदी व्याकरणाचार्य ने तयार किये हैं। टिप्पणियाँ प० शम्भुनाथ जी त्रिपाठी ने बड़े परिश्रम से लिखी हैं। मुझे यह लिखते हुए आनन्द होता है कि उनके सर्वतोमुखी अगाध पाण्डित्य का परिचय टिप्पणों में पद पद पर मिलता है।

ग्रन्थकार

[महाकवि धनञ्जय]

नाममाला के कर्ता महाकवि धनञ्जय हैं। इन्होंने स्वयं अपने किसी ग्रन्थ में अपने समय आदि के बारे में निर्देश नहीं किया है। ये गृहस्थ थे। द्विसन्धानकाव्य के अन्तिम श्लोक की व्याख्या में उसके टीकाकार ने धनञ्जय के पिता का नाम वसुदेव, माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ सूचित किया है। इनकी ख्याति 'द्विसन्धानकवि' के नाम से थी। नाममाला के अन्त में पाया जानेवाला यह श्लोक स्वयं इसका साक्ष्य है --

“प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।

द्विसन्धानकवे काव्य रत्नत्रयमपरिचमम्॥”

अर्थात्-अकलङ्कदेव का प्रमाण शास्त्र, पूज्यपाद का लक्षण-व्याकरण शास्त्र और द्विसन्धानकवि का द्विसन्धानकाव्य ये तीनों अपूर्व रत्नत्रय हैं। यह श्लोक नाममाला के भाष्यकार अमरकीर्ति के सामने था, उनमें इसकी व्याख्या भी की है। इसमें इनका उप-नाम 'द्विसन्धानकवि' सूचित किया गया है। टीका भी है, क्योंकि महाकवि धनञ्जय की सर्वश्रेष्ठ चमत्कारिणी कृति द्विसन्धानकाव्य ही है। वादिराज सूरि ने पार्श्वनाथ चरित के प्रारम्भ में द्विसन्धान काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है -

‘अनेकभेदसन्धाना खनन्तो हृदये मूढ ।

वाणा धनञ्जयोन्मुक्ता कर्णस्येव प्रिया कथम्॥”

अर्थात् धनञ्जय के द्वारा कहे गए अनेक सन्धान-अर्थभेद वाले और हृदयस्पर्शी वचन कानों को ही प्रिय कैसे लगेंगे जैसे कि अर्जुन के द्वारा छोड़े जाने वाले अनेक लक्ष्यों के भेदक मर्मभेदी वाण कण को प्रिय नहीं लगते ?

द्विसन्धान काव्य अपने समय में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इसका उल्लेख धारा-धीश भोजराज के समकालीन आचार्य प्रभाचन्द्र ने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४०२) में किया है।

जल्हण (१२वीं सदी) विरचित सूक्ति मुक्तावली में राजशेखर के नाम से धनञ्जय की प्रशंसा में निम्नलिखित पद्य उद्धृत है --

‘द्विसन्धाने निपुणता स ता चक्र धनञ्जय ।

यया जात फल तस्य सता चक्रे धनञ्जय ॥’

इस श्लोक में राजशेखर ने धनञ्जय के द्विसन्धानकाव्य का मनोमुग्धकर सरणि में उल्लेख किया है।

धनञ्जय कवि के द्वारा एक विषाणहार स्तोत्र भी बनाया गया है। यह अपने प्रसाद ओज और गाम्भीर्य के लिए प्रसिद्ध है। कहते हैं कि यह स्तोत्र कवि ने अपने सर्पदंष्ट पुत्र का विष उत्तारने के लिए बनाया था।

समयविचार-

इनके समय निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रमाण हैं --

- (१) प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि के रचयिता प्रभाचन्द्र (ई० ११वीं सदी) ने इनके द्विसन्धान-काव्य का उल्लेख किया है अतः ये ११वीं सदी के बाद के विद्वान् तो नहीं हैं।

- (२) इसी तरह वाविराज सूरि (सन् १०३५) ने पाश्वनाथ चरित में धनञ्जय और द्विसन्धान का निर्देश किया है अतः ये ११वीं सदी के बाद के नहीं हैं ।
- (३) जल्हण (१२वीं सदी) ने राजशेखर के नाम से सूक्तिमुक्तावली में जो पद्य उद्धृत किया है, वह राजशेखर काव्यमीमांसाकार राजशेखर हैं । इनका उल्लेख सोमदेव (ई० ९६०) के यशस्तिलक चम्पू में पाया जाता है अतः राजशेखर का समय ई० १०वीं सदी सुनिश्चित है । राजशेखरके द्वारा प्रशंसित होने के कारण धनञ्जय का समय १०वीं सदी के बाद का नहीं हो सकता ।
- (४) डॉ० हीरालालजी ने षट्छंदागम प्रथम भाग की प्रस्तावना (पृ० ६२) में यह सूचित किया है कि जिनसेन के गुरु वीरसेन स्वामी ने धवला टीका (पृ० ३८७) में अनेकार्थ नाममाला का निम्नलिखित श्लोक प्रमाणरूप में उद्धृत किया है —

“हेतावेव प्रकाराद्यै व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भाये ममाप्तौ च इतिशब्द विदुर्बुधा ॥”

यह श्लोक अनेकार्थ नाममाला का है । धवलाटीका वि० स० ८७३ सन ८१६ में समाप्त हुई थी अतः धनञ्जय का समय ९वीं सदी के बाद नहीं हो सकता ।

- (५) धनञ्जय ने अकलक देव का उल्लेख ‘प्रमाणमकलङ्कुस्य’ श्लोक में किया है । अकलक का समय ई० ७वीं सदी निश्चित है, अतः धनञ्जय ७वीं सदी से पूर्व के नहीं हो सकते ।

संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास के लेखकद्वय ने धनञ्जय का समय ई० १२वां शतक का मध्य निर्धारित किया है । (पृ० १७४) उनमें अपने इस मत की पुष्टि के लिए डॉ० के० बी० पाठक महाशय का यह मत भी उद्धृत किया है कि—“धनञ्जय ने द्विसन्धान महाकाव्य की रचना ई० ११२३ और ११४० के मध्य में की है” । पर उपरोक्त प्रमाणों के आधार से धनञ्जय का समय ई० ८वीं सदी का अन्त और नवीं का पूर्वार्ध सिद्ध होता है । जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में जो ई० १२वीं सदी की रचना है, राजशेखर के नाम से उद्धृत ‘द्विसन्धाने निपुणता’ श्लोक काव्यमीमांसाकार राजशेखर का ही हो सकता है, न कि प्रबन्धकोश के कर्ता राजशेखर का । संस्कृत साहित्य के इतिहास के लेखकद्वय यहाँ भ्रान्ति कर बैठे हैं, वे स्वयं जल्हण को १२वीं सदी का विद्वान् लिखकर भी उसमें उद्धृत राजशेखर को १४वीं सदी का जैन राजशेखर बताते हैं ।

अतः धनञ्जय का समय उपर्युक्त प्रमाणोंके आधार में ई० ८वीं का उत्तर भाग और नवीं का पूर्व भाग प्रमाणित होता है ।

भाष्यकार अमरकीर्ति—

महापण्डित अमरकीर्ति ने नाममाला के भाष्य के अन्त में यह पुष्टिका वाक्य लिखा है—
“इति महापण्डितश्रीमदमरकीर्तिना त्रैविद्येन श्री ऐन्द्रवशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृताया धनञ्जयनाममालायां प्रथमकाण्ड व्याख्यातम्” इससे इतना ही ज्ञात होता है कि अमरकीर्ति ‘त्रैविद्य’ उपाधि से विभूषित थे और वे सेन्द्रवश (सेनवश) में उत्पन्न हुए थे ।

इन्होंने अपने को ‘शब्दवेधा’ उपाधि से अलङ्कृत किया है ।

मंगल श्लोको में पूज्यपाद अकलङ्क विद्यानन्दि और समन्तभद्र के साथ ही साथ एक कल्याण-

१ इसी के आधार से कल्पद्रुकोश की प्रस्तावना (P XXXII) में श्री रामावतार शर्मा ने भी धनञ्जय का समय १२वीं सदी लिखा है ।

कीर्ति को भी नमस्कार किया है। इन्होंने ग्रन्थ के बीच में जहाँ आवश्यकता भी नहीं है वहाँ भी अपना नाम देने में सकोच नहीं किया है। कई स्थानों पर धनञ्जय के श्लोको की उत्थानिका में भी “सम्प्रति मनुष्यवर्ग आरभ्यते अमरकीर्तिना” (पृ० १३) आदि लिखा है। जो स्पष्टतः भ्रम उत्पन्न करता है। एक जगह तो धनञ्जय के इस श्लोकाश की व्याख्या करते हुए स्वयं अपना ही नाम लिख दिया है—“वारिधिवर्ण्यतेऽधुना। अधुना इदानीं वारिधिवर्ण्यते कथ्यते। केन भाष्यकर्त्रा श्रीमदमरकीर्तिना। स्पष्टतया यहाँ ‘केन’ का उत्तर ‘धनञ्जयेन’ होना चाहिए था।

अमरकीर्ति नाम के तीन विद्वानों का पता लगता है—

(१) ‘छक्कम्मोवएस’ आदि ग्रन्थों के रचयिता अमरकीर्ति^१। इन्होंने वि० स० १२४७ भादो सुदी १४ के दिन छक्कम्मोवएस ग्रन्थ समाप्त किया था। अर्थात् ये ईसवीय १२ वीं सदी के अन्तिम भाग और तेरहवीं के प्रारम्भ में विद्यमान थे। ये अमितगति आचार्य की परम्परा में हुए हैं। इनकी गुरु परम्परा यह है :—अमितगति, शान्तिषेण, अमरसेन, श्रीषेण, चन्द्रकीर्ति और चन्द्रकीर्ति के शिष्य अमरकीर्ति।

(२) वर्धमान के प्रगुरु अमरकीर्ति। इनकी परम्परा इस प्रकार है^२। . रेवेन्द्र विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, धर्मभूषण, अमरकीर्ति, . धर्मभूषण वर्धमान। वर्धमान ने शक संवत् १२९५ बैशाख सुदी ३ बुधवार को धर्मभूषण की निषद्या बनवाई थी। इस शिलालेख के अनुसार अमरकीर्ति का समय शक १२५० के आसपास सिद्ध होता है। ये ईसवीय १४वीं सदी के विद्वान् थे। इनके इस समय का समर्थन शक १३०७ में उत्कीर्ण विजयनगर के शिलालेख से भी होता है।

(३) दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति। इनके सम्बन्ध में दशभक्त्यादिशास्त्र में लिखा है :—

“जीयादमरकीर्त्यख्यभट्टारकशिरोमणि ।

विशालकीर्तियोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविद ॥

अमरकीर्तिमुनिविमलाशय कुसुमचापमदाचलवज्रभृत् ।

जिनमनापहृत्नारितमाञ्च यो जयति निर्मलधर्मगुणाश्रय ॥”

अर्थात्—शास्त्रकोविद विमलाशय कामजेता निर्मलगुण और धर्म के आश्रय तथा जिनमतके प्रकाशक अमरकीर्ति भट्टारक विशालकीर्ति के सधर्मा थे।

विशालकीर्ति के पिता विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४०३ सन् १४८१ में हुआ था। यह उल्लेख दशभक्त्यादि महाशास्त्र में विद्यमान है^३। अतः उनके पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति का समय करीब सन् १४५० अर्थात् ईसवीय १५ वीं शताब्दी सिद्ध होता है^४। दशभक्त्यादि शास्त्र का समाप्तिकाल १४०४ शक अर्थात् १४८२ ई० है।

१ देखो डा० हीरालाल का ‘अमरकीर्तिगणि और उनका षट्कर्मोपदेश’ लेख। जैन मि० भास्कर भाग २ अंक ३।

२ जैन शिलालेख संग्रहका १११वाँ शिलालेख।

३ प्रशस्तिसंग्रह के सम्पादक प० के० भुजबली शास्त्री ने ‘शाके वल्लिखराब्धिचन्द्रकलिते सवत्सरे’ का अर्थ शक १४६३ किया है। जब कि दशभक्त्यादि शास्त्र की समाप्ति सूचक ‘शाके वेदखराब्धिचन्द्रकलिते’ का अर्थ १४०४ शक किया है। दोनों जगह ख का शून्य लेना चाहिये। यदि दशभक्त्यादि शास्त्र शक १४०४ में समाप्त हुआ है तो उसमें शक १४६३ में हुई विद्यानन्द की मृत्यु की चर्चा कैसे आ सकती है?

४. देखो प्रशस्तिसंग्रह, पृ० १२८।

इन तीन अमरकीर्ति में प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता छक्कम्मोवएस के रचयिता नहीं हो सकते क्योंकि उनका काल वि० १२४७ के आसपास है। जब कि नाममाला के भाष्य (पृ० ६२) में आशाधर के महाभिषेक से उद्धरण दिया है। आशाधर ने अपना अनगारधमामृत वि० १३०० में समाप्त किया था। अतः प्रथम अमरकीर्ति इस ग्रन्थ के रचयिता नहीं हो सकते।

इस से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के भाष्यकर्ता अमरकीर्ति वि० १३०० अर्थात् ईसवीय १२४३ तेरहवीं सदी के पहिले के विद्वान् तो नहीं हैं। इन्होंने भाष्य में भोज (११वीं सदी) इन्द्रनन्दि (१०वीं सदी) पद्मनन्दि (१२वीं सदी) सोमप्रभ (१२वीं सदी) हेमचन्द्र (१२-१३वीं सदी) आदि के ग्रन्थों से भी नामोल्लेख पूर्वक अवतरण लिए हैं। शेष दो अमरकीर्ति पृथक् पृथक् लिखित तो हैं ही। द्वितीय अमरकीर्ति की प्रशंसा में विजयपुर के शिलालेख में निम्नलिखित पद्य मिलते हैं—

“शिव्यस्तस्य गुरोरासीदनर्गलतपोनिधि ।

श्रीमानमरकीर्त्यार्यो देशिकाग्रेसर शमी ॥

निजपक्षपुटकवाट घटयित्वानलरोधतो हृदये ।

अविचलितबोधदीप तममरकीर्ति भजे तमोहरणम् ॥”

अर्थात्—अमरकीर्ति महान् तपस्वी शान्त और लम्बी समाधि लगानेवाले योगी थे। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि ये अमरकीर्ति शास्त्रकार की अपेक्षा योगी और तपस्वी ही विशेष रूप से थे। नाममाला भाष्य में जिस प्रकार की यशोलिप्सा टपकती है वह एक योगी और तपस्वी में नहीं हो सकती। अतः मेरे विचार से द्वितीय अमरकीर्ति भी प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता नहीं हैं।

तृतीय अमरकीर्ति के वर्णन में ‘शास्त्रकोषिद’ विशेषण उनके पाण्डित्य का निर्देश कर रहा है। अतः हमारे प्रकृत ग्रन्थकार दशभक्त्यादि महाशास्त्र के रचयिता वर्धमान के समकालीन, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्ति के सधर्मा अमरकीर्ति हैं। ये सन् १४५० के आसपास अर्थात् पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् थे। इस समय का साधक एक प्रमाण यह भी हो सकता है कि इनने कल्याणकीर्ति को नमस्कार किया है। कल्याणकीर्ति का एक जिनयज्ञफलोदय ग्रन्थ मिलता है।^१ उसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि ये भट्टारक ललितकीर्ति के शिष्य थे। कल्याणकीर्ति ने जेट सुदी ५ शक सवत् १३५० में जिनयज्ञफलोदय समाप्त किया था। अर्थात् सन् १४२८ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था। यदि यही कल्याणकीर्ति अमरकीर्ति के द्वारा स्मृत हुए हैं, तो मानना होगा कि अमरकीर्ति पन्द्रहवीं सदी के विद्वान् हैं।

आभार—

इस ग्रन्थ के सम्पादक प० शम्भुनाथजी त्रिपाठी व्याकरणाचार्य सप्ततीर्थ अनेक शास्त्रों के गभीर विद्वान् हैं। वर्षों तक उनमें जैन विद्यालय इन्दौर में साहित्य और व्याकरण का अध्यापन कराया है। वे जैन परम्परा से पूरी तरह परिचित हैं। उनके जैसे अगाध ज्ञानी निरहङ्कारी और विद्याजीवी विद्वान् विरल हैं। उनके तलस्पर्शी गभीर पाण्डित्य का निदर्शक यह संस्करण है। ज्ञानपीठ इस ग्रन्थ के सम्पादक के रूप में उन्हें पाकर गौरवान्वित है।

डॉ० पी० एल० वैद्य ने इस ग्रन्थ का प्राक्कथन लिखकर हमें उपकृत किया है। प० हर-गोविन्दजी शास्त्री व्याकरणाचार्य ने अनेकार्थ निघण्टु का सम्पादन किया है। प० महादेव चतुर्वेदी ने सम्पादन परिशिष्टनिर्माण और प्रूफ सशोधन में पूरा योग दिया है। प० राजनन्दनजी मिश्र व्याकरणाचार्य ने भी प्रेस कापी आदि में पूरा सहयोग दिया है। गुलाबचन्द्रजी व्याकरणाचार्य एम० ए०

१ देखो प्रशस्ति संग्रह पृ० १६।

ने प्राक्कथन का हिन्दी अनुवाद किया है। पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने अनेकार्थनिघण्टु और एकाक्षरी कोश की प्रति भेजी। पं० श्रीनिवासजी शास्त्री ने भाष्य की प्रति भेज कर अनुगृहीत किया है।

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक सेठ शान्तिप्रसाद जी तथा अध्यक्ष सौ० रमा रानी जी की संस्कृतिनिष्ठा, उदार दृष्टि, ज्ञानानुराग और सौजन्य इस संस्था के जीवन है। अपनी स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी के स्मरणार्थ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के संस्कृत विभाग का यह छठवाँ ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इस भद्र दम्पति से ऐसे ही अनेक लोकोदयकारी सांस्कृतिक कार्यों की आशा है।

इस संस्था के कर्मनिष्ठ मन्त्री श्री अयोध्याप्रसाद जी गोयलोय की कार्यदृष्टि, सत्प्रेरणा और प्रयत्न से इस संस्था का इस रूप में सञ्चालन हो रहा है। मैं इन सब का आभार मानता हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
पोष शुक्ल १५
वीर स० २४७६
३।१।५०

}

—महेन्द्र कुमार जैन
ग्रन्थमाला सम्पादक

प्रकाशन-व्यय

४००) कागज २० रीम २२×२९/३२ पौण्ड	५८५।।।) कार्यालय व्यवस्था प्रूफ सशोधन आदि
१७५) छपाई पृष्ठ १९६ दर ५०) प्रति फार्म	४२६=) सम्पादन
२००) जिल्द बंधाई	५००) भेंट आलोचना, विज्ञापन आदि
६०) कवर छपाई	७८७।।) कमीशन
४०) कवर कागज	

कुल लागत ३९३४।=)

१००० प्रति छपी। लागत एक प्रति ३।।।=)

मूल्य ३।।)

सभाष्या नाममाला

अनेकार्थनिघण्टुः एकाद्वारी कोशश्च

महाकविधनञ्जयप्रणीता नाममाला अमरकीर्तिविरचितभाष्योपेता

श्रीपूज्यपादमकलङ्कमनन्तबोध विद्यादिनन्दिनमिन च समन्तभद्रम् ।
कल्याणकीर्तिममल प्रणिपत्य वीर भाष्य करोमि परम बुधबुद्धिसिद्धये ॥ १ ॥

सरस्वत्या, प्रसादेन रच्यतेऽमरकीर्तिना ।

भाष्यं धनञ्जयस्येदं बालानां धीविवृद्धये ॥ २ ॥

यद्यपि धनञ्जयो (येनो) क्तो भावो वक्तुं न शक्यते ।

५

तथाऽप्यहं प्रवक्ष्यामि वाग्देव्याश्च प्रसादतः ॥ ३ ॥

पूर्वाचार्यकृता प्रायो व्युत्पत्तिरुपदिश्यते ।

क्वापि क्वापि स्वबुद्ध्याऽपि क्षम्यतामत्र मे बुधैः ॥ ४ ॥

शिष्टासमाचार (ष्टाचार) परिपालनाय नमस्कारसमुद्गतधर्मद्वारेण निर्विघ्नशास्त्रसमाप्त्यर्थं
च धनञ्जयबुधः इष्टाधिकृतदेवतानमस्कारार्थं श्लोकमाह—

१०

तन्नमामि परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ।

उन्मूल्यत्यविद्यां यद् विद्यामुन्मीलयत्यपि ॥१॥

तत्परं ज्योतिः—

“णमो^१ अरहताण णमो सिद्धाणं णमो आइरियाण । णमो उवज्झायाणं णमो लोण सव्वसा-
हूण ॥” ईदृग्विधम् । नमामि नमस्करोमि । किंविशिष्टम् ? अवाङ्मनसगोचरम् वाक् च वाणी मनस^२ १५
च चित्तवाङ्मनसे तयोर्वाङ्मनसयोर्न गोचरं न प्रत्यक्षीभूतम् अवाङ्मनसगोचरम् अलक्ष्यस्वरूपत्वात् ।
तथा चोक्तं शब्दभेदे—

“नभन्तु^३ नभसा सार्धं मनस मनसाऽपि च । तमसेन तमः प्रोक्तं तपन्तु तपसा सह ॥”

तथा च पद्मनन्दिशास्त्रे—

“स्वानुभूत्यै भवेद् गम्य रम्य यक्षात्मवेदिनाम् । जाने तत्परं ज्योतिरवाङ्मनसगोचरम् ॥” २०

१ एतत्पञ्चनमस्कारात्मकमन्त्रप्रतिपाद्यमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधारुरूपमत्र ज्योतिः । २ नभ तु
नभसा सार्धमित्यादिशब्दभेदोक्तप्रमाणतोऽकारान्तोऽपि मनसशब्दः साधु । ३ साम्प्रतं निरुणयसागरयन्त्रा
लयमुद्रिते शब्दभेदप्रकाशग्रन्थे एतत्पद्यं किञ्चिदन्यथोपलब्धम् । तदित्यम्—

कुमुद कुमुदा चापि योषित्याद् योषिता सह । तमस्तु तमसा प्रोक्तं रजसाऽपि रजः स्मृतम् ॥ ३४ ॥
अत्र कालप्रकर्षायपि मनसशब्दः प्रभ्रष्टस्तथापि तदानीन्तनमूलपुस्तके तत्तथैवासीदिति ध्रुवम् ।
४. प० प० २२।१।

यत् अविद्यां पापविद्याम्, चातुकारसूत्रम्, वैद्यकसूत्रम्, चित्रकर्मादिसूत्रम्, नृत्यसूत्रम्, गन्धर्व-
सूत्रम्, पटङ्गसूत्रम्, अगदसूत्रम्, योद्धसूत्रम् मद्यसूत्रम्, धूतसूत्रम्, राजनीतिसूत्रम्, चतुरङ्गसूत्रञ्च । गज-
तुरगपुरुषलोचुत्रगोखड्गदण्डाञ्जनानां [च विद्या पापविद्या] कथ्यते, ताम् **उन्मूलयति** मूलादुच्छेदयति ।
यत् 'विद्यामपि उन्मीलयति स्थापयतीत्यर्थः ।

५

द्वयं द्वितयमुभयं यमलं युगलं युगम् ।

युगं द्वन्द्वं यमं द्वैतं पादयोः पातु जैनयोः ॥२॥

दश युग्मे । द्वा अवयवौ यस्य तद् **द्वयम्**, “द्वित्रिभ्यामयङ् वा^२ ।” **द्वितयम्** द्वौ अवयवौ
यस्य तद् द्वितयम् । **उभयम्** उभौ अवयवौ यस्य “द्वित्रिभ्यामयङ्” इत्यनुवर्तमाने “उभाभ्या नित्यम्^३”
इत्ययद् न तु तयद् । **यमलं** यमं लातीति यमलम् । **युगलं** युगं लातीति युगलम् । युगड् युगडक च । **युगं**
१० युज्यते धर्मवृत्त्या युगम्^४ । समाश्रयत्यन्य युगम् । **युगम्** युनक्ति द्वितीयेन युज्यते श्लिष्यते युगम् ।
“युजिरुचित्तिजा धमक्” ।^५ **द्वन्द्वम्** द्वौ द्वावित्यर्थः द्वन्द्वम् । यच्छ्रुयुपरमत्येकत्वात् **यमम्** । द्वाभ्यामित
द्वीतम्, द्वीतमेव **द्वैतम्** । **पातु** रक्षतु ।

ऋषिर्मुनिर्यतिर्भििक्षुस्तापसः संशितो व्रती ।

तपस्वी संयमी योगी वर्णी माधुश्च पातु वः ॥३॥

१५

द्वादश मुनौ । ऋषिर् कालत्रयं जानातीति ऋषिः । “गिषिशुचिगृनाभ्युपधात्किः^६” । तथा
च यशस्तिलके^७—

‘रेपणात्केशराशीनामृषिमाहुर्मुनेषिणः ।’

यतिः यो देहमात्रारामं सम्यग्विद्यानौलाभेन तृष्णामग्निरक्षणाय योगाय शुक्लध्यानधर्म-
ध्यानाय यतते स यतिः^८ । तथा च यशस्तिलके —

२०

‘यः पापपाशनाशाय यतते स यतिर्भवेत् ।’

मुनिः, तपःप्रभावात् सर्वैरन्यते मुनिः । “मन्यतेः किरत उच्च^९ ।” तथा च—

‘‘मान्यत्वादाप्तविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः ।’

भििक्षु भिक्षते इत्येवशीलो भिक्षुः । “सन्नन्ताशसिभिक्षाम्^{१०} ।” **तापसः**, तपो विद्यते यस्य
स तापसः । “अण्^{११} च ।” तपःसहस्राभ्यां न केवलमस्त्यर्थं विनीनां अण् च, वृद्धिः । **संशितः** सशायते
२५ स्म संशितः । “‘‘श्यतेव्रते नित्यम् ।’ व्यवस्थितविभाषया शो तनूकरणे इत्यस्य व्रतेऽर्थे नित्यमिकारो
भवति, विकल्पो नास्ति । **व्रती**, “हिसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्^{१२} ।” व्रतं विद्यतेऽस्य
व्रती । **तपस्वी** “अनशनावमौदयेवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यामनकायक्लेशा बाह्य
तपः^{१३} ।” “प्रायश्चित्तचिन्तयन्नेयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ।” तपश्च विद्यते यस्येति
तपस्वी । **संयमी**, सयमनं सयमः इन्द्रियप्राणलक्षणः । सयमो विद्यते यस्येति **सयमी** । **योगी**, * युजिर्^{१४}

१. यत् इत्यस्य पूर्वम् ‘तथा’ इति पदं योज्यम् । २. हे० श० ७।१।२५। ३. एतत्सूत्रं हे०
श० नोपलब्धम् । परंतु द्वित्रिभ्यामयङ्वा इत्यनुवर्तमाने उभाभ्यां नित्यमिति टीकोनवचनात्तत्स्यमेवै-
तत्सूत्रमिति निश्चीयते । ४. कालवाचकयुगपरतयेव व्युत्पत्तिः, प्रकृतार्थे तु युगं लातीत्येव । ५. का० उ०
१।५७ इति धमक् प्रत्ययः कुत्व च । ६. गृनाभ्युपधात्किः का० उ० ३।१५ इति किप्र० । ७. यशस्तिल०
आ० ८. का० ४४ । ८. यती प्रयत्ने । इः सर्वधातुभ्यः का० उ० ३।१४ इप्र० । ९. यश० आ० ८ कल्प
४४ । १०. का० उ० ४।३ इति किप्र० । मनुः अवबोधने । ११. यश० आ० ८ कल्प ४४ । १२. का०
सू० ४।४।५१ । १३. पा० सू० ५।२।१०३ । १४. इत्येतिव व्रते नित्यमिति पातञ्जलभाष्यम् ७।४।४१ ।
१५. त० सू० ७।१ । १६. त० सू० । १७. त० सू० । १८. *एवञ्चिह्निताशस्थाने युजिर् योगे रुधादौ
परस्मैपदी युज् समाधौ वा दिवादौ आत्मनेपदी इत्येवभाष्ये । सुगमः ।

योगे, युज समाधौ परं युज् समाधौ वा० दि० । आत्म० युज् रुधादौ । परं युज समाधौ वा दि० ।
आत्म० * युक्ति युज्यते वा इत्येवंशील योगी । युजभजेत्यादिना विनिर्ण । वर्णा, वर्णा ब्रह्मचर्यमस्त्यस्य
वर्णा । साधुः, शिष्याणा दीक्षादिदानाध्यापनपराङ्मुख सकलकर्मोन्मूलनसमर्थो मोक्षमार्गाऽनुष्ठानपरो य.
स साधु । सिद्धि साधयति साधययिष्यति वा साधुः ।

“स व्याख्याति न शास्त्रं न ददाति दीक्षादिक च शिष्याणाम् ।

५

कर्मोन्मूलनशक्तो [धर्म] ध्यानः स चात्र साधुर्ज्ञेयः ॥”

“कृपापाजिमीत्वदिसाध्यशूद्रपण्डितजनिचरिचटिभ्य उण्” । वो गुप्मान् पातु रक्षतु ।

दीक्षितं मौण्ड्यं शिष्यं च तमन्तेवासिनं विदुः ।

चत्वारः शिष्ये । [दीक्षितम्] दीक्षा सजाताऽस्येति । तारकितादिदर्शनात्सजातेऽर्थ इतच् ।
मौण्ड्यम् मुण्डे मस्तके भव वपनादिक मौण्ड्यम् । शिष्यम्, शिष्यते व्युत्पाद्यते गुरुणा शिष्यः । १०
“वृज्जुगुणीण्शामुस्तुगुहा क्यप्” । गुरोरन्ते वसत्यन्तेवासी तम् । विदुः, कथयन्ति ।

कृतान्ताऽगमसिद्धान्ताः

त्रयः सिद्धान्ते । लोकाना सन्देहस्य कृतः अन्तो विनाशो येन सः कृतान्तः । आगच्छतीत्यागमः,
आगमनमागमो वा । सिद्धान्तो [सिद्धोऽन्तो] निधयो यस्य स सिद्धान्तः, समयोऽपि । सर्वे पुति ।

ग्रन्थः शास्त्रमतः परम् ॥ ४ ॥

१५

ग्रन्थाति रचयतीति ग्रन्थः । शास्त्रि शास्त्रम् ।

भूमिर्भूः पृथिवी पृथ्वी गह्वरी मेदिनी मही ।

धरा वसुमती धात्री क्षमा विश्वम्भराऽवनिः ॥ ५ ॥

वसुधा धरणी क्षोणी क्षमा धरित्री क्षितिश्च कुः ।

कुम्भिनीलोर्वग चोर्वी जगती गौर्वसुन्धरा ॥ ६ ॥

२०

समाविशतिभूमौ । भवति सर्वमत्र भूमिः । “ऊर्मिभूमिरभ्यय १ ।” भवत्यस्मात्सर्व भूः ।
रेफान्तद्वाव्ययम् । प्रथमे पृथिवी पृथ्वी च । गृह्यतीति गह्वरी । रुहरीति पाठः । न्याये मेयति स्निह्यति
मधुकैटभमेदोयोगाद् वा मेदिनी । मध्यते मही । मह पूजायाम् । धरत्यगान् धरा । वस्त्यस्या
वसुमती । दधाति सगृह्णाति भेषजाय वैद्यो यामिति धात्री । “कर्मणि” घेट् धृन् । “कचिद्घातेरपीच्छन्ति।
क्षमण क्षमा ० । “पाऽनुबन्धमिदादिभ्यस्त्वङ्” । विश्वं विभर्ति विश्वम्भरा । “नाम्नि तुभृजिधारि- २५
तपिदमिसहा सजायाम् २ ।” स्वप्रत्ययः । भूतानवति अवनिः । स्त्रियामीः । “ऋतृसुवृज्वस्यविवृति-
ग्रहिव्योऽनि ।” अनि. प्रत्ययः । वसु दधातीति वसुधा । धरति पर्वतानिति धरणिः । “वृजोऽनिः १५ ।”
क्षोति क्षुपम् क्षोणिः । स्त्रियामी । क्षोणी । “वृ क्षु रु कु शब्दे” । क्षमते भार क्षमा क्षमा च । धरति
सर्व धरित्री । क्षयति क्षय प्राप्नोति प्रलयकाले क्षितिः । कायति कूयते वा कुः । कुम्भो रत्नोत्पत्तिप्रो-
ऽस्त्यस्याः कुम्भिनी । एति जन इमाम् इला । “इगसुराकपिलिकादिदर्शनात्त्वत्वम् ।” “शृङ्गादयः— ३०

१. युजभजशुजद्विषट्ठट्टहाङ्क्रीडत्यजानुरुधाड्यमाट्माड्यसरज्जाऽभ्याट् ह्ना च इति पूर्ण का०
सू० ४।४।२२। २. का० उ० १।१। ३. तदस्य सजात तारकादेरितच् इति का० सू० पू० सू० ५०८ ।
४. मौण्ड्यमस्यास्तोत्वपि विग्रहे निवेश्यम् । अर्श आदिभ्योऽच् । ५ वा० सू० ४।२।२३ । ६. ग्रथ्यते
रच्यते इति कर्मणि विग्रहो योग्यः । ७ का० उ० ३।३२ इति भवतेर्मिप्र० क्त्व च । ८ गृह्यतीति गह्वरी
रुहरी इत्यपि पाठ इति युक्तम् । ९ का० सू० ४।४।६० इति धृन् । १० वस्तुवस्तु क्षमते इति क्षमा,
पचादित्वादच्, टाप् । ११ का० सू० ४।५।८२ । १२. का० सू० ४।३।४४ । १३ का० उ० २।४३ ।
१४ का० उ० २।४३ ऋतृसुवृज् इत्यादयूत्रम् । १५. का० उ० २।१७ ।

“शूद्रोऽथ वज्रविप्रभद्रगौरमेरीराः” एते रक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । क्लेशमुर्वति दिनस्ति फलेन उर्वरा । उर्वी । उर्वीं । उर्वीं दुर्वीं । दुर्वीं हिसार्थाः । सर्वमूर्वति व्याप्नोति उर्वीं । क्षियामी. उर्वीं । राजान्तर गच्छति जगतिः । क्षियामीः, जगती । पूजा गच्छति गौः । क्षीनोः । गमेडोः । “गौरौ धुटि” इत्यौत्वम् । धृज् धारणे । धृः । धरति धरते । इज् । अस्य वृद्धिः । धारि जातम् । वसु वसुनि वा धारयति वसुन्धरा । नाम्नि
 ५ तृभू०^२ खप्रत्यय । कारितस्या०^३ कारितलोपः । अभिधानात् ह्रस्वः । “ह्रस्वा ‘रुषोर्मो’ऽन्तः ।” “क्षिया” मादा ।” भूतधात्री, रत्नगर्भा, विपुला, सागराम्बरा, रत्नवती, रसा, अचला, अनन्ता, डयाम्— काव्यपी, गोत्रा, स्थिरा, सर्वसहा ।

तत्पर्यायधरः शैलस्तत्पर्यायपतिर्नृपः ।

तत्पर्यायरुहो वृक्षः शब्दमन्यं च योजयेत् ॥ ७ ॥

- १० योजयेत् योजयेत् अन्यं शब्दं च । तत्पर्यायधरः शैल । भूमिधर, भूधरः, पृथिवीधरः पृथ्वीधरः, गह्वरीधर, मेदिनीधर, महीधरः, धराधरः, वसुमतीधर, धात्रीधरः, विश्वम्भराधरः, अरुणधरः, वसुधाधरः, धरणीधर, क्षीणीधर, क्षमाधर, धरित्रीधरः, क्षितिधरः, कुधरः, कुम्भिनीधरः, इलाधरः, उर्वराधरः, उर्वीधरः, जगतीधरः, गोधरः, वसुन्धराधरः । सप्तविंशति नामानि शैलस्य ज्ञेयानि । तत्पर्यायपतिर्नृप । भूमिपतिः, भूपति, पृथिवीपतिः, पृथ्वीपति, गह्वरीपति, मेदिनीपतिः, महीपति, धरापति, वसुमतीपति, धात्रीपतिः, क्षमापति, विश्वम्भरापति, अरुणपति वसुधापतिः, धरणीपति, क्षीणीपति, क्षमापति, धरित्रीपति, क्षितिपति, कुपति, कुम्भिनीपतिः, इलापति, उर्वरापति, उर्वीपति, जगतीपति, गोपति, वसुन्धरापति । सप्तविंशति नामानि नृपस्येति ज्ञातव्यानि । तत्पर्यायरुहो वृक्षः । भूमिरुहः, भूरुहः, पृथिवीरुहः, पृथ्वीरुहः, गह्वरीरुहः, मेदिनीरुहः, महीरुहः, धरारुहः, वसुमतीरुहः, धात्रीरुहः, क्षमारुहः, विश्वम्भरारुहः, अरुणरुहः, वसुधारुहः, धरणीरुहः, क्षीणीरुहः, क्षमारुहः, धरित्रीरुहः, क्षितिरुहः, कुरुहः, कुम्भिनीरुहः, इलारुहः, उर्वरारुहः, उर्वीरुहः, जगतीरुहः, गोरुहः, वसुन्धरारुहः । सप्तविंशतिपर्यायनामानि वृक्षस्येति ज्ञातव्यानि ।
- २० दरीभृदचलः शृङ्गी पर्वतः मानुमान् गिरिः ।

नगः शिलोच्चयोऽद्रिश्च शिखरी त्रिककुन्मरुत् ॥ ८ ॥

- द्वादश पर्वते । दरीं बिभर्त्तति दरीभृत् । स्वस्थानात् न चलति अचल । शृङ्गमस्यास्तीति
 २५ शृङ्गी । पर्वणि सन्त्यस्य पर्वत । “पर्वमरुभ्या त ।” सानुरस्यस्य सानुमान् । जल गिरतीति गिरिः । “गूनाभ्युपधात्कि ।” न गच्छतीति नग । “डोऽभ्यामपि ।” नाम्भ्युपपदे गमेडो भवति । शिला उच्चयन्तेऽत्र, शिलोच्चय । खम् आकाशम् अतीति अद्रि । “भून्वदिभ्य कि ।” शिखरमस्त्यस्य शिखरी । त्रिक पृष्ठाधर स्कुम्भाति विस्तारयतीति त्रिककुत् । वर्णविकारत्वाद् भकारस्य ँतकार । स्तम्भु । स्तम्भस्कुम्भस्कुम्भस्कुम्भश्नुश्चेति वक्तव्यमत्राम्य धातो प्रयोग ।” म्रियन्ते क्षुद्रजन्तवोऽस्य
 ३० स्पशेनेति मरुत् । “मृधोरुति” । शैल, क्षितिधर, गोत्रः, आहार्यः, कुप्रः, प्रावा ।

प्रस्थं पार्श्वं तटं सानुर्मेखलोपत्यका तटी ।

नितम्बमन्तो दन्तश्च तद्वानपि गिरिः स्मृतः ॥ ९ ॥

१ का० सू० २।२।३३ । २ नाम्नि तृभूवृजिधारितपिदमिसहा सञ्चयाम् इति पूर्णं का० सू० ४।३।४४ । ३ कारितस्यानामिड्विवरणे इति पूर्णम् का० सू० ३।६।४४ । ४ का० सू० ४।१।२२ । ५ का० सू० २।४।४० । ६ पर्वमस्तस्त श० च० सू० ४।१।७३ । ७ का० उ० ३।१३ । ८ का० सू० ४।३।४७ । ९ का० उ० ३।५० । १० वर्णविनाशेन सकारस्य लोपोऽपि बोध्यः । ११ श० च० २।१।९६ । त्रीणि ककुदानि शृङ्गाण्यस्येति विग्रहोऽन्यत्र । त्रिककुत्पर्वते पा० सू० ५ । ४।१।४७ इत्यकारलोपः । १२ का० उ० १।३० ।

पर्वतमेखलाया दश । प्रस्थीयते जनेनात्र प्रस्थम् । “^१ नाग्निस्थश्च” क । उभयम् । पाति रक्षति जनान् **पार्श्वम्** । तदति उच्छ्रिय गच्छति **तटम्** । त्रिषु लिङ्गेषु । सनोतीति **सानु** । ^२ कृवापा-जिमीम्बदिसाध्यशूहषणिजनचरिचटिभ्य उष् । “षण् दाने” अस्य धातो प्रयोगः । मेहनस्य ख तस्य मा लातीति निरुक्तिः । मिनोति प्रक्षिपति कामिचित्तानिति वा **मेखला** । **उपत्यका** उप समीपे भवा उप-त्यका । “^३उपाधिभ्या त्यक्त्रासन्गारूढयोः ।” तटमस्यास्ति तटी । क्रीडार्थं जनस्ताम्यतीति ^४ **नितम्बः** । ^५ **अमतीत्यन्तः** । “^६मृगृवाहस्यमिदमिलूप्र्यस्तः ।” एभ्यस्तत्प्रत्ययो भवति । दम्यतेऽ (भ) च्यतेऽनेन **दन्तः** । “^७मृगृवाहस्यमिदमिलूप्र्यस्तः ।” तत्प्रत्ययः । **तद्वानपि गिरिः स्मृतः** । प्रस्थवान्, पार्श्ववान्, तटवान्, सानुमान्, मेखलवान्, उपत्यकावान्, तटीमान्, नितम्बवान्, अन्तवान्, दन्तवान् ।

राजाधिपः पतिः स्वामी नाथः पण्डितः प्रभुः ।

ईश्वरो विभुगीशानो भर्तेन्द्र इन ईशिता ॥१०॥

१०

चतुर्दश राज्ञि । न्यायमार्गेण राजते इति **राजा** । “^१वृषितक्षिराजिबन्विप्रदिवियुभ्यः कनिः ।” को यण्वद्भावार्थः । एभ्यः कनि प्रत्ययो भवति । अधि ऐश्वर्यं पाति रक्षतीति **अधिप** । तथा च उपसर्गवृत्तौ-अधि **वशीकरणाधिपानाध्ययनैश्वर्यस्मरणाधिक्तेषु** । पात्यवति **पति** । “पातेर्डीति । अस्माङ्-डितिभ्यो भवति । “**अमु गतां**” सुपूर्वः । शोभनममतीति **स्वामी** । “**भावमेरिन् दीर्घश्च** ।” साधुपदे अमेधानोरिन् प्रत्ययो भवति । नाथयति रिपु **नाथः** । “**तृहि वृहि वृद्धौ**” । दो वृद्ध । अत एव वृद्धः ^{१५} परिपूर्वान् परिवृ इति परिवर्हति स्म वा **परिवृद्ध** । “^२गत्यर्थां” इति क । “^३परिवृद्धदो प्रभुबलवतो” एतौ प्रभुबलवतोरर्थयोर्थयासख्य निपात्येते । परिपूर्वस्य वृद्धेरिडभावो नलोपश्च । वृहवृहोः प्रकृत्यन्तर-योरपीत्यन्ये । ये तु प्रकृत्यन्तरयोरिच्छन्ति, तेषाम्मते “**वृह वृहि वृह वृहि वृह वृद्धौ**” इति पाठान्तर वर्तते । तेन पाठान्तरेण वृहस्य वृहस्य वा “**वृद्धः वृद्धः**” इति निपातः । तत्र वर्हति स्म वर्हति स्म इति वाक्य क्रियते । प्रभवतीति **प्रभुः** । “^४मुवो दुर्विशम्प्रेषु च” । “^५डानुग्रन्धः” ऊकारलोपः । “**ईश ऐश्वर्यं**” ईष्टे इत्येवशील ^{२०} **ईश्वर** । “^६कशिपिनिभासीशस्याप्रमदा च ।” एषा वरो भवति तच्छीलादिषु । विभवतीति **विभु** । दुप्रत्ययः । ईष्टे शक्नोति सृष्टिस्थितिप्रलयान् कर्तुम् **ईशानः** । आश्रितजनान् विभर्ति पोषयति **भर्ता** । इन्दति परमैश्वर्ययुक्तो भवतीति **इन्द्रः** । “^७स्फायितश्चिवज्जिशकिक्षिपिधुदिरुदिमदिमन्दिचन्नुन्दीन्दिभ्यो रक् ।” एतीति **इनः** । “^८इण्जिकृपिभ्यो नक् ।” ईष्टे **ईशिता** ।

अनोकहस्तरुः शाखी विटपी फलिनो नगः ।

२५

द्रुमोऽङ्घ्रिपः फलेग्राही पादपोऽग्नो वनस्पतिः ॥ ११ ॥

द्वादश वृक्षे । अनसः शकटस्य अक गति हन्तीति **अनोकहः** । “^१अनोकहप्रत्ययेन वा **अनोकहः** । तरन्त्यनेनातप **तरुः** । “^२भृमुतृचरिस्त्वितिनिमम्निशीङ्भ्य उ ।” शाखाः सन्त्यस्य **शाखी** । विटपो विस्तारो-

१ का०सू० ४।३।५। वस्तुतस्तु नाग्नि स्थश्चेति कप्रत्ययस्य कर्तरि विधानादत्र घञर्थे कविधान-मिति क । २ का०उ० १।१ । ३. पा० सू० ५।२। ३४ इति त्यक्त् प्रत्ययप्राप् च । ४. क्रीडार्थं जनैस्त-म्यते काङ्क्षते इति कर्मणि विग्रहो न्याय्य । ५ का० उ० ४।२७ । ६ का० उ० २।३ । ७ उ० वृ० ११ । ८ का० उ० ३।५२ इति पातेर्डीतिप्र० टिलोपश्च । ९ का०उ० ६।६८। पाणिनीयैस्तु स्वामिन्नैश्वर्यं पा०सू० ५।२।१२६ इति त्वशब्दादामिन्प्रत्ययेन साधितः । स्वमैश्वर्यमस्यास्तीति विग्रहः । १०. गत्यर्थार्कर्मकश्लि-पशीङ्ल्यासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च इति पूर्णं का० सू० ४।६।४९ । ११. का०सू० ४।६।९५ । १२ का० सू० ४।४।५९ । १३. डानुग्रन्धेऽन्त्यस्वरदेर्लोप इति पूर्णं का० सू० २।६।४२ । १४. का० सू० ४।४।४७ । १५ का० उ० २।१४ । १६ का० उ० २।५१ । १७ अन प्राणने । अनिति श्वामोच्छ्वास करोतीति । अन धातोरानोकहप्रत्यय औणादिक इत्यपेक्षिताशः । १८. का० उ० १।५ ।

- ८ स्वस्य विटपी । फलानि सन्त्यस्य फलिनः । ^१“फलवर्हान्यामिनच्” न गच्छतीति नगः । ^२“डोऽ-
सशायामपि” । द्रवति वृद्धि गच्छति अथवा द्रुवृद्धैकदेशोऽस्यास्तीति द्रुमः । अङ्घ्रिभिश्चरणैः पिबति
पाति वा अङ्घ्रिपः । अङ्घ्रिपश्च । फलानि गृह्णातीति फलेग्राही । अभिधानादीर्घः । ^३“फलमलरजःसु
ग्रहेः” पादैः पिबति पानीय पादपः । न गच्छतीत्यगः । ^४“नगस्याऽप्राणिनि वा” विकल्पेन नकारलोपः ।
५ वनस्य पति वनस्पतिः । “पारस्करादित्वात्सुट् । महीरुहः, कुटः, शालः, पलाशी, दुः, वृक्षः, कुजः,
विष्टरः, अगश्वापि ।

तत्पर्यायचरो ज्ञेयो हरिर्वलिमुखः कपिः ।

वानरः स्रवगश्च गोलाङ्गूलोऽथ मर्कटः ॥१२॥

- एकोनविंशति नामानि हरौ । अनोकहचरः, तरुचरः, शाखिचरः, विटपिचरः, फलिनचरः,
१० नगचरः, द्रुमचरः, अङ्घ्रिपचरः, फलेग्राहिचरः पादपचरः, अगचरः, वनस्पतिचरः । इत्यादिद्वादशनामानि
मर्कटस्य ज्ञेयानि । हरतीति हरिः । “इ सर्वधातुभ्यः” वलयो मुखेऽस्य वलिमुखः । कम्पते वायुना शरीरे
कपिः । “अहिक्म्प्योर्नलोपश्च” । आभ्यां कि प्रत्ययो भवति नलोपश्च । वन वनति सम्भवते वानरः
नरोऽपि । लवेन उ-फालेन गच्छति प्लवगः । “डोऽमज्ञायामपि” च । गा भूमिं लङ्घतीति गोलाङ्गु-
लम् । गोलाङ्गुलं यामां गोलाङ्गुलं उणादित्वात् “लगे” दीर्घश्च । “भृङ् प्राण-यागे” । ध्रियते मर्कटः ।
१५ ‘जटा’ ‘मर्कटो’ एतावत्प्रत्ययान्तौ निपात्येते । वनौका । प्लवङ्गम् । कीशः । शाखादृगः ।

विपिनं गहनं कक्षमण्य कानन वनम् ।

कान्तागमटवी दुर्गम्

- नव वने । वेण्यते कण्यते मयेनात्र विपिनम् । ^१“वेपितुर्होहस्वञ्च” इतीनच् । उणादौ
उप्यते । ^२“यृजिनाऽजितेरिणविपिनतुहिनमहिनानि” । एतानि द्वनप्रत्ययान्तानि निपात्यन्ते । गगान्ते
२० मुगादिभिर्गहनम् । उभयम् । कषति वर्पति कक्षम् । अर्पते गम्यते श्वापदैः अरण्यम् । प्रतिप्राप्यन्ति अत्र
वा अरण्यम् । ^४“अर्तैरन्य” अस्मादन्य प्रत्ययो भवति । उभयम् । कन्यते गम्यतेऽस्मिन् काननम् ।
वन्यते सेव्यते घनम् । कान्तम् जलान्तम् गच्छति इच्छति वा कान्तागम् । अट्प्रत्ययस्यामटवि । स्त्रियामीः ।
अटवी । दुःखेन महता कष्टेन गम्यते दुर्गम् । नानाऽर्थे । सत्रम्, हव्यम्, दावम्, अरण्यानी, फलम्
(^{१६} अफलम्) ।

१. पान० भाष्य० ५।२।१२२ । २ का०सू० ४।३।८७ इति गमेर्डः । ३. का०सू० ४।२।४७
अनेन ग्रहेण् । एव सति वृद्धयभावात् फलेग्रहि रिति रूपं सम्भवति । तत्राभिधानादीर्घ इति टीकाकारः ।
तथाभिधायकवचनाभावात्कोपान्तरेषु फलेग्रहीति दीर्घरहितस्यैव दर्शनाच्च फलेग्राहीति रूपं चिन्त्यम् ।
४ नेहश्च किमपि सूत्रं कातन्त्रे । नगोऽप्राणिनि वा इति हे० श० सू० ३।२।१२७ । ५ पारस्करप्रभृतीनि
च सज्ञायाम् पा० सू० ६।१।१५७ । ६ अत्र अ० चि० ४।१८० प्रमाणम् । तदुक्तम्-वृक्षोऽग शिखरो
च शाखिफलदावर्हिर्द्रुद्रुमो जीर्णोऽर्विटपी कुटः क्षितिरुहः कारस्करो विष्टरः । नन्द्यावर्तकरालिकौ तरुवस्
पर्णो पुलक्यहिपः सालानोकहगच्छपादपनगा रूक्षागमौ पुष्पदः ॥ इति । ७ का० उ० ४।४। ८ का०
सू० ४।३।४७ । ९ खर्जिकृषिमसिपिञ्जादिभ्य ऊरीलौ का० उ० ३।६० इत्युल्ल० उणादित्वात्लगे दीर्घश्चेति
दुर्गवृत्तिः । १०. का० उ० ३।५८ । ११ पा० उ० २।५५ । १२ का० उ० २।२२ । इतीनप्रत्यय वपे-
कारेकारश्च । १३. गाहू विलोडने । बहुलमन्यत्रापीति युच् । कृच्छ्रगहनयोरिति निर्देशादध्रस्वः ।
१४ का० उ० ३।२ । १५ कानयति दीपयति स्मरादि । कनी दीप्तौ । युच् । कम् जलम् अनन जीवनमस्य
वेति विग्रहोप्युक्तः । १६ फलपुष्परहिते वन्ध्य-अवकेशि अफल शब्दाः कल्पद्रुकोशे दृष्टाः । तदुक्तम्—

“नवार्थाफलपर्यायोऽवकेशी वन्ध्य इत्यपि । फलपुष्पैर्विरहित एते वन्ध्यादयस्त्रिषु ॥

तच्चरः स्याद् वनेचरः ॥१३॥

चरशब्देन युक्ते शवरस्य नव नामानि । विपिनचरः, गहनचर, कक्षचर, अरण्यचरः, कान-
नचर, वनचर, कान्ताग्रचर, अटवीचर, दुर्गचर ।

पुलिन्द शवरो दस्युर्निपादो व्याधलुब्धकौ ।

धानुष्कोऽथ किरातश्च सोऽरण्यानीचरः स्मृतः ॥१४॥

पोलति भ्रमति महत्त्व याति गच्छति पुलिन्दः । पुलिन्दश्च । शवति^१ निर्दयत्व गच्छतीति
शवरः । तालव्यः । शवति अरण्य शवरः । दस्यति अन्यमुपक्षिणोति दस्युः । 'जनिमनिदसिभ्यो यु^२ ।'
एभ्यो यु प्रत्ययो भवति । निषीदति पापकर्मात्र निपादः । निषदश्च । वा^३ ज्वलादिदुनीभुवो णः । "व्यध
ताडने" व्यध विध्यतीति व्याधः । "दिहि^४लिहिश्लिपिष्टवमिविध्यतीण्स्याता च ।"^५ एषा णो भवति ।
लुभ्यते गृह्यते मामे लुब्धः । स्वार्थे कः लुब्धकः । धनुषा^६ मह वर्तते इति धानुष्कः । किरति शरान्^७ १०
किरातः । अरण्यस्य अरण्यानी (तत्र) चरतीति अरण्यानीचरः^८ । इन्द्रवरुणभवशर्वकद्रुमृडहिमयमारण्यव-
यवनमातुलाचार्याणामानुक् ईश्च । अरण्यानीति ।

वार्वागि कं पयोऽम्भोऽम्बु पाथोऽर्णः मलिलं जलम् ।

मरं वनं कुश नीरं तोयं जीवनमब्धिपम् ॥ १५ ॥

अष्टादश पानीयं । वार्यति तृषामिदम् वारि, वृणोति वा वारि । 'शुवसिवपिराजिबृहनिन- १५
मेरिञ् ।'^१ एभ्य इत्र्प्रत्ययो भवति । अकार इज्ज्वद्भावार्थः । गन्तम् वार । स्त्रीकलीबे । वाग्यते इष्यते
कम्, कायतीति (वा) । 'कायतेर्दतिडमौ' प्रत्ययौ भवत । पीयते पयते वा पयः । "पीडू पाने ।"
"सर्व^२ पातु-योऽमुन् ।" अमति गच्छति स्वादुत्व सन्तम् अम्भम् । "अम गतौ ।" "अमे^३ र्भोऽन्तश्च । अकार
उन्चारणार्थः । "अवि शब्दे" "अम्बु" इति सौत्रो वा "सेवायाम् ।" अम्ब्यते तृष्णातैरित्यम्बु । "अम्बि-
कम्बिभ्यामुः ।" आभ्याम् प्रत्ययो भवति । पीयते पाति वा पाथः । "रमिकासिक्तुपिपातवर्गिचि- २०
चिगुभ्यस्थक् ।" एभ्यश्च प्रत्ययो भवति । को यण्वद् भावार्थः । ऋणोत्पण् । गम्यते स्नानपानार्थः
मान्तम् अणस् । सरति गच्छति सलिलम् । उणादौ "पच सेचने ।" "धावादेः प्रः मः ।" "सचते"^४
इति मलिलम् । "मचेलिलश्च चस्य लुक्"^५ । मचेलिलः प्रत्ययो भवति चस्य लुक् च । जडति नीच
गच्छति जलम् । जड च । शृण्वति हिनस्ति तृष्णाम इति शरम् । वन्यते सेव्यते एतन् वनम् । कोशते
कुशम् । प्राणिचेष्टा वृद्धि नयतीति नीरम् । पीयते हिनस्ति तृषा मीरम् च । नुदति तृषाम् तोयम् । "तु"^६ २५
सोत्र आवरणार्थो वा । जीव्यतेऽनेन जीवनम् । जीवनीयम् च । आनुवन्ति समुद्रमित्यापः । आनोतेः क्विप्
प्रत्ययो भवति । ह्रस्वश्च । अन् छिद्या बह्वर्थः । क्वचिदेकत्वम् । क्लीबत्वम् । अपशब्दो बहुवचनान्तः ।

१ शव गतौ भादि । बहलकादर । २ का० उ० ४।१। ३ का० सू० ४।२।५५ ।
४ का० सू० ४।२।५८ । ५ धनु प्रहरणमस्येति व्युत्पत्तिर्युक्ता । प्रहरणमिरण् । ६ किरतीति
किरः । कृ विक्षेपे । कप्रत्यय । अततीत्यत । अत सातत्यगमने । पचाद्यच् । किरञ्चासावतश्चेति किरात
इति पूर्णव्युत्पत्तिः । ७. महदरण्यमरण्यानी तत्र चरतीति विग्रहो युक्तः । ८ इद पाणिनीय ४।१।८० अत्र
यमेत्यधिकः पाठः । ९ का० उ० ४।५ । १० का० उ० ५।५० । ११ का० उ० ४।५६ । १२ का० उ० ४।६६ ।
अमति स्वादुत्व गच्छतीति शेषः । रामाश्रमन्तु अमिशब्दे इत्यतोऽमुन् प्रत्ययमाह । १३ का० उ० ५।३५ ।
१४ का० उ० २।१० । १५ अर्थते इत्यस्य पर्यायो गम्यते । यतोऽर्णस् शब्दो नसप्रत्ययान्तः । ऋ गतौ ।
१६ का० सू० ३।८।२४ । १७ सलति गच्छति निम्नमिति विग्रहे सल् गतौ इत्यस्मात् सलिकल्पनि०
इत्यादि १।५४उ० सूत्रेण साधितोऽन्यत्र । १८ का० उ० ६।३९ ।

- “अपश्च” इति घुटि दीर्घः । आपः । अघुट्स्वरत्वात् शसादेर्न दीर्घः । अपः । “अपा” भेदः ।” इति विभक्तिमे पश्यदः । अद्भिः । अद्भ्यः । अद्भ्यः । अपाम् । अप्सु । “^३ वर्गादेः शपसेषु द्वितीयो वा ।” अप्सु । अप्सु । आमन्वणे—हे आपः । वेवेष्टि देह शैत्येन व्याप्नोतीती विषम् । उभयम् । घनरसः, पुष्करम्, मेघपुष्पम्, पानीयम्, उदकम्, क्षीरम्, सुवनम्, दकम्, कमलम्, कीलालम्, अमृतम्, कञ्चम्, सर्वतोमुखम्, ५ आनर्त इति नानार्थे ।

तत्पर्यायचरो मत्स्यस्तत्पर्यायप्रदो घनः ।

तत्पर्यायोद्भवं पद्मं तत्पर्यायधिरम्बुधिः ॥ १६ ॥

- तस्य पर्यायस्तत्पर्यायः, तत्पर चरशब्दे प्रयुज्यमाने मत्स्यनामानि भवन्ति । वारिचरः, वारिचरः, कञ्चरः, पयश्चरः, अम्भश्चरः, अम्बुचरः, पाथश्चरः, अर्णश्चरः, सलिलचरः, जलचरः, शरचरः, वनचरः, १० कुशचरः, नीरचरः, तोयचरः, जीवनचरः, अप्चरः, विषचरः । प्रदप्रयोगे वारिपर्यायशब्दाग्रे घनस्य नामानि भवन्ति । वारिप्रदः, वारिप्रदः, कम्प्रदः, पयःप्रदः, अम्भःप्रदः, अम्बुप्रदः, पाथःप्रदः, अर्णःप्रदः, सलिलप्रदः, जलप्रदः, शरप्रदः, कुशप्रदः, नीरप्रदः, तोयप्रदः, जीवनप्रदः, अप्रदः, विषप्रदः । इत्यादीनि घननामानि । तत्पर्यायोद्भव पद्मम् । वारिपर्यायशब्दाग्रे उद्भवप्रयुज्ये उद्भवशब्दप्रयोगे कमलनामानि भवन्ति । वारुद्भवम्, वायुद्भवम्, कमुद्भवम्, पयउद्भवम्, अम्भउद्भवम्, अम्बुद्भवम्, पाथउद्भवम्, अर्णउद्भवम्, १५ सलिलुद्भवम्, जलुद्भवम्, शरुद्भवम्, वनोद्भवम्, कुशुद्भवम्, नीरुद्भवम्, तोयुद्भवम्, जीवोद्भवम्, अपुद्भवम्, विषुद्भवम् । तत्पर्यायधिरम्बुधिः । वा शब्दा (शब्दपर्याया) ग्रे धिप्रयुज्ये धिशब्दप्रयोगे अम्बुधिनामानि ज्ञेयानि । वारिधिः, वारिधिः, कन्धिः, पयोधिः, अम्भोधिः, अम्बुधिः, पाथोधिः, अर्णोधिः, सलिलधिः, जलधिः, शरधिः, वनधिः, कुशधिः, नीरधिः, तोयधिः, जीवनधिः, अपधिः, विषधिः ।

पृथुरोमा पडक्षीणो यादो वैमारिणो झषः ।

विसारी शफरी मीनः पाठीनो (ऽ) निमिषस्तिमिः ॥ १७ ॥

२०

- एकादश मत्स्ये । पृथूनि विस्तीर्णानि रोमाण्यस्य पृथुरोमा । षट् अक्षीणि स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-श्रोत्र-मनासि यस्य सः । पडक्षीणः । याति गच्छति जले, याद । विसरति “ग्रहादेर्णिन्”^४ विसारी मत्स्य इति । स्वायङ्ग । वैमारिण । भ्रपति जन्तुं दिनस्ति भ्रप । “सु गतौ” । सृ गतौ । “सृ गतौ वा” । सृ विप्रर्वा विमरति विमरति वा इत्येवशीलः, विसारी । “विप्रति-यामाड सतेर्णिन् प्रत्यय । अस्यो० (स्य) वृद्धिः । विमारिन् इति जाते सि । “इन्हन् [पूर्ववत्] (पृषार्यग्णा शौ च)” । शक्ति शफरः । शफा (न्) शायन्ते (राति) शीघ्रगत्वाच्छफरी । मीयते हिम्यतेऽन्योऽन्यतः, मीनः । बहृद्रूप-त्वान् पाठयति भद्रयत्वेन पाठयते वा पाठीनः । निमिषति परस्परं हिनस्ति हन्तीति वा “निमिष” । “नास्युपध (धात्) पृकृगृजा कः” । तिम्यति जलेनाद्रो भवति तिमि । मत्स्यः, अण्डजः, शकली, विसारः, जलचरः, शकली ।

३०

घनाघनो घनो मेघो जीमूतोऽभ्रं बलाहकः ।

पर्जन्यो मिहिगे नभ्राट्

१ का० सू० २।२।१९ । २ का० सू० २।३।४३ । ३ का० सू० ५० सू० २५७ । ४ का० सू० ४।२।५० इति णिन् प्र० । ५ पा० सू० ३।२।७६ उत्प्रतिभ्यामाडि सतेरुपसंख्यानम् इति काशिकावृत्तिः । ६ का० सू० २।२।२१ । ७ निमेषरहितत्वान्मीनानाम् । कोषान्तरेषु तेषामनिमिषज्ञा-दर्शनान्च अत्राप्यनिमिष इत्येव छेदो युक्तः । न तु निमिष इति । तदुक्तम्—“विसारः शकली शकली शवरोऽनिमिषस्तिमि” अ० चि० ४।११० । ८ का० सू० ४।२।५१ ।

नव मेघे । हन हिसागतयोः । हन्तीति घनाघनः । “अच् घनाघन” इति सूत्रेण घनाघन इति निपातः । अथवा “चिक्लिदचकनसचराचरचलाचलपतापतवदावदघनाघनपाट्टपटा वा” इति नामभूता सज्ञा रूढाः । तत्र क्लिदे “नाम्नुपधात्” कः । कनसिचरिचलिपतिवदिहनिपाटयतिभ्योऽचप्रत्ययो द्विर्वचननिपातन चेति । वाशब्दात् क्लिदः कनसः, चरः, चलः, पतः, वदः, घनः, पटः, इत्यपि भवति । हन्यते वायुना घन । “मूर्तौ घनिश्च ।” अल् । मिह सेचने । मेहति सिञ्चति भूमिमिति मेघ । ५
“अन्य चाम् (दिव्यश्च)” अच् । नामिनो गुण । “न्यङ्कुः” इत्येवमादीनां चजोः कगौ भवत । इश्च (हस्य च) घो भवति । जीवनस्य जलस्य मूत पुटबन्ध इति निरुक्त्या जीमूतः । जीवन्त्यनेन भूतानि वा जीमूत । जीव प्राणने । अभ्रन्यपो राति वा अभ्रम् । अभ्र गत्यर्थः । न भ्रश्यति तपो यस्मादित्येके । आभ्रोति सर्वा दिशो वा अभ्र क्लीबे । बलाकादिभिर्हीयते बलाहक । वारिवाहको वा । प्रवर्षति जल पर्जन्यः । उणादी “पृजी सम्पर्के” पृङ्क्ते पृणक्ति वा पर्जन्यः । “पर्जन्यपुण्ये” १०
इति अन्यप्रत्ययान्तो निपात्यते । मेहति सिञ्चति विश्व मिहिर । महिर मुहिरश्च । न भ्राजते न शोभते नभ्राट् । “क्विब्रजिपृथुर्विभासाम्” एषा क्विब्र भवति । अब्रः, स्तनयित्नु, पयोधरः, धाराधरः, धूमयोनि, तडित्वान्, वारिदः, अम्बुभृत्, मुदिरः, जलमुच् ।

शम्पा सौदामि (म) नी तडित् ॥१८॥

आकालिकी क्षणरुचिर्विद्युत्

१५

पट् शम्पायाम् । शम्पयति शीघ्र शम्पा । शम्बा च । शम्पिषति वा शम्पा । सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् सौदामि (म) नी । “तेनेकदिगित्यण्” शोभनस्य दाम्नो बन्धनरज्जोरिव सदृशी सौदामि (म) नी । सौदाम्नी । सौदामिनी च । ताडयति तडित् । ताडयतेर्णिलुक् । ताडयति मेघ ताडयतेऽसौ वेति तडित् । तान्तम् । आकलयति स्तोककाल रोचते वा आकालिकी । “आङ् मर्यादाऽभिबिध्यो ।” क्षणे क्षणे रोचते शालते क्षणरुचिः । विद्योतते विद्युत् । चपला, क्षणिका, शतहृदा, हादिनी, अचिराशुः, २०
ऐरावती, चञ्चला, चटुला, दिश्या ।

तत्पतिरम्बुदः ।

विद्युच्छब्दाग्रे पतिशब्दे प्रयुज्यमाने अम्बुदनामानि भवन्ति । शम्पापति, सौदामनीपति, तडित्पति, आकालिकीपति, क्षणरुचिपति, विद्युत्पतिः, निर्घातपति, अशनिपतिः, वज्रपतिः, उल्कापतिः, इत्यादिमेघनामानि स्युः । २५

निर्घातमशनिर्वज्रमुल्काशब्दं च योजयेत् ॥१९॥

चत्वारो वज्रे । निर्हन्यतेऽनेनेति निर्घातम् । पर्वतादीनश्नाति, अशनिः । “ऋतृसृष्टृजृष्म-

१ हन्तेर्घञ् च का० वार्तिकम् । अच् घनाघन इत्याकारक वचन न क्वचिदुपलब्धम् । शा० सू० ४।१।५५ घनाघन पाट्टपटम् इति । २ इदं तु नोपलब्धम् । चरिचलिपतिवदीना वा द्वित्वमन्याक् चाभ्यासस्य वक्तव्यम् इति कात्या० वा० । ३ का० सू० ४।२।५१ । ४ का० सू० ४।५।५० इति हन्तेरल्प्रं घनिरादेशश्च । ५ का० सू० ४।२।४८ । ६ न्यङ्क्वादीनाम् इति का० सू० ४।६।५७ इति हस्य घ । ७ बलाकाभिर्हीयते । ओहाङ् गता । कर्मणि क्नुन् । अथवा बलेन हीयते आहायते वा क्नुन् इति रामाश्रम । पृषोदरादित्वाद् वारिवाहकशब्दस्य बलाहक इति निपातश्च । ८ का० उ० ३।८। ९ का० सू० ४।१।५७ । १० तेन प्रोक्तमित्यतस्तेनेत्यधिकारे “एकदिक्” इति जै० सू० ३।३।८१ । ११ समानकालावायन्तौ यस्या इति विग्रहे आकालिकडायन्त्ववचने इति पा० सूत्रेण समानकालशब्दस्याकाल आदेश इकट् प्रत्यये टित्वान्द्वीपि आकालिकीति मूलोक्तमपि साधु । १२ का० उ० २।४३ ।

श्यविष्टतिप्रहिन्योऽनिः ।” एभ्योऽनिः प्रत्ययो भवति । “टु उ स्फूर्जा वज्रनिघोषे” स्फूर्जतीति वज्रम्^१ । शूद्रादयः^२—“शूद्रोऽग्रवज्रविप्रभद्रगौरमेरीराः” एते रक् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पर्वतेष्वपि वज्रति वज्रम् । उषति बलति उल्का । उल् इति सौत्रोऽय धातुर्वा ।

परिषत्कर्दमः पङ्कः

५ त्रय. कर्दमे । परि समन्ताद् भाराक्रान्तः सीदति गन्तु न शक्नोतीति परिपत् । “^३सत्सूद्विषदु- हदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गे” एषामुपसर्गेऽनुपसर्गेऽपि नाम्युपधात्स्वप् । कृणोति चेष्टा दिनस्तीति कर्दमः । “^४पुप्रथिचरिकर्दिभ्योऽम ” । पञ्च्यते विस्तार्यते वर्षाकालेन पङ्कः । उभयम् । उणादौ ‘पन च’ पनायते पन्यते वा पङ्कः । ‘पसिपनिभ्या कः’ आभ्या कः प्रत्ययो भवति । तथा चामरसिह—

“^५निपद्वरस्तु जम्बालः पङ्कोऽस्त्री शादकर्दमौ ।”

१० निपद्वर, जम्बाल, शाद, इचिकिल, चिकित्सश्चानेकार्थे ।

तजम्

तस्मात् जम् उद्भवम् पङ्कजम्, कर्दमजम्, परिपजम्, इत्यादीनि कमलनामानि भवन्ति ।

तामरसं विदु ।

कमलं नलिनं पद्मं सरोजं सरसीरुहम् ॥ २० ॥

खरदण्डं कोकनदं पुण्डरीकं महोत्पलम् ।

१५

दश कमलनामानि भवन्ति । ताम्रयति जज्ञ काङ्क्षति तामरसम् । अमरमहभाष्ये—“ताम प्रकर्षो रसोऽयम् तामरसम् । तमः प्रकर्षाऽथस्तारतम्यवत् ।” केन मस्तकन मल्यते धार्यते कमलम् । श्रिया वामाऽर्थं काम्यते वा । ‘पटिकमिमुशिकुशिन्यः कलः ।’ एभ्य कल. प्रत्ययो भवति । कमल च । नला. सन्त्यस्य नलिनम् । नलति आकर्षति श्रिय वा नलिनम् । ‘पुलिनलितलिमलिट्टिहिन्य किनः’ । नल च । पथ्यते पाति लक्ष्मीरत्र पद्मम् । “^६अर्तिवृद्धमुष्टिणीपदभायास्तुभ्यो म ।” उभयम् । सरसि तडागे जातम् सरोजम् । सरस्या रोहति प्रादुर्भवति सरसीरुहम् । “^७खरञ्च तदण्डञ्च खरदण्डम् । कोकाश्चक्रवाका नदन्त्यत्र कोकनदम् । क्लीब । [रक्त] कुमुदम्^८ । रक्तकमलञ्च । विशेषणम् [कुमुदकमलविशेषे] । पुणति माङ्गल्यात्वात्पुण्डरीकम् । मट (मुट) प्रमर्दने स्थाने । पुण्डिरित्येके । पुण्डति पुण्डरीकम् । भाष्यकर्तृमते पुण शोभे । पुणति जल्पति शोभा पुण्डरीकः^९ । “अनुनासिकान्ताड्डः” अनुनासिकान्ताद्घातोर्द्धं प्रत्ययो भवति । महच्च तदुत्पल च महोत्पलम् । तथा च टुलायुधः—“पुण्डरीक^{१०} सिताम्बुजम् ।”

२५

१ स्फूर्जतीति विग्रहे स्फूर्जधातो वजादेशो रक्प्रत्ययश्च निपात्य । वज्र गतौ । वज्रतीति विग्रहे केवल रक् । २ का० उ० २।१७ । ३ का० सू० ४।३।७४ । ४ का० उणादौ एतत्सूत्र नास्ति । पा० उ० सू० ४।८४ कलिकयोरम इष्यमप्र० । ५. का० उ० ५।३० । रामाश्रमस्तु पचि विस्तारे कर्मणि हलश्चेति घञ् इत्याह । ६ अमर० १।१०।० । ७ क्षी० भा० १।१।४०।८ का० उ० ६।१ । ८. का० उ० ६।६ । १०. का० उ० १।५३। ११ खरो दण्डो यथेति विग्रहो न्यायः । १२ अथ कोकनद रक्तकुमुदे रक्तपकजे इति मेदिनी तद्विशेषे प्रमाणम् । १३—पर्फरीकादयश्च पा० उ० ४।२० इति मुहधातो रीकन्-प्रत्ययान्तः पुण्डरीकशब्दो निपात्यते । रामाश्रमस्तु पुण्डिधातोररीकन्प्रत्ययमाह । भाष्यकर्तृमते पुण धातोररीकप्रत्ययो ङान्तागमश्चेत्युभय विधेयम् । केवल डप्रत्ययस्तु न युक्तः । १४ हलायुध. ३।५८ ।

इन्दीवरं चारविन्दं शतपत्रं च पुष्करम् ॥२१॥

स्यादुत्पलं कुवलयम्

सप्त नीलोत्पले । इन्दति शोभैश्वर्यं प्राप्नोति इन्दीवरम् । अरान् राजी. विन्दति इति अरविन्दम् । विदल् लामे, विद् अग्रपूर्वः । अरान् विन्दतीति अरविन्दः । “कर्मणि च विद्” श-प्रत्ययी भवति । इति परसूत्रम् । स्वमते—अन्यत्रापि चेति [कर्मण्यण्^१] अण् बाधक । “साहिताति-वेद्युदेजिचेतिधारिपारिलिपि(म्)विन्दा त्वनुपसर्गे” एषामनुपसर्गे शो भवति । चक्रस्याऽवयव अर-विन्दम् । पिण्डी (पुण्डरीक) कमलेऽयं तु (अपि) अरविन्दम् । राजविशेषस्तु अरविन्दः । केचित्कम-लेऽपि पु स्त्व मन्यन्ते । शत पत्राण्यस्य शतपत्रम् । बलीबे । शोभा पोषयति पुष्यति वा पुष्करम् । शोभामुत्कर्षेण पलति गच्छतीत्युत्पलम् । कौ बलते प्राणिति कुवलयम् । कुक्षितो बहिर्वलयः पत्रवेष्टन-मस्येति श्रीभोजः ।

१०

विशेषमाह—

अथ नीलाम्बुजम् च ।

इन्दीवरं च नीलेऽस्मिन् सिते कुमुदकैरवे ॥२२॥

नीलाम्बुजम् । इन्दतीन्दीवरम्^३ । कुवलय [दलनीलेति] सामान्यस्य [नीले] विशेष-वृत्ति । अस्मिन् सिते । रात्रौ विकास करोति चन्द्रेण काम्यते वा कौ मोदते वा कुमुदम् । दान्तञ्च । के उदके जले गति केवो हसः, तस्येद प्रिय कैरवम् । क्लीबे ।

१५

तद्वती

तस्य कमलस्य पश्यति ‘वती’ इति प्रयुज्यमाने कमलिनीनामानि भवन्ति । ताम्रसवती, कमलवती, नलिनवती, पद्मवती, सरोजवती, सरसीरुहवती, कोकनदवती, पुण्डरीकवती, महोत्पलवती, अर-विन्दवती, शतपत्रवती ।

२०

विसिनी ज्ञेया

दिनविकासिन्यामेक^४ । विसमस्यस्या विसिनी । नलिनी । पुटकिनी । मृणालिनी ।

व्रततीर्वल्लरी लता ।

वल्लरीनामानि योज्यानि—

चतुर्वं (चत्वारो व) ल्यार्थम् । वृणोतीति व्रतती । प्रकृष्टा ततिरस्या व्रतती^६, व्रततिश्च । जपादिवाद्बन्धम् । वल्लते वल्लरी । लाति ललति चित्त वा लता^७ । बल्लते वेष्टते वल्ली । वल्लादीः । बल्लिगिदन्तोऽपि । छियामी^८ । वल्ली । व्रातश्च । वीरुक् (वृ), गुल्मिनी, प्रतानिनी, शारिवा^९, किर्मी च । वृक्षशाखायामपि ।

२५

१ का० सू० ४।३।१ । २ का० सू० ४।३।५।४ । ३. इन्दतीतीन्दी. लक्ष्मी. । सर्वधातुभ्य इन् उ० सू० ४।१।७ इतीन् । कृदिकारादत्तिन इति ङीष् च । तस्यावरमिष्टम् इति व्युत्पत्त्यन्तरमयूहम् । ४ एक. विसिनीशब्द इत्यर्थः । ५ अत्र चत्वारो वल्लर्यामिति युक्तम् । ६ व्रतनोतीति व्रतति । तन् धातो क्तिच् । कौ च सजायामिति क्तिच् । वृषोदरा-दित्वात्पस्य व इत्यन्यत्र । ७ लति^८ सौत्रो धातुर्वेष्टनायां लततीति लता । पञ्चाशच् इत्यन्यत्र । ८ सारिवाशब्दोऽनन्तमूलनामकौषधिर्विशेषवाचक । किर्मी स्त्री स्पर्शपुञ्च स्यादपि मालापलाशयो-रिति विश्वलोचनप्रमाणतः किर्मीशब्दः । किर्मीशब्दो स्पर्शपुञ्च-माला-पलाशवाचक । वृक्षशाखायां लताया वा उभावप्यप्रसिद्धौ । अतोऽत्रेदमेव प्रमाणम्

वारिधिर्वर्ण्यतेऽधुना ॥२३॥

अधुना इदानीं वारिधिर्वर्ण्यते कथ्यते । केन १ भाष्यकर्त्रा मुनिश्रीमदमरकीर्तिना ।

साम्प्रत समुद्रनामानि प्रारभ्यन्ते—

स्रोतस्विनी धुनी सिन्धुः स्रवन्ती निम्नगाऽपगा ।

५

नदी नदो द्विरेफश्च सरिन्नामा तरङ्गिणी ॥२४॥

एकादश नद्याम् । स्रोतः प्रवाहोऽस्त्यस्याः स्रोतस्विनी । धुनोति कम्पते धुनिः^१ । स्त्रियामी । धुनी । स्रवन्ती जले चलति सिन्धुः । त्रिषु । “स्यन्दे” सम्प्रसारण धश्च । तटेभ्यो जल स्रवति स्रवन्ती । निम्न गच्छति निम्नगा । आ समन्तादाप्नोति अद्भिरगति वा आपगा^३ । आपेन वा गच्छति आपगा । नदत्यव्यक्त शब्द करोति नदी । नदति नदः । “अच्” पचादिभ्यश्च^४ अच् । द्वौ रेफौ तटौ यस्य द्विरेफः । सरति समुद्र गच्छति सरित् । तान्तम् । तरङ्गाः सन्त्यस्या तरङ्गिणी । तटिनी, नभोरिणी, कूलङ्कषा, शेवलिनी, सरस्वती, समुद्रकान्ता, ह्यादिनी, स्रोतः, कर्पु^५, कुल्या, द्वीपवती, रोधोवक्त्रा ।

तत्पतिश्च भवत्यब्धिः,

तस्या धुन्याः पतिर्धुनीपतिरित्यादिसमुद्रनामानि भवन्ति । स्रोतस्विनीपतिः, धुनीपतिः, सिन्धुपतिः, स्रवन्तीपतिः, निम्नगापतिः, आपगापतिः, नदीपतिः, नदपतिः, द्विरेफपतिः, सरित्पतिः, तरङ्गिणीपतिः ।

१५

पारावारोऽमृतोद्भवः ।

अपारवारकूपारौ रत्नमीनाऽभिधाऽकरः ॥२५॥

समुद्रो वारिराशिश्च सरस्वान् सागरोऽर्णवः ।

नव समुद्रे । पारमावृणोति पारावारः । अतस्योद्भवः अमृतोद्भवः । अपार वार् जल यत्रास्ते अपारवा । न कु पृणोति मर्यादापालनादकूपारः । हलायुधे—“न कु पृथिवी पिपत्ति व्याप्नोतीति अकूपारः ।” अकूपारोऽपि । रत्नमीनशब्दयोरग्रे आकरे प्रयुज्यमाने समुद्रनामानि भवन्ति । रत्नाकरः, पृथुरोमाकरः, पङ्कजीणाकरः, यादाकरः, वेसारिणाकरः, भगारकरः, विसाय्याकरः, शफराकरः, मीनाकरः, पाठानाकरः, निमिषाकरः, तिम्याकरः । ‘उन्दी क्लेदने’ सम्पूर्वं । समन्ताऽनत्यस्मादिति समुद्रः^७ । ‘स्थापितञ्चिर्वाञ्चशक्तिपिपक्षुदिरुदिमदिमन्दिचन्धुन्दीन्दभ्यो रक्’ “आनदनुवन्वानामगुणेऽनुषङ्गः” । तथा च हलायुधे—“मुदन्ति मिश्रीभवन्ति भौमाऽन्तरीक्षनादेयजलान्यत्र समुद्रः ।”

२५ अमरसिंह—“समुनत्ति समुद्रः” । वारीणा जलाना राशिर्वारिराशिः । सरासि जलप्रसागणानि सन्त्यस्य सरस्वान् । सागरस्यापत्य सागरः, सगरतनयैः खातत्वात् । अर्णासि सन्त्यस्य अर्णवः ।

१ धुनोति कम्पयति वेतसादीन् । धुञ् कम्पने । क्रिप् । पृषोदरादित्वाञ्चक् । नान्तन्वान्दीप् धुनी इति रामाश्रमः । २ का० उ० १।७ । ३ अद्भिरगतीति विग्रहेऽप पकारस्य जश्त्वाभावोऽकारस्य दीर्घत्वं च पृषोदरादित्वेन निपातात्साध्यम् । ४ का० मृ० ४।२।४८ । ५ अत्र कर्पूरिति दीर्घाकारान्तपाठो युक्तः । तदुक्तम्—कर्पूरं नदी करीषाम्योरिति शाश्वत ६७२ । ६ यादम् शब्दस्य सकारान्तत्वाद् याद आकर इत्येव न त यादाकरः । ७ समन्ताऽनति आद्रीकरोति भूभागानेतावानेव विग्रहः । अत्रास्मादित्यपादानार्थेष्टोक्तो नापेक्षणीयः । समीचीना मुद्रा जलचरविशेषा यस्मिन् सह मुद्रया मर्यादा वर्तते वेति व्युत्पत्त्यन्तरमप्युक्तम् । ८ का० उ० २।१४ । ९ का० मृ० ३।६।१ । १० मुद सप्तमौ चुरादि सम्पूर्वं । कथादावदन्ते तत्पाठाच्चुरादिणिचो वैकल्पिकत्वान्मुदन्तीत्यपि पक्षे । समो मकारलोपः पृषोदरादित्वात्तत्र बोध्यः । ११. क्षी० भा० १।६।१ ।

तथा च क्षीरस्वामिभाष्ये—“अर्णोऽस्यास्त्यर्णवः । ‘अर्णसो लोपश्च’ इति वः सलोपश्च ।”
उदधि, उदन्वान्, तोयनिधिः, जलराशिः वीचिमाली, शशध्वजः । तदमेदा सत-लवणोदः, क्षीरोदः,
सुरोदः, इक्षुदः स्वादूदः, दध्युदः, घृतोदः ।

सीमोपकण्ठ तीरश्च पार रोधोऽवधिस्तटम् ॥२६॥

सप्त समीपे । पित्र् बन्धने । सिनोति बध्नातीति सीमा । “३धर्मसोमाग्नीष्माऽधमाः”
एते मक्षप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कण्ठस्य समीपे उपकण्ठम् । तरन्त्यम्मात्तीरम् । तरति प्लवते
इव के तीरं वा । “पिपति वृणोति जलेनेति पारम् । पार्यते समाप्यतेऽस्मिन्निति वा । रुणद्धि
जल वेगेन रोधस् । सान्तम् । उभयम् । अवधानम् अवधि । “५उपसर्गे दः कि” । तट्यते आहन्त्य-
तेऽम्भसा तटम् । त्रिषु । तटः । तटी । इदन्तो वा । तटि । स्त्रियामी, तटी । कूलम्, कच्छ,
प्रपातः, तीरम् ।

१०

भङ्गस्तर्ङ्गः कल्लोलो वीचिरुत्कलिकाऽवलिः ।

पाली वेला तटोच्छ्वामौ विभ्रमोऽयमुदन्वत ॥२७॥

एकादश तर्ङ्गे । भङ्ग्यते जले स्वयमेव भङ्गः । तरति प्लवते तर्ङ्गः । “२नुपतिभ्यामङ्ग”
आभ्यामङ्गप्रत्ययो भवति । “कल्लयन्तेऽनेन नद्यः कल्लोलः । कुत्सित लोडति कल्लोल इत्येक ।
याति (वयति) गच्छति वीचि” । स्त्रियामी, वीची । वृद्धिमुत्कर्षेण कलयति उत्कलिका । स्त्रि-
याम । आ समन्ताद् वलते आवलि । पाल्यते पालि । स्त्रियामी । पाली । वेलयति पूर्णिमादि-
कालमुपदिशति वेला । स्त्रियाम् । तटश्च उच्छवासश्च तटोच्छ्वासो । तटति तटः । उच्छ्वसनम्
उच्छ्वासः । विभ्रमति विभ्रमः विकारः । कस्य ? उदन्वतः समुद्रस्य । ऊर्मि, लहरी ।

१५

सम्प्रति मनुष्यवर्गं आरभ्यते श्रीमदमरकोटिना—

मनुष्यो मानुषो मर्त्यो मनुजो मानवो नरः ।

२०

ना पुमान् पुरुषो गोघा

एकादश मनुष्ये । मनोरपत्य मनुष्यः । * “कुरुनिषादिभ्यः प्रथमाऽपत्येऽपि” । कुरुनिषादाभ्या-
मणीपि मनोः सान्तश्च । क्वचिद्विस्वरस्य न वृद्धिः । अण्वा । * मनुष्यः । मानुषः । उणादौ च ।
मान्यते सुखदुःखादिकर्मिन् मनुष्यः । “१मनेरुस्य” उर्यप्रत्ययः । मानयति मान्यते इति वा मानुषः ।
“१मानेरुस्य” उर्यप्रत्ययः । उभयम् ।

२५

१ क्षी० भा० १।६ । २ कोपान्तरेषु समुद्रस्य शशध्वज इति नाम नोपलब्धम् । कथं
चित्समाधानापेक्षायां शशध्वज इति पाठो बोध्यः । शशी चन्द्रो ध्वजश्चन्द्रः वशप्रख्यापकः यस्येति
तद्विग्रहः । चन्द्रस्य समुद्रप्रभवत्वं पुराणप्रसिद्धम् । ३ का० उ० १।५६ । ४ तृत्तुल्यनतरणयोः । क-
प्रत्यये ऋत इर् दीर्घत्वः च । अत्रोणादि शरणम् । सरलः पन्थास्तु पार तीरं कर्मसामो । ततस्तीरय-
तीति विग्रहः पञ्चाद्यच् । ५ पालनपूरणयोः पृथानुस्तेन पिपतीत्यस्य पूरयतीति पर्यायो युक्तो न तु
वृणोतीति । ज्वलादित्वाण्णः । क्षीरस्वामी तु परे पार्श्वे भवः कूलम् पारम् इत्याह । ६ का० सू० ४।५।७०
इति कि० । ७. का० उ० ५।२२ । ८ कल्लः अव्यक्तं शब्दे कल्लन्ते इत्यस्य शब्दायन्त इत्यर्थः । उणा-
दित्वादोलच्प्र० । कः जलम् तस्य लोलश्चञ्चलोऽवयवः । अनुस्वारस्य परसवर्णो लकारः इति रामाश्रमः ।
९ वेज् स्वरणे । वेजो डिच् उ० सू० ४।७२ इतीचिप्र० । १०. * एष चिह्निताशस्याने “मनो पण्य्यौ”
का० सू० पू० ४९३ इति प्य षण् प्रत्ययो इति पाठो युक्तः । ११ का० उ० ६।१० । १२. का० उ० ६।११ ।

“उड्डीय वाञ्छित यान्तो वरमेते भुजङ्गमाः ।

न पुनः पक्षहान्तरात् पङ्गुप्रायन्तु मानुषम् ॥”

- ध्रियते मर्त्यः । “^१डस्यः” । स्वार्थे ल्यो वा । मनोजातः **मनुज** । मनोरपत्यं **मानवः**^२ ।
 ५ वृणाति विनयति नरः, “शीञ् प्रापणे” नयतीति वा । “^३नियो डाऽनुबन्धश्च” । अस्मात् ऋन् प्रत्ययो
 भवति, स च डाऽनुबन्ध इष्यतेऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः । पूर्यते कुलमनेन सान्त-^४**पुमान्** । उणादौ
 पृढः पवते पुनातीति वा **पुमान्** । “^५सिर्मनन्तश्च” । अस्मात्सि- प्रत्ययो भवति, अस्य च मन् अन्त-
 चकाराद् ह्रस्वत्व च । इकार उच्चारणार्थः । पुरि पुरि शयनात् पूरणाद्वा पुरुषः । पृणाति पूरयति वा
 स्त्राणामुदर गर्भेणेति **पुरुष**^६ । “पृणातेः^७ कुषः” । अस्मात्कुष- प्रत्यया भवति । कोऽनुबन्धः । अन्येषा-
 मपीति वा दार्ढ्यः । पुरुषः । लत्वे पुरुषः, पुलुपश्च । “गुध परिवेटने” । गुध्यति **गोधा**^८ ।

१०

धवः स्यात्तपतिनृपः ॥२८॥

तस्य मनुष्यशब्दस्याग्रे धव-पतिशब्दप्रयोगे नृपनामानि भवन्ति । मनुष्यधवः, मानुषधवः,
 मर्त्यधवः, मनुजधवः, मानवधवः नरधवः, नृधवः, पुन्धवः, पुरुषधवः गोधाधवः । मनुष्यपतिः, मानुषपति
 मर्त्यपतिः मनुजपतिः, मानवपतिः, नरपतिः, नृपतिः, पुस्पतिः, पुरुषपति गोधापति ।

भृत्योऽथ भृतकः पत्तिः पदातिः पदगोऽनुगः ।

१५

भटोऽनुजीव्यनुचरः शस्त्रजीवी च किङ्करः ॥२९॥

- एकादश सेवकः । ध्रियते इति भृत्यः । “भृत्योऽभ्रजायाम्” । ध्रियते राजा भृतः । स्वार्थे क ।
 भृतकः । पतति अधो गच्छति पत्तिः^१, पतन वा । [पादाभ्याम्] अतति [पदातिः^२] । पादातिकः ।
 आणादिक इक । “विनयादित्वात्स्वार्थे ठण्” । पदभ्या^३ गच्छतीति पदगः । अनु पश्चाद् गच्छति
 अनुगः । भटति युद्ध विभर्ति भटः । अनुजीवतीत्येवशीलः अनुजीवी । अनु पश्चाच्चरतीत्यनुचरः ।
 २० शस्त्रेण आयुधेन जीवतीत्येवशीलः शस्त्रजीवी । किं कुर्वन्ति कार्यं विदधाति किङ्करः । सहायः, सेवकः,
 पदसेव्यः, पदगः पदिकश्च । तथा च यशस्तिलके-(श्लो० १३०)

“सत्यं दूरे विहरति सम माधुभावेन पुसा धर्मश्चित्तात्सह करुणया याति देशान्तराणि ।

पाप शापादिव च तनुते नीचवृत्तेन सार्व सेवावृत्तेः परमिह पर पातकं नास्ति किञ्चित् ॥”

स्त्री नारी वनिता मुग्धा भामिनी भीरुरङ्गना ।

२५

ललना कामिनी योषिद् योषा सीमन्तिनीति च ॥३०॥

१ का० उ० ६।१० । २ वाणपत्ये का० रू० पू० ४७३ इत्यण् । ३ का० उ० २।४१ । ४
 याति पुनाति वा पुमान् । पातेर्हुंमुन् पूजा हुंमुन्, पा० उ० ४।१७० इति हुंमुन् इति प्रक्रियाऽन्यत्र ।
 ५ का० उ० १।४२ । ६ पुरि शयनं दिति तु निरुक्तप्रकारो विग्रहस्तु पृणातीत्यादिरेव । ७ का० उ० ३।५४ ।
 ८ गोधाशब्दस्य पुरुषार्थे कोपान्तरप्रमाणं नोपलब्धम् । तदुक्तम्- गोधा तलनिहाकयोः ‘वि० लो०’ । गोधा
 प्राणिविशेषः स्यज्ज्याघातस्य च वारणे । आकारान्तस्त्रीलिङ्गत्व च सर्वत्रास्योक्तम् । अ० स० २४३ । अतोऽस्य
 मूलं मृग्यम् । गोद इति पाठे तु गोदो मस्तिष्कमस्यात्तीति गोदः मुख्यमस्तिष्कवच्चात् पुरुष इति समाधेयम् ।
 तदुक्तम् गोदः तु मस्तकस्नेहो मग्नितर्का मन्तुलुङ्गक अ० चि० ३।२८९ । ९ का० सू० ४।२।२५ इति
 क्यप् । १ आणादिकस्ति, किच् क्तो च मशायामिति वा किच् । पतन वा इति व्युत्पत्तिस्त्वप्रासङ्गि-
 कत्वापेक्षया । ११ अज्यतिभ्यां च पा० उ० ४।१३० इत्यतेरञ् । पादस्य पदाज्यातिहतेषु इति पदादेशश्च ।
 १२ विनयादिष्टण् जै० मू० ४।२।४० । १३ पदाभ्यां पादान्या वेति वक्तव्यम्, न तु पदभ्यामिति । पाद
 इत्यापरो । पादस्य पदाज्यातीति पादस्य पदः ।

नितम्बिन्यबला बाला कामुकी वामलोचना ।

भामा तनूदरी रामा सुन्दरी युवती चला ॥३१॥

द्वाविंशतिः छियाम् । “स्तृण् आच्छादने” स्तृणात्याच्छादयति स्वदीपान् परगुणानि-
ति स्त्री । उणादौ । स्तृणात्याच्छादयति लज्जयाऽमानमिति स्त्री । स्तृणातेष्टृ ” प्रत्ययो भवति ।
अक्रामात्रः । “स्मृवर्ण” । अथवा द्रष्टाठः । डाऽनुबन्धोऽन्त्यस्वरादिलोपार्थः । डकारो ५
नदाद्यर्थः । रकारमात्र एव । अमरसिंहभाष्ये “-स्त्यायत्य(तेऽ) स्या गभः स्त्री ।” तथा च हलायुधे-
“स्तृणाति विवेकमान्छिन्नान्तं स्त्री” । नरस्य स्त्री जातिश्चेन्नारी । नर वनति भजते वनिता । मुह वैचित्र्ये
कार्येषु मुह्यति मुग्धा । मुह्येर्धक् हस्य गः ।” भामते कुप्यते (ति) भामिनी । [भामः] क्रोधोऽस्त्यस्याः
वा भामिनी । विभेयस्माद्(त्यसौ)भीरु । “भियो ऋलुको च ।” भीरुः । प्रशस्तान्यङ्गान्यस्या अङ्गना ।
लाडयति (लडति) विलमति, ललयति (ललति) नरमीप्सते वा ललना । “लल ईसायाम्” । भोगान् १०
कामयते कामिनी । युपः सौत्रोऽय धातु सेवाऽर्थे । योषति पुरुष गच्छति रतेच्छया आत्मनो योषा ।
“कष शिष जप ऋष दष मष रुष रिष यूष जृष हिसार्थाः” । योषति हिनस्ति हन्तीति योषित् । “हृत्तडि-
रुहियुषिभ्य इति” एभ्य इतिप्रत्ययो भवति । इकार उच्चारणार्थः । अमरसिंह-“यौनि पुसा योषित् ।”
अजादित्वादाप्रत्यये योषिता च । सीमन्तोऽस्त्यस्या सीमन्तिनी । बध्नाति चित्त बधूः । नितम्बोऽस्त्यस्या
नितम्बिनी । न वियते बलमस्या अबला । ‘बा’ सोभाभ्य लाति गृह्णातीति बाला । ‘कमु कान्तो’ कम् । १५
“कमेरिनिङ् कारितम्” इन् । “अस्थोप०” दीर्घः । कामयते इत्येवशीला कामुकी । “शकमगमहन्कृष-
सूथालपपतपदामुक्त् ।” कारितलोप । “निमि०” दीर्घाभाव । तकाराऽनुबन्धत्वात्पूर्वस्योप-दीर्घः ।
वामे मुन्दरे लोचने नेत्र मयः सा वामलोचना । “भाम क्रोधे” चुरादौ । भामयति । “भाम क्रोधे”
भवादावकाराऽनुबन्ध आत्मनेपदी । भामते भामा । चक्षुर्दोषादिदर्शनात् । तनु सूक्ष्ममुदर यस्या सा
तनूदरी । नरेषु रमते, मनसि रमयति वा रामा १२ । मुटु द्वियते आद्रियते जनोऽत्र शोभनो दरो २०
वराङ्गच्छिद्रमस्या वा ३ सुन्दरी । अथवा ‘सुन्दर’ इति सौत्रोऽय धातु । युवत्शब्दाज्जदादिविहितम् । ४,
युवति । यु मिश्रणे यौति नगन् मिश्रयति आंणादिको वा अति युवति । छियाम् । युवती ।
यूनीत्यन्यः । तथाहि प्रयोगः—

“भर्ता मगर एव मृत्युवमति प्राप्तः समवन्धुभिः,

यूनी काममयं दुनोति च मनो वैधव्यदुःखाद् वधूः ।

२५

बालो दुस्त्यज एक एव च शिशुः कष्ट कृत वेधसा,

जीवामीति महीपते प्रलपति यद्वैरिणीसीमन्तिनी ॥”

चलचित्तान्पुरुषान् चालयतीति चला १ । वामनेत्रा पुरन्ध्री, वासिता वर्णिनी, प्रमदा, रमणी,

१ का० उ० ८३६ । २ का० सू० ११११० । ३ ली० भा० २१६२ । ४ का० उ०
६१८४ इति धिक् प्र० हस्य गश्च । ५ का० सू० ४१४५६ । ६ का० उ० १३५ । ७. ली० भा०
२१६२ । ८ का० सू० उ० ४६२ । ९ का० सू० ४१४३४ । १० कारितस्यानामिङ् विकरणे का० सू०
३१६४४ इतीनो लोप । इन् कारितमज्ञा कातन्त्रव्याकरणे । ११ निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय इति
परिभाषेन्दुशेखरे अकृतव्यूहपरिभाषारूप । १२ रमते रामा । ज्वलादित्वाण् । रमयतीति तु न पुनश्च,
प्यन्तस्य ज्वलादित्वाभावात् । १३ सु अतीव उनात् सुन्दरी । उन्दी क्लेदने । बाहुलकादप्र० । शकम्भादि-
त्वादुकारस्य पररूपम् । गौरादित्वाण् इति रामाश्रम । १४. का० सू० २१४५० । १५ चलचित्री
पुरुषैश्चलती त चलत्येव विग्रह । पचायच्च । शिञ्जन्तात् चाला इति स्यात् ।

दयिता, प्रतीपदर्शिनी, कान्ता, वशा, महिला, महिला च ।

भार्या जाया जनिः कुल्या कलत्र मेहिनी गृहम् ।

महिला मानिनी पत्नी तथा दाराः पुरन्ध्रयः ॥३२॥

- दश कलत्रे । डुभृत् धारणपोषणयोः । भ्रियते पुष्यते गर्भेण भार्या । “ऋवर्णव्यञ्जना-
 ५ न्तात्प्यण्” । यकारमात्र । अत्योपधावृद्धि । भार्या इति जातम् । “स्त्रियामादा” । आप्रत्यय । प्र०
 सि । “ऋद्धाया सिलोपम् ।” सिलोपः । “ज्या वयोहानौ” जा (जि) नाति जाया । जनी प्रादुर्भावे
 च । सुखी जायते आत्मा पुत्रजाया । “सन्ध्यादयः-सन्ध्या वन्ध्या जाया इत्यादयः शब्दाः यक्प्रत्ययान्ता
 निपात्यन्ते । जनयति पुत्राञ्जनिः । इ “सर्वधातुभ्यः” । कुले साधु कुल्या “यदुगवादित” । “कड
 मदे” कड तौदादि० । कडति मायति योवनेनेति “कलत्रम्” । “अमिनत्किडिभ्योऽत्र” अत्रप्रत्यय ।
 १० कडत्रम् । डलयोरैक्यम् । प्रथ मि० नपु० “अका० मुरा० । मोऽनु० । गेहमस्त्यस्या मेहिनी ।
 “ग्रह उपादाने” । गृह्णाति प्रत्युपाजित गृहम् । “गेहत्वक्” अकप्रत्यय । “ग्रहिज्या” — सम्प्रसारणम् ।
 मद्यते पूज्यते । माहिला । मान प्रणयकोपोऽस्या मानिनी । पति पतति याति पत्नी । “द विदारणे” । द०
 क्र० । दीर्यते शतखण्डोभवति पुरुष एभिरिति दारा । “भावे” घञ् । अकारमात्र । “वृद्धि । दार
 इति जातम् । प्रथमा जम् । प्रया बहुत्व च । पुर धमयन्ति, नेत्रान्ते पुर शरीर धरन्तीति “पुरन्ध्रयः ।
 १५ ज्ञेयम्, सहधर्मचारिणा, गृहाः, सहचरी, सहचरा ।”

वल्लभा प्रेयसी प्रेष्ठा रमणी दयिता प्रिया ।

इष्टा च प्रमदा कान्ता चण्डी प्रणयिनी तथा ॥ ३३ ॥

- एकादश वल्लभायाम् । वल्लते पत्युश्चित्त सवृणोतीति वल्लभा । “कृशलिगर्दिरासि-
 वलित्रल्लिभ्योऽभः” अम प्रत्यय आप्रत्ययः । अतिशयेन प्रिया प्रेयसी । “नरः” तमेयस्विष्ट प्रकर्षाऽर्थे
 २० ‘तर तम ईयसु इष्ट’ इत्येते प्रत्यया भवन्ति । अतिशयेन प्रिया प्रेष्ठा । रमते जनोऽत्र, मनासि रमयति

१ का० मू० ४।२।३५ इति घणप्रत्यय । २ का० सू० २।४।४९ । ३ का० सू० २।१।३७ ।
 ४ का० उ० ४।३० । ५ का० उ० ३।१४ । ६ का० सू० २।६।११ इति यत्प्र० । ७ का० उ० ३।५।
 गड सेचने । गडति गड्यते वा “गडेगदेश्च कः” पा० उ० इत्यत्रन् । डलयोरैक्यम् । कड शासने मदे ।
 कडति कड्यत वा बाहुलकादत्रन् । कल मधुर ध्वनि त्रायते रक्षति वा । त्रैड् पालने क इत्यन्यत्र ।
 ८ अकारादसम्बुद्धौ युश्च इति पूर्णं का० सू० २।२।७ इति सेलोपो युरागमश्च । ९ मोऽनुस्वार
 व्यञ्जने इति पूर्णं का० सू० १।४।१५ इत्यनुस्वार । १० का० सू० ४।२।६० । ११ का० सू० ३।४।२
 ग्राहव्यावर्धिव्यावर्धिव्याचप्रच्छिन्नश्चभ्रस्त्रीनामगुणे इति पूर्णसूत्रम् । १२ का० सू० ४।५।१३ । १३ का०
 सू० ३।६।५ । अत्योपधाया दीर्घो वृद्धिर्नामिनामिनिचट्शु इति सूत्रस्वरूपम् । १४ स्यात्तु कुटुम्बिनी पुरन्ध्री
 २।६।६ । इयमरादिकोशेषु दार्धकारान्तपुगन्ध्रीशब्दस्यैव सत्त्वादत्र पुरन्ध्रय इति पाठोऽयुक्त इति न
 भ्रमितव्यम् । पुर धरन्तीति विग्रहे “अत्र इ” पा० उ० ४।१३९ इति इ । पृषोदरादित्वात्पुरोऽकारान्तत्व
 मुमागमश्चेति रीत्या तस्यायुपपत्ते । अत एव “तौ म्नातकैर्बन्धुमता च राजा पुरन्ध्रिभिश्च क्रमशः
 प्रयुक्तम्” इति रघु । पुरन्ध्रमयन्तीति न विचारसहम्, तत्साधकानुशासनविरहात् । १५ भार्यादिपुरन्ध्र्यन्त-
 शब्देषु सामान्यविशेषभावार्थभेदो न विस्मर्तव्यः । तद्यथा—भाया, जाया, कुल्या, कलत्र, मेहिनी, गृह, पत्नी
 दारा परिणतलोवाचका । महिलामानिनी विशिष्टनायिके । पुरन्ध्री पतिपुत्रवती । १६ का० उ० ३।१२ ।
 १७, एतच्च कातन्त्रसूत्र नोपलब्धम् । गुणाङ्गाद्रेष्ठेयसू शा० सू० ३।४।७५ इतीयमुग्रत्ययो बोध्यः ।

वा रमणी । नरेषु दयते गच्छति ईष्टे वा दयिता । प्रीणाति पतिचित्तं खयति प्रिया । हृष्यते हृष्यते वा इष्टा । प्रकृष्टो मदोऽस्याः प्रमदा । काम्यते नरेण कान्ता । चण्डते कुप्यति चण्डी । चण्डिका च । प्रणयोऽस्या अस्तीति प्रणयिनी ।

सती पतिव्रता साध्वी पतिवत्येकपत्यपि ।

मनस्विनी भवन्त्याया—

५

सप्त पतिव्रतायाम् । एक पतिरस्तीति संती^१ । पतिव्रत करोति, पतिरेव व्रत सेव्यो नान्यो यस्या इति वा पतिव्रता । पतिसेवैव व्रत यस्याः पतिव्रता । यत्पुति — “नास्ति^२ स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतमिति ।” साधयति साध्वी । पतिरस्या अस्तीति पतिव्रती^३ । एक पतिर्यस्याः सा एकपती । मनोऽस्या अस्तीति मनस्विनी । अर्थते सेव्यते आर्या । सुचरिता ।

विपरीता निरूप्यते ॥ ३४ ॥

मया धनञ्जयेन, भाष्यकर्त्रा अमरकीर्तिना वा कथ्यते विपरीता असदृशा ।

१०

बन्धको कुलटा मुक्ता पुनर्भूः पुंश्चली खला ।

पङ् बन्धक्याम् । बध्नाति तरुणचित्तानि बन्धको । कुलमटति कुलटा । तथा चोणादौ । “टल ट्वल यकल्पे” हेताविन । अस्थोपवाया दीर्घः । कुलपूर्वः । कुल टालयति कुलटा । “कुले” टाले-रिलुक् इश्च” कुले उपपदे टालेरिबन्तस्य डः प्रत्ययो भवित इल्क् च । स्वाचार मुच्यते (स्म) पत्या जनैर्वा मुक्ता । पुनर्भवतीति पुनर्भूः । पुमास चालयति पुंश्चली । ख पञ्चेन्द्रियोत्पन्नमुख लाति गृह्णातीति खला, अन्यपुरुषलम्पटत्वात् । पाशुला, स्वरिणी, असती, इत्तरी, धर्षणी, अविनीता, अभिसारिका, चपला ।

१५

स्पर्शाभिसारिका दूती स्वैरिणी शम्फली तथा ।

पञ्च दूत्याम् । ‘स्पृशति, स्पृश्यति, अस्पृच्छीत्’ पस्पर्श वा घञ् । स्पर्शः । “पद-रजविशस्पृशोच्चा घञ्” । नाभिर्न^१ गुण । “स्त्रियामादा” आप्रत्यय । स्पर्शा । पुरुषान्तरमभिसरति अभिसारिका । दूयतेऽस्या^२ मावयति दूती । ‘ईर् गतौ कम्पने च’ । ईर् । ईरण्म ईर् । “भावे”^३ घञ् प्रत्यय । त्वस्य ईर्, स्वर । स्वैरो विद्यतेऽस्या स्वैरिणी । “तदस्याऽस्तीति” मन्त्वन्त्वीन्” इन् । “नदाद्यञ्जिबवाह्” ई प्रत्ययः । रपृवण्य^४ नस्य शात्वम् । श मुखम् पलाति निष्पादयतीति शम्फली । तथा तेनैव प्रकारेण ।

२०

गणिका लज्जिका वेश्या रूपार्जीवा विलासिनी ।

पण्यस्त्री दारिका दाम्नी कामुकी सर्ववल्लभा ॥ ३६ ॥

२५

नव वेश्यायाम् । गणः पेटकोऽस्त्यस्या, गणयतीश्वरानीश्वरो वा गणिका । ‘लजि लाजि लाजा लज तर्ज भर्त्सने’ । लज्जयति निःस्वान्पुरुषान् तर्जयतीति लज्जिका । वेशे वेश्यावाटे भवा वेश्या^१ । रूपेण आ समन्ताजीवतीति रूपार्जीवा । विलामोऽस्याऽस्तीति विलासिनी । तथा चोक्तम्—

“हावा मुखविकारः स्याद् भावश्चित्तसमुद्भवः ।

विलासो नेत्रजो ज्ञेयो विभ्रमोऽत्र दृगन्तयोः ॥

३०

१ असधातो शत्रुप्रत्ययान्तो डोवन्तः सतीशब्दः । २ “नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रत नाप्युपोषणम् । पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे न हीयते” इति मनुस्मृतिः । ५।४।५।५। ३ पतिव्रती, एकपती इति पाठो युक्तः । ४ का० उ० ५।४७ । ५ का० सू० ४।५।४ । ६ का० सू० ३।५।२ नामिनश्चोपधाया लघो इति पूर्णसूत्रम् । ७ दूयते परितप्यते । अन्य कर्तार स्त्रीपुमासः । ८ का० सू० ४।५।३ । ९ का० सू० २।६।१५ । १० का० सू० २।६।५० । ११ का० सू० २।४।४८ । “रपृवण्येभ्यो नोमन्त्यं खग्रहयकवर्गाऽन्तरोऽपि” इति पूर्णं सूत्रम् । १२ वेशेन नेत्रेभ्यः शोभते, “कर्मवेशाद्यत्” इति यत् । वेशे भवा दिगादित्वाद्यत् ।

पण्यस्य स्त्री पर्यस्त्री । परिमाणं कृत्वा रमयतीत्यर्थः । दृष्टान्ति विदारयति कामिनम् दारिका । दृश्यति परिकर्मणा क्षयति, ददात्यात्मानं वा दासी । दाशी । तालव्यदन्त्यः । कामयते इत्येवंशीला कामुकी । सर्वेषां पुरुषाणां वल्लभा सर्ववल्लभा । सैरिन्ध्री ।

“चतुष्पष्टिकलाभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी ।

प्रसाधनोपचारज्ञा सैरिन्ध्री कथ्यते बुधैः ॥”

५

गन्धकारिका । पण्यस्त्री च ।

कान्तेष्टी दयितः प्रीतः प्रियः कामी च कामुकः ।

वल्लभोऽसुपतिः प्रेयान् विटश्च रमणो वरः ॥३७॥

- त्रयोदश कान्ते । काम्यतेऽभिलाष्यते कान्तः । इष्यते इष्ट । दया कृपा सजाता अस्येति दयितः ।
 १० “तार्किकादिदर्शनात्सजातेऽर्थे इतच् ।” “इवर्णावर्णयोर्लोपः स्वरे प्रत्यये पे च ।” आकारलोपः । सौरेफः । प्र प्रकर्षेण इ कामसुखम् इत प्राप्तः प्रीतः । पृषोदरादित्वात् आकारलोपः । प्रीणातिस्म प्रीतः । प्रीणाति प्रीणीते वा प्रियः । “नाम्पुपधप्रोक्कृजा कः” । “स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरिजुवौ ।” कामोऽस्यास्तीति कामी । कामयते इत्येवंशील कामुक । वल्लभे वल्लभः । “कृशृशलिगर्दि-
 रासिबलिवल्लिभ्योऽभः” अभ प्रत्ययः । असूना प्राणानां पतिः असुपति । अतिशयेन प्रिय प्रेयान् ।
 १५ “प्रियस्थिरस्किरोरुबहुलगुरुवृद्धत्प्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रत्यस्फवर्बहिगवर्धिन्नवृद्धाघिवृन्दाः ।” विट शब्दे विटति कामोद्रेकशब्दं करोतीति विटः । “इगुपधेति कः । ‘रमु क्रीडायाम्’ रम् । रमते कश्चित् । त प्रयुङ्क्ते इन् । अस्योपधादीर्घः । “मानुबन्धानां ह्रस्वः ।” रमयतीति रमणः । “नन्यादेयु ।” “युवुभानामनाकान्ता” अनः । “कारितस्य” कारितलोपः । “अपृ” नस्य शत्वम् । वृणोति वर-
 यति वा वरः । कमिता । पतिः । वरयिता । भर्ता । भोक्ता । धवः । रुच्यः । अभीकः । “अभ्य-
 २० नुभ्यां कामपितरि को वा दीर्घश्च” जनयति कः । अभिकः । असुकः । प्राणाधिनाथः । सेक्ता ।

सवित्री जननी माता

त्रयः मातरि । सूते जनयति सवित्री । जनयति जायतेऽस्या वा जननी । माति गर्भोऽत्र
 “मानयति वा माता । भ्रम्बा ।

जनकः सविता पिता ।

- २५ त्रयः पितरि । जनयति उत्पादयतीति जनकः । पुत्रान् सृजते (सूते) सविता । अहितान् पाति रक्षतीति पिता । “उणादौ” पा रक्षणे, पातीति पिता । ‘स्वस्मादयः’^{१६} । ‘स्वसृनपृनेष्टृत्वष्टृ-
 क्षृत्तृहोतृप्रशास्त्रपितृमातृदहितृजामातृभ्रातरः’ एते शब्दास्तुनप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

१. “चतुष्पष्टिकलाभिज्ञा शीलरूपादिसेविनी । प्रसाधनोपचारज्ञा सैरिन्ध्री स्ववशेति चेति काव्य” इत्यमरकोशे दी० स्वा० । २ का० रू० पू० ५०८ । ३ का० मू० २।६।४४ । ४ का० सू० ४।२।५१ । ५ का० सू० ३।४।५५ इतीप् । ६ का० उ० सू० ३।१२ । ७ पा० सू० ६।४।१५७ इति प्रियशब्दस्य प्रादेशः । ८. “इगुपधज्ञाप्रोक्तिर कः” पा० सू० ३।१।१३५। ९ का० सू० ३।४।६५ इति ह्रस्वः । १०. का० सू० ४।२।४९। इति युप्रत्ययः । ११ का० सू० ४।६।५४ इति योरनादेशः । १२ का० सू० ३।६।४४ इतीनो लोपः । १३ का० सू० २।४।४८। १४ कातन्त्रे नैतत्सूत्रमुपलब्धम् । जैनेन्द्रव्याकरणे-“शृङ्खलि-
 कोदरिके” त्यादि सूत्रम् ४।१।१७। तेन कप्रत्ययान्तः पक्षे दीर्घान्तश्चाभिकोऽभीक इति निपातितः । १५ मानयतीत्यर्थः, विग्रहस्तु मातीत्येव । मा माने । तृच् प्रत्ययान्तः । १६. का० उ० २।४२ ।

देहापघनकायाङ्गं वपुः संहननं तनुः ॥ ३८ ॥

कलेवरं शरीरं च मूर्तिः

दश देहे । देहश्च अपघनश्च कायश्च अङ्गं च । समाहारसमासत्वादेकवचनम् । दिह । देधीति देहः । “दिहिजिहिजिलिपिष्वसिन्ध्यतीप्श्यातां च” । एषा णो भवति । अपहन्यते अपघनः । ‘मूर्ति’^१ घनिश्च” अल् । चिञ् चयने । चि । चीयतेऽसौ कायः । “शरीरनिवासयोः कश्चादेः”^५ चिनोते शरीरे निवासे चार्थे षञ् भवति आदेशश्च को भवति । उख, खल, वल, मल, रल, लखि, इखि वल्ग, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, स्वगि, इगि, रिगि, लिगि गत्यर्था । अङ्गति मरणं गच्छतीति अङ्गम् । उप्यन्ते पुरुषार्था अनेनेति वपुः । “अपूवपिचक्षिजनितनिधनिभ्य उस्” एभ्य उस् प्रत्ययो भवति । सहन्यन्ते सपद्यन्ते धातवोऽत्र संहननम् । धातुभिः रसासृग्मासमेदोऽस्थिमज्जशुकैस्तन्यन्ते तनुः । तनू । उणादौ तनुवित्तारे । तनोतीति तनू । “कृषि” चमितनिधनि-^{१०} बधिसर्जिखर्जिभ्य ऊ” एभ्य ऊप्रत्ययो भवति । कलते स्थिरत्व गच्छति कलेवरम्^६ । कडति माद्यति वा कलेवरम् । कडेवर च । अमरसिंहभाष्ये “कलयते कलेवरम्” शीर्षते ज्ञय गच्छति रोगज्वरादिभिः शरीरम् । “कृशशोण्डुभ्य ईर ।” एभ्य ईरप्रत्ययो भवति । उणादित्वात् । मूर्त्तां मोहसमुच्छ्राययो, मूर्च्छ । मूर्च्छनं मूर्तिः । मित्र्या” क्ति । “घोषवन्त्योश्च कृति”^{१०} इति नेट् । “राल्लोप (प्यो)”^{११} इति छकारलोपः । “नाभिनाबोदकुटु” रोर्व्यञ्जने^{१२} दीर्घ । व्यञ्जनम्^{१३} । प्रथ० सि । “रेफ०”^{१४} । विग्रहः ।^{१५} वर्ष्म । पुरम् । पिण्डम् । क्षेत्रम् । गोत्रम् । घनः । पुद्गल । प्रतीक । अवयवः ।

अस्मिन् भवः

अस्मिन् काये भवः कायभवः । देहभवः । अपघनभवः । अङ्गभवः । वपुर्भवः । सहननभवः । तनुभवः । कलेवरभवः । शरीरभवः । मूर्तिभवः । कायजः । देहजः । अपघनजः । अङ्गजः । वपुर्जः । सहननजः । तनुजः । कलेवरजः । शरीरजः । मूर्तिजः । एतानि पुत्रनामानि भवन्ति । भव^{२०} प्रयोगे ।

सुतः ।

पुत्रः सनुरपत्यं च तुक् तोकं चात्मजः प्रजा ॥ ३९ ॥

अथौ पुत्रे । सूयते सुतः । पुनातीति पुत्रः । “पूजो ह्रस्वश्च ।” अस्मात् व्रक्प्रत्ययो भवति धातोर्ह्रस्वश्च । कोऽप्युणाथं । तथा च सोमनीत्याम्^{१६} — “य उत्पन्नः पुनाति वशं स पुत्रः । अथ^{२५} पुत्राभ्यो नरकात्त्रायते वा पुत्रः । सूयते सूनुः । “सूविपिन्या यणवत् ।” आभ्यां नु प्रत्ययो भवति, स च यणवत् । “पूङ् प्राणिगर्भविमोचने ।” पल शल पत्नृ पथे च गर्तौ । न पतति येन जातेन पूर्वजा नरकादौ तदपत्यम् । “नजि”^{१७} पतेर्य” यप्रत्ययः । नस्य^{१८} तत्पु० सि । नपु०

१. का० सू० ४।२।५८। २. का० सू० ४।५।५८। इत्यल् घन्यादेशश्च । ३. का० सू० ४।५।३५ । ४. का० उ० २।४६। ५. का० उ० १।३। ६. कले शुक्ले मधुराव्यक्तध्वनौ वा वर श्रेष्ठम् । “हलदन्तादि” ति सप्तम्या अलुक् । इत्यन्यत्र । ७. क्षीर० भा० २।६।७०। ८. का० उ० ३।४८। ९. का० सू० ४।५।७२। इति क्तिप्रत्ययः । १०. का० सू० ४।६।८०। ११. का० सू० ४।१।५८। १२. का० सू० ३।८।१४। १३. “व्यञ्जनमस्वर पर वर्णे नयेत्” इति पूर्ण कातन्त्रसूत्रम् । १।१।२१। इति व्यञ्जनस्य परवर्णयोगः । १४. “रेफसोर्विसर्जनीय” इति पूर्णम् । का० सू० २।३।६३। इति सकारस्य विसर्गः । १५. का० उ० ४।४१। १६. नी० वा० समु० ५ सू० ११। १७. का० उ० २।८। १८. का० उ० ६।३०। १९. “नस्य तत्पुरुषे लोप्य” इति पूर्णम् । का० सू० २।५।२२। इति नलोपः ।

अका०^१ । मोऽनु०^२ । तोजति^३ तुक् । स्तूयते तोकम्^४ । आत्मनो जात आत्मज । प्रकपेण जाता प्रजा । “सप्तमीपञ्चम्यन्ते जनेर्दे” बाल, पाक, अर्भक, गर्भपोतश्च । पृथुक, शिशु, शव, डिम्भ, वटु, माणवक, भ्रूण ।

उद्वहस्तनयः पोतो दारको नन्दनोऽर्भकः ।

स्तनन्धयोत्तानशयौ-

५

अष्टो बालक । उद्वहतीति उद्वह । खश् । तनोति विस्तारयति वशम्, तनयः । “तनेः^६ कयः” पवते वातेन पोत^७ । दारयति दृणाति वा तरुणीना मनाति ‘दारक । ‘दुनदि समृद्धौ’ नद् । अत एव नन्द । नन्दति कश्चित्तमन्यः प्रयुङ्क्ते । “धातोश्च होतो (हेतो)” इत् । नन्दयतीति नन्दन । “नन्दि” वासिमदिदूषिसाधिशोभिर्विभ्य इनन्तेभ्योऽसहायाम्” युप्रत्ययः । स्वमते “नन्यादे-
१० यु” यु प्रत्ययः “युवुक्तानाम०”- इति युस्थाने अनः । “कारितस्यानामि० कारितलोप । ‘अर्ह मह पूजायाम्’ अर्हत्यर्भक” । “मूकादयः” मूकयुकाऽर्भकपृथुकवृकसृकभूका एते कप्रत्य-
यान्ता निपात्यन्ते । स्तनौ धयतीति स्तनन्धयः । “शुनीस्तनमुञ्जकूलास्यपुष्पेषु घेठः” खश् ।
उत्तान. शेते उत्तानशय । “उत्तानादिपु कर्तृपु” अच् ।

स्त्री चेद् दुहितरं विदुः ॥४०॥

पुत्र्या दुहितरं^{१६} दोग्धि मातृकुल दुनोति वा विदुः कथयन्ति । तनया, पुत्री ।

१५

वयस्याऽली सहचरी सध्रीची सवयाः सखी ।

पट् सख्याम् । वयसा तुल्या वयस्या । वयसी च । आ समन्ताच्चित्तं लाति आलिः । स्त्रियामी । आली । सह सार्धं चरतीति सहचरी । सहाञ्जतीति सध्रीच् । “सहसन्तिरसा सध्रिमिति-
रयः” ईप्रत्यये सध्रीची । सह वयसा वर्तते सवया^{१८} । समान खयातीति सखि (खा) । स्त्रियामी
सखी । “सख्यादयः” सखि अश्रि प्रहि इत्यादयो डिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

२०

आलीविवर्जितं मित्रं मम्बन्धो मित्रयुक् सुहृत् ॥४१॥

चत्वारो मित्रे । आली रहितानि वयस्यादीनि नामानि मित्रवाच्यानि स्मरित्यर्थः । ‘जिमिदा स्नेहने’ । मेघति स्म मेदते स्म वा स्नेहयुक्तो भवति स्म वा मित्रम् । “चिमिदिन्या ऋक्” आभ्या^{२१}

१ “अकारादसम्बुद्धो मुश्च इति पूर्णम् । का० सू० २।२।७। इति सेलोपो मुरागमश्च ।
२ “मोऽनुस्वार व्यञ्जने” इति पूर्णम् । का० सू० १।५।१५। ३ “तुज हिसाबलादाननिकेतनेपु” । चुरादौ
वा णिच् । तोजति पितृधनमादरो ‘तुक्’ इति टीकाशयः । ४. तौति पूरयति पितृकार्यं पितुरभावेऽपीति
तोक् । तु सौत्रो धातुहिमावृत्तिपूर्तिपु । बाहुलकात्क इति व्युत्पत्त्यन्तरमप्यूहम् । ५ का० सू० ४।५।५१।
इति जनेर्दे । ६ का० उ० २।२५। इति तन् धातोः कयप्रत्ययः । ७ पवते वातेनेति विग्रहस्तु नौका-
वाचकपोते बोध्यः । पुत्रार्थे तु पुनाति पवते वा वश पोत । मृगबाह्वमि” इति का० उ० ४।२७।
सूत्रेण तन्प्रत्ययः । ८ पुवतिमनोदारण बालद्राग न घटते । अतो दृणाति दारयति वा मातृयौवनम्,
पित्रोर्निस्सन्तानता जन्यातिवेति तदाशयोऽभ्युज्जेयः । ९ का० सू० ३।२।१०। १० का० सू० ४।२।४९।
“नन्यादे युः” इति सूत्रे दुर्गवृत्तिः । ११ का० सू० ४।६।५४ । १२ का० सू० ३।६।१४। इतीनो लोपः ।
इन कारितसज्ञा कातन्त्रे । १३ का० उ० २।५।८। १४ का० सू० ४।३।३१। १५. का० सू० ४।३।१८
अत्र दुर्गवृत्तिः । १६ दोग्धि पितृकुलं दहति दुनोति वा मातृकुलं दुहिता । स्वसादित्वात्तृन्प्रत्यय
इत्याशयः । १७ का० सू० ४।६।७। इति सहस्य सभ्यादेशः । १८ समान वयो यस्या इति विग्रहो
न्याय्यः । ज्योतिर्जनपदेति समानस्य सादेशः । १९ का० उ० ४।९। २० का० उ० ४।४० । २१. मेघति
मेदते इति वर्तमानकालिको विग्रहो युक्तः, न तु भूतकालिकः ।

त्रक् प्रत्ययो भवति । ककारो यण्वद्भावाऽर्थस्तेनागुणत्वम् । सम्यक् स्नेहेन बध्नातीति सम्बन्धः । मित्र युनवतीति मित्रयुक् । सुष्ठु हरति चित्तं सुहृद्^१ । शोभन हृदय यस्य वा । सखा, स्निग्धः ।

सहकृत्वा सहकारी सहायः सामवायिकः ।

चत्वारः सहाये । सहकृतवान् सहकृत्वा । 'कृञश्च^२' कनिष् प्रत्यय । प्र० सि० । 'घुटि^३ चा०' दीर्घः । सह समन्तात्करोतीति सहकारी । 'नाम्यजातौ^४ णिनिस्ताच्छीत्ये' । सह सार्धम् अयते ५ गच्छति सहाय । समवाये नियुक्तः सामवायिकः । इकण् ।

सनाभिः सगोत्रो बन्धुश्च सोदर्यः

चत्वारो भ्रातरि । समाना नाभिर्भ्यस्य सनाभिः । समान गोत्र यस्य सगोत्रः । बध्नाति स्नेहेन बन्धुः । 'पट्यसि' वसिहनिमनित्रपोन्द्रिकन्दिबन्धित्यणिभ्यश्च' एभ्य एकादशभ्य उ प्रत्ययो भवति । सोदर्यः । समानोदर्य, सगर्भः, सोदर, समानोदर, आत्मीय, स्वजनः, आमः, शातिः, १० सनाभेयः, सपिण्ड ।

अवरजोऽनुजः ॥ ४२ ॥

कनीयान्-

द्वौ (त्रयो) लघुभ्रातरि । अवर पश्चाज्जातः अवरजः । (अनु) पश्चाज्जातः अनुजः । 'सतमी-^६ पञ्चम्योर्ज (म्यन्ते ज) नेर्दे' । अयमनयोरतिशयेन युवा कनीयान् । 'युवाऽल्पयो^७ कन्वा । कनिष्ठः । १५

अग्रजो ज्येष्ठः

अग्रे जातः अग्रजः । प्रकृष्टो वृद्धो ज्येष्ठः । 'वृद्धस्य^८ ज्य' वृद्धशब्दस्य ज्य आदेशो भवति । पूर्वजः, वरिष्ठः, वर्षीयान्, अग्रिय ।

भ्रातृजानी स्वसाऽनुजा ।

त्रयो भगिन्याम् । भ्रातृजाता भ्रातृजानी^९ । स्वस (स्य) ति क्षयति क्षिपति चित्तं स्वस्त्^{१०} । २० ऋदन्तः । अनु पश्चाज्जाता अनुजा । भगिनी । भगनी च । जामि । यामिश्च ।

भर्तुः स्वसा ननान्दा स्यात्-

स्यात् भवेत् । भर्तुः स्वसा भगिनी । ननान्दा । 'तुनदि समृद्धौ' । नद् । 'अत^{११} एव०' नञ् पूर्व । न नन्दति भ्रातृजाया यस्या सत्या सा ननान्दा । 'नजि^{१२} च नन्देऽर्त्तु^{१३} दीर्घश्च' नजि उपपदे

१ सुष्ठु हरतीतिव्युत्पत्तिस्तु तान्तसुहृत्शब्दे सम्भवति । मित्रवाचकदान्तसुहृद्शब्दे तु शोभन हृदय यस्येत्येव । हृदयस्य हृदादेश समासे । २ का०सू० ४।३।९०। ३. 'घुटि चासम्बुद्धौ' ४. का०सू० २।२।१७। का०सू० ४।३।७६। ५ वा०उ० १।६। ६ का०सू० ४।३।११। ७ वर्तमानकातन्त्रे नोपलब्धम् । ८ वर्तमानकातन्त्रे नोपलब्धम् । ९. नान्यस्मिन्कोषे भ्रातृजानीशब्द उपलब्धः, नाप्येतत्साधक किमपि व्याकरणसूत्रम् । भ्रातृजातेति विग्रहोऽपि भगिन्यर्थेऽसंगत । तथापि भ्रात्रा सह मातृजातेति विग्रह्य बाहुलकादौणादिकमण्यप्रत्यय जनघातो प्रकल्प्य अणन्तत्वान्दोपि भ्रातृजानीति शब्दो ग्रन्थकारप्रत्ययात् कथञ्चित् समाधेयः । १० स्वस्यति क्षिपति चित्तं भ्रातृ स्वसेति विग्रहो बोध्यः । 'असु क्षेपणे' दिवादौ । सुपूर्वकात्तत् 'सुज्यसेऽर्त्तु' इति ऋन्प्रत्यय । कातन्त्रोणादौ तु 'स्वसादयः' इति 'श्वस् प्राणने' इत्यतः ऋन्प्रत्यये शकारस्य सकारे च 'श्वसितीति स्वसा' इत्याह । अत्र क्षिपतीति दर्शनात् 'असु क्षेपणे' इत्येव भाष्यं कर्तुं रभिप्रेत इति ज्ञायते । ११. 'अत एव वर्जनादिदमनुबन्धाना नोऽस्तीति' दुर्गवृत्ति । का० सू० ३।६।१०। १२ का० उ० सू० २।३।९।

सति नन्देर्धातोः ऋन् प्रत्ययो भवति अकारो दीर्घश्च भवति । ननान्दा इति जातम् ।

मातुलानी प्रियाम्बिका ॥ ४३ ॥

द्वौ मातुलभार्याभ्याम् । मातुलस्येय भार्या मातुलानी । “इन्द्र-वरुणभवशर्वरुद्रहिमयमारण्य-यवयवनमातुलाचार्याणामातुक् ईप्स्व” । अम्बैव अम्बिका । “अम्बादिभ्यो डलोका” ड, ल, इक, प्रत्यया ५ भवन्ति । प्रिया चासौ अम्बिका प्रियाम्बिका ।

वैर्यारातिरभिन्नोऽरिर्द्विट् सपत्नो द्विषद्रिपुः ।

भ्रातृव्यो दुर्जनः शत्रुर्दुष्टो द्वेषी खलोऽहितः ॥ ४४ ॥

पञ्चदश शत्रौ । विशिष्टाम ई लक्ष्मीम् ईरयति निर्गमयति वीरः, वीरस्य कर्म वैरम् । [वैरमन्यास्तीति वैरी ।] वैरिपुरमियर्ति गच्छति आरातिः^१ आरातिश्च । न मित्रम् अमित्रम् । १० अधर्मादृतादिवत् । “विपक्षे नञ्” इति सारस्वत-सूत्रम् । शत्रुत्वमियर्ति अरिः । द्वेष्टीति द्विट् । “सत्”सूत्रिषुद्बुद्बुजविदभिदक्षिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्तिप् । एकार्थाऽभिनिवेशेन समान पतति सपत्न । द्विष्टे द्विषन् । निष्ठुर रयति रिपुः । “रज्जुतर्कुवल्गुफल्गुशिशुरिपुपृथुनघव ।” एते उपप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । निपातनमप्राप्तप्रापणार्थं प्राप्तस्य बाधनार्थम् । लक्षणेन यद्यदसिद्ध तत्सर्वं निपातनात्सिद्धम् । तथा क्षीरस्वामिन-^२“रेपयति रिपुः । रेपु गतो । भ्रातर व्ययति मारयति १५ “भ्रातृव्य । दुष्टजन दुर्जनः । परमभट्टारकश्रीयश कीर्तिसम्भाषितग्रन्थ—

“प्रशस्या न नमस्याऽपि दुजनैर्या विधीयते ।

कण्टकः पादलग्नोऽपि न शुभाय प्रजायते ॥”

तथा च सूक्तिमुक्तावल्याम् —

“वर क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्त्रकुहरे

२० वरं भस्पापातो ज्वलदनलकुण्डे विरचितः ।

वर प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्निहितो

न जन्य दौर्जन्यं तदपि विपदा सद्म विदुषा ॥”

अत्र ये केचिद् दुर्जना, मन्ति, तेषां मस्तकेऽशनिपातो भवतु । तथा च^३ —

“दुज्जण सुहियउ होव जगि सुयणु पयासिउ जेण ।

२५ अमिउ विसे वासरु तिमिणि जिमि मरगउ कच्चेण ॥”

शृणाति शीर्यते वा^४ “शत्रु । दूष्यते निन्द्यते लोके दुष्ट । द्वेष्टि^५ “द्वेषोऽस्त्यस्य वा द्विषन् ।

१ पा० सू० ४।१।४९। अत्र मन्त्रे यमेत्यधिक पाठ । २ “हायनान्तयुवादिभ्योऽण” युवादित्वादण । ततो मत्वर्थे “अत इन्ठनौ” इतीन् । ३. “ऋ गतो” । आङ्पूर्वकाद् ऋधातोर्बाहुलकादातिप्रत्यय । अन्यत्र तु न राति सुख ददातीति नञ्पूर्वकात् ‘रा’ (दाने) धातो क्तिच् क्तोच सञ्जायामिति क्तिच् । ४. “तदन्यतद्विरुद्धतद्भाषेषु नञ् वतते” इति वक्तव्यम् । “अन् स्वरे” सार० समा० १४ सू० । ५ का० सू० ४।३।७४। ६ का० उ० म० १।६। ७ क्षीर० भा० २।८।१०। ८ “व्येज् सवरणे” धातूनामनेकार्थत्वाद्विषाऽर्थे वृत्ति । आतोऽनुपगौ क । ९. निर्णयसागरयन्त्रालयप्रकाशितकाव्यमालाधत्तम् गुच्छेसूक्ति-मुक्तावलौ ६१ श्लो० । १० सावयध० दो० २। ११ “जन्वादय । जन्तुश्मलु शिशुश्च । एते हप्रत्य-यान्ता निपात्यन्ते” । इति का० उ० दुर्ग० वृ० ३।६६। १२ द्वेषोऽस्त्यस्येति केवलमर्थाऽभिप्रायेण । विग्रहस्तु द्वेष्टीत्येव । शत्रुप्र० ।

खलति सजनगुणानाच्छादयतीति खलः । न मैत्रीं हिनोति गच्छति, न हितो वा, 'अहित । अभियातिः, प्रतिपक्ष, असहनः, जिघासु, परिपन्थी, पर, असुहृन्, अपथी, पर्यवस्थाता, शात्रव, प्रत्यनीकः, द्वेषणः, दुर्हृद्, दस्यु, अभिमन्थी ।

दीधितिर्भानुरुक्षोऽशुर्गमस्तिः किरणः करः ।

पादो रुचिर्मरीचिर्भास्तेजोऽर्चिर्गौर्धुतिः प्रभा ॥४५॥

५

षोडश किरणे । दीधिते दीप्यते दीधिति । 'दीधीडो डिति' दीधीडो धातोर्धितिः प्रत्ययो भवति । 'भा दीमौ' भाति भानुः । 'दाभारिवृन्भ्यो नु ।' एभ्यो नु. प्रत्यय स्यात् । वसति रवौ 'उख' । पुसि । अश्रुते जगद् व्याप्नोति अंशुः । स्त्री । उणादौ । अनच् । अनतीति अशुः । अनेः 'शु' अनेधातो गुप्रत्ययो भवति । ["दादीमौ" भाति भानुः । "दाभारी"] गा सुव वमस्ति 'गमस्ति ।

१०

“वर्णोगमो गवेन्द्रादौ सिहे वर्णविपर्ययः ।

षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥”

कीर्यते किरणः । हलायुधे—“किरति विक्षिपति तमांसि किरणः ।” “कृभूभ्या कन । कीर्यते करः । पद्यते पादः । “पदरजविशस्पृशोच्चा घञ् ।” रोचते रुचिः । म्रियते तमोऽनेन मरीचि । स्त्रीनां । उणादौ । म्रियते मरीचि । “मृकणिभ्यामीचि ” आभ्यामीचि प्रत्ययो भवति । भासते क्विप् सान्तो भास् । स्त्रीनां । 'पु स्येवेति शब्दभेदः । भा । भासो । भास । तेजयतीति तेजस् । अर्चयतीति अर्चिप् । अर्च्यते पूज्यते अर्चिः । 'अर्चि' 'शुचिरुचिर्दुष्पिच्छिदिच्छिर्दिभ्य इतिः ।” गच्छति तमोऽजोदिते गौ । स्त्रीनां । द्योतन द्युति । द्योतने (वा) द्युति । प्रभाति प्रभा । रोचि, अभीशु, प्रद्योत, रश्मि, वृष्णि, रुचि, विभा, धाम वसु केतु, प्रग्रह, उपधृति, धृष्णि, पृश्नि, मयूख, विरोक, शोकञ्च ।

२०

दीप्तिर्ज्योतिर्महो धाम रश्मिरूर्जो विभावसुः ।

सप्त तेजसि । दीप्यते दीप्ति । द्योतनं ज्योति । 'ज्योतिरादयः' १३ । ज्योतिर्वहिरादयः । महति मह १४ । सान्तम् । दीप्यते सूर्येण नान्तम् धामन् । रशि सोत्र । रशति अश्रुते रश्मि । “ऊर्ज बलप्राणनयो ।” ऊर्जयतीति ऊर्ज । क । [“विभा वसुर्गमस्ति स विभावसुः ।] (विभा । वसु ।)

शीतोष्णप्रायपूर्वाञ्चौ तदन्ताविन्दुभास्करो ॥४६॥

२५

तथोरन्तौ १५ तदन्तौ । इन्दुभास्करो । इन्दुश्च भास्करश्च इन्दुभास्करो । कथभूतौ १ शीतोष्ण-

१ न मैत्रीं हिनोतिस्मेति भूते विग्रहो बोध्यः । गत्यर्थत्वाकर्त्तरि क् । न हितमस्मादिति रामाश्रम । २ का० उ० सू० ६।२६ । ३ का० उ० सू० २।७ । ४ “वस् निवासे” वस् धातो 'स्मायि तञ्जी' त्यादि उ० सूत्रेण रक्प्रत्यय सम्प्रसारण च । ५ का० उ० सू० ५।४८ । अशयति विभाजयति “अश विभाजने” उपप्रत्यय व्युत्पत्त्यन्तरं च । ६ पुनरुक्तत्वात्परिहार्यं । ७ वमस्ति दीपयति । “भस भर्त्सनदी-प्यो” । तिप्रत्यय । पृषोदरादिन्वाषोडशादौ वर्णविकारवदोकारस्याकारः । ८ शा० सू० २।२।७२ । “पृषोदरादयः” इत्यत्र कारिकारूपेण पठितः । ९ का० उ० सू० ६।१४ । १० का० सू० ४।५।१ । ११ का० उ० सू० ३।६३ । १२ का० उ० सू० २।४।१ । १३ का० उ० सू० २।४५ । १४ महन् मह । महते पूज्यते वेति रामाश्रम । १५ वस्तुतस्तु “विभा” इति “वसु” इति च तेजसः सत्ता । समुदितो “विभावसु” शब्दस्तु सूर्याग्निवाची । तदुक्तं “सूर्यवह्नी विभावसू” इति अम० को० ३।३।२२६ । १६ ते दीधित्यादयः शब्दा अन्ते यथोक्तौ तदन्तौ इत्येव समामो बोध्यः । तथोर्गन्ताविति समासस्तु लेखकप्रमादात्प्रयुक्तः ।

- (प्राय) पूर्वाञ्चौ । शीतीष्णौ (प्रायेण) पूर्वाञ्चौ ययोरिन्दुभास्करयो (तौ) शीतोष्ण (प्राय) पूर्वाञ्चौ । शीतदीधिति । शीतदीधितिमान् । शीतभानु । शीतभानुमान् । शीतांशु । शीतांशुमान् । शीतगभस्ति । शीतगभस्तिमान् । शीतकिरण । शीतकिरणवान् । शीतपादः । शीतपादवान् । शीतरुचि । शीतरुचिमान् । शीतमरीचि । शीतमरीचिमान् । शीतार्चि । शीतार्चिमान् । शीतभा । शीतभावान् । शीतगु । शीतगोवा^१ (मा) न् । शीतयुति । शीतयुतिमान् । शीतप्रभ । शीतप्रभावान् । शीतदीप्ति । शीतदीप्तिमान् । शीतज्योति । शीतज्योतिमान् । शीतमहा । शीतमहस्वान् । शीतधामा । शीतधामवान् । शीतरश्मि । शीतरश्मिमान् । शीतार्ज । शीतार्जवान् । शीतविभावसु । शीतविभावसुमान् । किरणशब्दानां (न्देभ्य) पूर्वं शीतशब्दप्रयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति । उष्णशब्दप्रयोगे सूर्यनामानि भवन्ति । उष्णदीधिति । उष्णदीधितिमान् । उष्णभानु । उष्णभानुमान् । उष्णोक्ष । उष्णोक्षवान् । उष्णांशु । उष्णांशुमान् । उष्णगभस्ति । उष्णगभस्तिमान् । उष्णकिरण । उष्णकिरणवान् । उष्णपाद । उष्णपादवान् । उष्णरुचि । उष्णरुचिमान् । उष्णमरीचि । उष्णमरीचिमान् । उष्णभा । उष्णभास्वान् । उष्णनेत्रा । उष्णनेत्रस्वान् । उष्णार्चि । उष्णार्चिमान् । उष्णगु । उष्णगोमान् । उष्णयुति । उष्णयुतिमान् । उष्णप्रभ । उष्णप्रभावान् । उष्णदीप्ति । उष्णदीप्तिमान् । उष्णज्योति । उष्णज्योतिमान् । उष्णमहाः । उष्णमहस्वान् । उष्णधामा । उष्णधामवान् । उष्णरश्मि । उष्णरश्मिमान् । उष्णार्ज । उष्णार्जवान् । उष्णविभावसु । उष्णविभावसुमान् ।

शशी विभुः सुधासूतिः कौमुदीकुमुदप्रियः ।

कलाभृच्चन्द्रमाश्चन्द्रः कान्तिमानोषधीश्वरः ॥ ४७ ॥

- दश चन्द्रे । शशी ऽस्यास्तीति शशी । विदधात्यमृतं विभुः । “वै घात्रश्च^२” । सुधा अमृतं स्यते सुधासूतिः । कुमुदानामियं विकाशः (स) हेतुत्वात्कौमुदी (ज्योत्स्ना तस्याः प्रियः कौमुदीप्रियः) । कुमुदानां प्रियः अभीष्टः कुमुदप्रियः । कला विभत्तीति कलाभृत् । “मा माने” चन्द्र मातीति चन्द्रमाः^३ । ‘चन्द्रे’ माने “चन्द्रे” उपपदे अस्मादसन् प्रत्ययो भवति । अगुणवद्भाववादकारलोपः । भिन्नयोगः सप्तार्थः एव । चन्दतीति चन्द्र । “रुद्रायि” तन्निवञ्चिशक्तिपिप्लुदिरुदिमदिमन्दिचन्द्र्युदीन्द्व्यो रक्” । कान्तिरस्वास्ति कान्तिमान् । ओषधीनामीश्वरः ओषधीश्वरः । इन्दुः, सोमः, राजा, रोहिणीवल्लभः, अञ्ज, ऋक्षेशः अत्रिनेत्रप्रसूतः । तथा चोक्तं यशस्तिलके—^४

“आहु नैत्रोत्थमन्त्रेः स्मृतममृतनिधेयं हरेर्नर्मबन्धु
मित्रं पुण्यायुधस्य त्रिपुरविजयिनो मौलिभूषाविधानम् ।
वृत्तिक्षेत्रं सुगणां यदुकुलतिलकं बान्धव करवाणां,
सम्प्रीति वस्तनोतु द्विजरजनियतिश्चन्द्रमाः सर्वकालम् ॥”

१ “मादुपधायाश्च” इत्यादि बन्धविधायकं सूत्रम् । मवर्णाऽवर्णान्तामवर्णावर्णोपधाच्च मतोर्मकारस्य वकारः शास्ति । अत्र तथात्वाभावात् “शीतगोमान्” इति वक्तव्यम् । वस्तुतस्तु शीतगोशब्दस्य कर्मधारये ततो “गोरतद्धितलुकि” इति टच्चो दुर्बलत्वात् “शीतगववान्” इति सुवचम् । सिद्धान्ततस्तु नेटशस्थले मतुञ्जितः । तदुक्तं “न कर्मधारयान्त्वर्थयो बहुव्रीहिश्वेत्यर्थप्रतिपत्तिकरः” । २ का० उ० सू० ५।२। कुन्त्यय । ३. चन्द्रं कर्पूरं मातिं तुलयति सादृश्येनेति ग्रन्थोक्तविग्रहार्थः । चन्द्रमाह्लादं मिमीते तुलयति सादृश्येनेति विग्रहान्तरमप्युक्तम् । ४ का० उ० सू० ४।५७। ५. का० उ० सू० २।४५। आशवा० २।४७ श्लो० ।

प्रायेथाशुः, ज्वेतरोचिः, शशाङ्कः, द्विजराजः, रजनिकरः, पीयूषचिः, निशीथिनीनाथः, जैवातृकः, मृगाङ्कः, दाक्षायणीरमणः, मा^१ अप्युच्यते, सत्यभामेतिवत् । सुधामूर्तिः अमृतनिर्गमः, समुद्रनवनीतम् । देश्याम्^२ ।

उडुनि भानि तारकं नक्षत्रम्—

चत्वारो नक्षत्रे । अवति प्रभाम् उडु^३ । ब्रीङ्गीबे । तथा चामरसिद्धे^४—

५

“नक्षत्रसृक्षं भन्तारा तारकाऽप्युडु वा स्त्रियाम् ।”

भाति दीप्यते भम् । क्षीरस्वामिनि—“भा विद्यतेऽस्य भम् ।” तरन्त्यनया तारा^५ । तारपति वा । ऋक्षोति हिनस्ति तम् ऋक्षम्^६ । नक्षति खे याति न तम् क्षि (क्ष) णोति वा नक्षत्रम् । “अमि^७ नक्षिकडि^८योऽत्रः” । तारक क्लीबेऽपि । यच्च^९ शाश्वतः—

“नक्षत्रे वाऽक्षिमध्ये च तारकं तारकाऽपि च ।

१०

लक्ष्य च—

द्वित्र्योमिनि पुराणमौक्तिकघनच्छाये स्थितं तारकैः”

तत्पतिः

(नक्षत्र पर्यायेभ्य पर) पतिशब्दप्रयोगे चन्द्रनामानि भवन्ति । उडुपति । तारापति । ऋक्षपति । न.त्रपतिः । उडुराजः । उडुस्वामी । उडुनाथः । नक्षत्रेश्वर । तारेन्द्र ।

१५

निशा ।

क्षणदा रजनी नक्तं दोषा श्यामा क्षिपा

सम रात्रौ । निशाति तनूकरोति चेष्टामिति निशा, निशो वा । “आत”^१ “चोपसर्गो” । क्षणमवसर ददातीति क्षणदा । तमसा रञ्जति रजनि । स्त्रियामी. । रजनी । रजनशब्दाद् वा नदा-
दित्वादाः । नेनेक्षि नक्तम् । दुष्ट दूषयति याऽत्र दोषा । आदन्तोऽव्ययाऽनव्यय । श्यायन्ते गच्छन्ति २०
रात्रित्ररा अत्र श्यामा । तथाऽनेकार्थः^२ (‘अनि’)मञ्जर्याम्—

“श्यामा रात्रिस्तु विट्श्यामा श्यामा स्त्री मुग्धयौवना ।

श्यामा प्रियङ्गुराख्याता श्यामा स्याद् वृद्धदारिका ॥”

क्षिप प्रेरणे । क्षिप् । क्षेपण क्षिपा । “^३पाऽनुबन्धमिदादिभ्यस्त्वड्” । क्षिप्यन्ते स्वापेन जनैः, निर्गम्यते वा । तमी । तमा आदन्तोऽव्ययानव्यय । तमिस्त्रा । तमस्विनी । विभावरी । नक्तमुखा । शर्वरी । २५
त्रियामा । निशीथिनी । यामिनी । वसति । वासनेयी । रात्रि ।

१. “लोपः पूर्वपदस्य च अच्प्रत्यये तथैवेष्ट” इति कात्यायनवार्तिकम् । ५।३।८३। पा० सूत्रस्य पूर्वपदलोपविधायकमत्र प्रमाण बोध्यम् । २. ‘देशी’ शब्दः प्रान्तभाषावाचकः । क्षीरस्वामि-
कृताऽमरभाष्येऽपि बहुत्र उपलभ्यते । साधुत्वमस्य पचादेशकृतिगणत्वात् “देवी” इतिवद् बोध्यम् । वस्तुत-
स्त्वर्यं शब्दो दैशिक एव । ३. अवति प्रभा रक्षतीति ऊ । “अव रक्षणे” क्तिप् । “ज्वरत्वे” त्यूड् । डयते
इति डुः । डयतेर्हुप्रत्ययः । ऊआसौ डुश्चेति कर्मधारय । नक्षत्राणां रक्षार्हत्वादाकाशोत्पत्तनशीलत्वाच्च
उडुत्वमुपपन्नम् । ‘इको ह्रस्वः’ इत्यूकारस्य ह्रस्व इति टीकाशयः । ४. अम० को० १।३।२१। ५. क्षीर०
भा० १।३।२२। ६. मिदादित्वादड् । अडि परे गुणः । निपातनाद्दीर्घः । ७. ऋषति गच्छति “ऋषी गतौ”
तुदादि । औणादिकः सप्रत्ययः क्तिप् । षत्वकत्वक्षत्वानि । ऋक्षमिति । ८. का० उ० सू० ३।५। ९.
“यच्च शाश्वतः” इत्याख्य “स्थित तारकै” इत्यन्तः पाठः १।२।२२। क्षीरस्वामिभाष्यस्योऽत्र गृहीतः ।
१०. का० सू० ४।५।८४। ११. ९६ श्लो० श्लोका० । १२. का० सू० ४।५।८२ ।

करः ॥४८॥

(निशापर्यायात्परं) करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति । निशाकर । क्षणदाकर । रजनीकर । नक्तङ्कर । दीपाकर । श्यामाकर । क्षपाकर ।

तरणिस्तपनो भानुर्ब्रध्नः पूषाऽर्यमा रविः ।

५

तिग्मः पतङ्गो द्युमणिर्मार्तण्डोऽर्को ग्रहाधिपः ॥४९॥

इनः सूर्यस्तमो ध्वान्ततिमिरारिर्विरोचनः ।

- सप्तदश सूर्ये । तरन्त्यनेनेति तरणिः । “अतृ^१सुधृत्र^२धूम्यश्च^३विश्रुतिप्रहिम्योऽनि ।” तपति त्रिलोकीं तपनः । भाति दीयते करैः भानुः । “^२दाभास्विभ्यो नुः” नुः प्रत्ययः । “बन्ध बन्धने” बन्धाति जन्तुदृष्टीर्ब्रध्नः । “^३बन्धेर्ब्रधिश्र” । अस्मान्नक् प्रत्ययो भवति ब्रध्यादेशश्च । इकार उच्चारणार्थः ।
- १० पुष पुष्टौ । पुष्णाति वर्धते तेजसा पूषा । पूषादयः ४ — ‘पूषन्नर्यमनुक्षत्रवन्लोहन्मातरिश्वनक्लेदन्स्नेहन्मूर्धनयूषन्दोषन्’ एते कन्ययन्ता निपात्यन्ते । इयतीति अर्यमा । ‘अ गतो’ । रूयते स्तयते रविः । “इ” सर्वधातुभ्यः । तीतिक्षतीति तिग्मः । “युञिश्चितिजा ध्मक्” । पतति नक्षत्रपथे पतङ्गः । “तृ-पतिभ्यामङ्ग” । आभ्यामङ्गः प्रत्ययो भवति । दिवो मणिरिव द्युमणिः । मृतण्डस्यापत्य मार्तण्डः । मृतण्डश्च । आकाशमियति अर्कः । उणादौ “अर्च पूजयाम्” । अर्च्यते अर्कः । “^४इण्भीकापाश्ल्य चिकृदाधाराभ्य कः” एभ्यः क प्रत्ययो भवति । ग्रहाणामधिप स्वामी ग्रहाधिपः । एतीति इनः । “^५इण्जिकृषिभ्यो नक्” । सुवति (प्रेरयति कर्मणि) लोकान् सूर्यः । “सूर्यरूच्याव्यया ^५ कर्तरि” । सूर्य इति यप्रत्ययान्तो निपातः । तमश्च ध्वान्त च तिमिरश्च तमो ध्वान्ततिमिरा, तेषामरिः, — तमोऽरि, ध्वान्तारिः तिमिरारिः । विरोचते इत्येवशीलो विरोचनः । “^६रुचादेश व्यञ्जनाद्” । रुचा-देर्गणाद् व्यञ्जनादेर्यु भवति । आदित्य, सविता, सहस्रकिरण, प्रद्योतन, भास्कर, तिग्माणुः, दिनमणि, २० भास्वान्, विवस्वान्, हरि, विकर्तन, भगः, गोपतिः दिनकर, सूरः सूरश्च, अशुमाली, मिहिरः, तिमिर-रिपुः, अशुमान, अशुः, हरिदश्वः, सनाश्वः, प्रभाकर, भानुमान्, हसः, खगः, मित्र, चित्रभानुः, अहर्षति, कर्मसाक्षी, जगच्छुः, द्वादशात्मा, त्रयीतनुः ।

दिनं दिवाऽहर्दिवसो वासरः—

- पञ्च दिवसे । “दोऽवखण्डने” एति खण्डयति अन्धकारमिति दिनम् । “दोनात्^१ इ (यतेर्गि) २५ च” एते नप्रत्ययो भवत्याकारस्येच । रविर्दी [र्घान् दी] प्यतेऽत्र, आदन्तमव्ययम् दिवा । अदन्त क्लीबम् । दिव विदन् । न जहाति काल (रवि)महः । “नत्रि^२ जहाते” इति क्तिप् (कनिः) । दीव्यतीति दिवसः^३ । दिवसम् । “^४वेतसवाहसदिवसफनसाः” एतेऽस्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । वासयत्यत्र वासरः^५ । वासोऽपि । उभयम् । “देवि^६वटिजठिभ्रमिवासिभ्योऽरः” एभ्योऽर प्रत्ययो भवति । युः । घसः ।

१. का० उ० सू० २।४३ । २. का० उ० सू० २।७ । ३. का० उ० सू० २।५२ । दुर्गवृत्तिश्च । ४. का० उ० सू० २।५ । ५. का० उ० सू० ३।१४ । ६. का० उ० सू० १।५७ । ७. का० उ० सू० १।२२ । ८. का० उ० सू० २।५७ । ९. का० उ० सू० २।५१ । १०. का० सू० ४।२।३। ११. का० सू० ४।४।३ । १२. का० उ० सू० ६।३७ । १३. का० उ० सू० २।४ । १४. दीव्यन्ति ऋडन्ति प्राणिनोऽत्र दिवस इत्यपि । १५. का० उ० सू० ३।११ । १६. “वास उपसेवायाम्” वासयति सूर्यालोक प्राणिनो वा वासरः । विग्रहे “अत्र” इति पदमधिकम् । १७. नैतत्सूत्रम् का० उणादौ लब्धम् । तत्र “कृवाभ्यः सरक्” ३।६२ । इति सूत्रम् । वातीति वासर, वाधातो. सरक् प्रत्यय इत्युक्तम् । तत्रैव चतुर्थपादे ३३ तमपरमपि सूत्रम् “मद्यसिबशिवासिभ्य सरः” इति वासिधातोः सरप्रत्यय उक्तः । वासयतीति वासरः । कौमुदीस्थमुणादिसूत्रम् “अतिक्मिचमिभ्र-मिदिबिवासिन्यश्चित्” ३।१२७ । इति वासिधातोरप्रत्ययः ।

तत्करश्च स ॥ ५० ॥

दिनकरः, दिवाकरः, ग्रहस्करः, दिवस्कर, वासरकरः, इत्यादि सूर्यनामानि भवन्ति ।

चक्रवाकाब्जपर्यायबन्धुः—

चक्रवाकश्च अब्ज च चक्रवाकाब्जे, तयोश्चक्रवाकाब्जयोः (परत्र) बन्धु शब्दप्रयोगे सूर्य-
नामानि भवन्ति । चक्रवाकबन्धुः । अब्जबन्धु । पद्मबन्धु । कमलबन्धु । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

५

कुमुदविप्रियः ।

कुमुदानां (परत्र) विप्रियशब्दे प्रयुज्यमाने सूर्यनामानि भवन्ति । कुमुदविप्रियः । कैरवविप्रिय ।
कुमुदविवल्लभः । इत्यादि ।

यमुनायमकानीनजनकः सविता मतः ॥ ५१ ॥

यमुनाजनक । यमजनकः । कानीनजनक । सविता । मतः कथित ।

१०

वाहोऽश्वस्तुरगो वाजी हयो धुर्यस्तुरङ्गमः ।

सप्तिरर्वा हरी रथ्यः—

एकादशाश्वे । वाह्यते गम्यतेऽश्ववाहैर्वाहः । तथा ऽनेकार्थः (ध्वनि) मञ्जर्याम्—

“वाहो युग्यं घनो वाहो वाहके वाह इत्यपि ।

वाहो मानविशेषश्च वाहो बाहुरिति स्मृतः ॥”

१५

“अशू व्यामौ ॥ अशू । असृते व्यानोति वेगेनाभीष्टस्थानमित्यश्वः । अथवा “अशू भोजने”
अश्राति भक्षयति मुद्गादीनित्यश्वः । “अशिलटिखटिविशिष्य कः” । वमात्रः । “घोषवत्योश्च
कृति” नेट् । “उरो (रसा) गच्छतीति उरगः । “डोऽसशायामपि” । पूर्वमश्वाना वाजा अभूवन्निति
श्रुतिः । वाजाः सन्त्यस्य वज्रतोत्येवशीलो वा वाजी । इदन्तोऽपि, वाजि । तथा हैमनाममालायाम्—

“वाज वाजस्तु पक्षेऽपि मुनो निःस्वनवेगयोः ।”

२०

हिनोति गच्छति वर्धते (वा) अनेन हयः । धुरि सङ्ग्रामे साधुधुर्यः । “यदुगवादितः” । तुर
(रेण) गच्छति तु (तो) तार्त्ति त्वरते वा तुरङ्गमः । “गमश्च” नाम्युपपदे गमेश्च सशायो भवति
“घातवादेः” य सः । सपत्यध्वान गच्छतीति सप्ति । “सपेक्षिततितनः” सपेक्षास्तास्ति तति तन् एते
प्रत्यया भवन्ति । अर्धति गच्छति अनेन नान्तः, “अर्धन्” । इत्यनेन हरिः । रथे साधू रथ्यः । गन्धर्वः,
तार्क्ष्य, ययु, घोटकः, अर्दनिः, वीति, पीति ।

२५

१ कानीन कर्ण । कन्या ऽवस्थाया कुन्त्या कर्णादुत्पन्न इति पौराणिकी कथा ऽनुसन्धेया ।
२. ११ श्लो०श्लोका० । ३ का० उ० सू० २।१।४ का० सू० ४।६।८०।५ आन्तोऽय पाठः । उचितस्तु तुरेण
वेगेन गच्छतीति तुरगः । ६ का० सू० ४।३।४७।७ अने० स० २।७।८ धुर वहतीति धुर्यः । “धुरो यद्दको”
इत्यन्यत्र । ९ का० सू० २।६।११ १० तुरपूर्वकाद्गमे “गमश्च” इति खे तुरङ्गमः । तोतोति त्वरते वेति विग्रहे
तत्सिद्धिप्रकारोऽन्यथा कल्पनीयः । ११. का० सू० ४।३।४५। १२ का० सू० ३।८।२४। १३ का० उ० सू०
५।३। ४४, “अर्ध गतौ” बाहुलकात्कनिन् । १५ “रथ वहतीति सुवच । “तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम्”
इति यत् । १६ अर्दनिशब्दस्याश्वार्थे प्रमाणं मृग्यम् । कोशान्तरेऽर्दनिशब्दार्थश्चेत्यम्—“अर्दनी चार्दनि-
रपि स्त्रियः स्यु प्रार्थनाऽर्थना” कल्प० को० १।१।२१। अर्धतीशब्दोऽश्विनीपर्यायस्तु सर्वसम्मतः । “वीति”
“पीति” शब्दयोरश्वार्थे प्रमाणमधस्तात् “वीति सतिर्दक्षिणावा वातस्कन्वार्थ इत्यपि” कल्प० को० १।५।
१९३। “पीति पाने सपूर्वा तु सहपाने ह्ये पुमान्” विश्व० ।

सप्ताद्यश्वो मयूखवान् ॥ ५२ ॥

अश्वशब्दस्य (ब्दात्) पूर्वं यदि सप्तादि (मशब्दः) तदा सूर्यनामानि भवन्ति ।
सप्तवाहः । सप्ताश्वः । सप्ततुरगः । सप्तवाजी । सप्तहयः । सप्तधुर्यः । सप्ततुरङ्गमः । सप्तसति । सप्तार्वा ।
सप्तहरिः । समरथ्यः ।

५

ख विहायो वियद् व्योम गगनाकाशमम्बरम् ।

द्यौर्नभोऽभ्रोऽन्तरीक्षं च—

एकादश गगने । खनति शून्यत्वेन खन्यते वा 'खम् । विजहाति सर्वं विहायः' । अवाय विहायसा
पक्षिणा मार्गं विह यच्छतीति वियत् । (अथवा वीना पक्षिणा मार्गं यच्छति वियत्) । अमरेन्द्रभाष्ये—
“वियच्छति^३ विरमति वियत् ।” वायुना वीयते (व्यवति व्ययते वा) व्योमन् । “स्त्रिव्यवि^४मद्विज्वरि-
१० त्वरामुपधाया” एषामुपधाया वकारस्य चोऽट् भवति । “सर्वधातुभ्यो मन्^५” (इति विपूर्वाकादवेर्मन्) । गम्यते
सर्वमनेन गगनम्^६ । क्लीबे वा । गच्छत्यनेन गगनं वा । आकाशन्ते सूर्यादयोऽत्राकाशम् । न काशते वा
छान्दसो दीर्घः । अम्बते शब्दायते अम्बरम् । दीव्यन्ति पक्षिणोऽत्र द्यौः । स्त्रियाम् । नह्यति बध्नाति
सर्वमात्मना सान्तम् नभः । नभम् इत्यदन्तम् नभस च । न भ्राजतेऽभ्रम् । अन्तः शब्दाण्यत्र अन्तरीक्षम् ।
पृषोदरादित्वम् । द्यावाभूम्योरन्तरीक्ष्यते वा अन्तरिक्षम्, अन्तरीक्षं च । मरुद्वर्त्मन् । तारापथः । पुष्करम् ।
१५ विष्णुपदम् । त्रिदिवम् । नाकम् । अनन्तम् । सुरवर्त्म । महाव^७ (वि) लम् । देश्याम् ।

मेघवायुपथोऽप्यथ ॥ ५३ ॥

मेघशब्दाग्रे वायुशब्दाग्रे च पथशब्दे प्रयुज्यमाने आकाशनामानि भवन्ति । मेघपथः । मेघमार्गः ।
घनपथः । घनमार्गः । पर्जन्यपथः । पर्जन्यमार्गः । मिहिरपथः । मिहिरमार्गः । नभ्राट्पथः । नभ्राण्मार्गः ।
तडित्पतिपथः । तडित्पतिमार्गः । सौदामिनीपतिपथः । सौदामिनीपतिमार्गः । वायुपथः । वायुमार्गः ।
२० वातपथः । वातमार्गः । अनिलपथः । अनिलमार्गः । मरुपथः । मरुमार्गः । समीरणपथः । समीरण-
मार्गः । गन्धवाहपथः । गन्धवाहमार्गः । श्वसनपथः । श्वसनमार्गः । सदागतपथः । सदागतमार्गः ।

तच्चरः खेचरः—

तत्र आकाशे चरतीति तच्चरः । आकाशाग्रे चरशब्दे प्रयुज्यमाने विद्याधरनामानि भवन्ति ।
खचरः । विहायश्चरः । वियचरः । व्योमचरः । नभश्चरः । गगनचरः । अम्बरचरः । आकाशचरः । अन्तरिक्ष-
२५ चरः । मेघपथचरः । मेघमार्गचरः । वायुपथचरः । वायुमार्गचरः । घनपथचरः । घनमार्गचरः । घनाघन-
पथचरः । घनाघनमार्गचरः । जीमूतपथचरः । जीमूतमार्गचरः । अश्रपथचरः । अश्रमार्गचरः । बलाहक-
पथचरः । बलाहकमार्गचरः । पर्जन्यपथचरः । पर्जन्यमार्गचरः । इत्यादिनामानि विद्याधरस्य ज्ञेयानि ।

तद्गः,

तत्र गगने गच्छतीति तद्गः । गगनाग्रे “ग” शब्दे प्रयुज्यमाने शकुन्तनामानि भवन्ति ।
३० खगः । विहायोगः । वियद्गः । व्योमगः । नभोगः । गगनगः । द्योगः । आकाशगः । अन्तरिक्षगः ।

१ “खनु अवदारणे” डप्रत्ययः । “खर्व गतौ” खर्वत्यस्मिन्निति वा किग्रहः । अत्रापि ड । २ उक्त-
विग्रहे “ओहाक् त्यागे” हाधातो “वहिहाधाभ्यश्छन्दसि” ४।२२। इत्यमुन् शित्व च । शित्वाद्युक् ।
विशेषणं हाययति गमयति विमानादीन् इत्यपि बोध्यम् । “हय गतौ”प्यन्तादसुन् । ३. क्षी० भा० १।२।२।
४ का० सू० ४।१।५७। ५ का० उ० सू० ४।२।६। ६, “गमेर्गश्च” इति युच् गश्चान्तादेशः । ७ महाविल-
शब्दस्याकाशवाचकत्वेऽमरकोषमधस्तात्पमाणम्—“तारापथोऽन्तरीक्षं च मेघाध्वा च महाविलम्”
१।२।२। क्षेपकः ।

मेघपथग । मेघमार्गेण । इत्यादिनि शतभ्यानि ।

पक्षी पत्री पतत्र्यपि ।

शकुन्तिः शकुनिर्विश्व पतङ्गो विष्किरोऽन्यथा ॥५४॥

सप्त पतङ्ग । पक्षाः सन्त्यस्य पक्षी । पत्राणि सन्त्यस्य पत्री । नान्त । पततीति पत्रिः । त्रिप्रत्यये इदन्तः । पत्राणि सन्त्यस्य पतत्री । नान्त । पततीति पते परतोऽत्रिप्रत्यये इदन्तो वा पतत्रि । हलायुष- ५
भाष्यकारेण डाल्लिक्केन—पत्रिशब्द पत्रिन् नकारान्त पत्रिरिकारान्तश्च व्याख्यात । अमरसिंह-
नाममालायाम्—

“पतत्रिपत्रिपतगपतत्पत्ररथाण्डजाः ।

नगौकोवाजिविकिरिविष्करपतत्रयः ॥”

इकारान्त पत्रिशब्द पठितोऽस्ति । भाष्यकर्त्ता क्षीरस्वामिना पत्रिरिकारान्तो निषिद्धः । १०
“पतेरत्रिरिति” भ्रान्त्या पतत्रि ग्रन्थकृदिदन्त मन्यते । एव कथितमस्ति श्रीमदमरकीर्त्तिना द्वयोर्वचन प्रमाणम् । शब्दाना वैचित्र्यं वर्तते । नमसा गन्तु शक्नोति शकुन्त । शकुन्ति । एव शकुनि । एव शकुनी । शकुन्त । शकुन । द्वौ अदन्तौ । वयतीति वि । “वेजो डि ” । पतेन वेगेन गच्छतीति पतङ्ग ।
विकिरिति पत्राणि विष्किर ।

“वर्णीगमो गवेन्द्रादौ सिहे वर्णविपर्यय ।

१५

षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥”

सुटागम । विकिरश्च ।

जाङ्गलं पिशितं मांसं पलं पेशी च—

पञ्च मासे । गत्यते अत्रते जाङ्गलं जङ्गलं च । पिश्यते रुविरादिभिः पूर्यते पिशितम् । मन्यते सम्भाव्यते शरीरोपचयोऽनेनेति मांसम् । ‘वृत्’वदिहनिमनिकस्यशिकपिभ्य स” । एभ्य सः प्रत्ययो २०
भवति । पलयते (पालयते) देह पलम् । रुविरादिभिः पिश्यते (पिशति) शरीरम् पेशी । आमिषम् । रुच्यम् । तरसम् ।

तत्प्रियः ।

तस्य मासस्य प्रियः । आमिषशब्दाग्रे प्रियशब्दे प्रयुज्यमाने राज्ञसनामानि भवन्ति । जाङ्गलं प्रियः । पिशितप्रियः । मासप्रियः । पलप्रियः । पेशीप्रियः ।

२५

यातुधानस्तथा रक्षो—

द्वौ यातुधाने । यातूनि यातना धीयन्तेऽस्मिन् यातुधानः । रक्षतीति रक्षः । राज्ञसः । कोणयः । कट्यादः । नैऋतः । नैऋतः । नैऋतः । विपुसेऽपि (कर्त्तुरः अन्तरः) । कीनाशो नानार्थः ।

राज्यादिचर इष्यते ॥ ५५ ॥

१ अम० को० २।५।३४। २ क्षीर० भा० २।५।३४। ३ का० उ० सू० ४।५। रामाश्रमस्तु वातीति विः । “वातेडिच्च” इत्याह । ४ पतेन वेगेन गच्छतीति विग्रहे तत्साधु व कल्पनीयम् । तादृशसूत्राऽनुपलम्भात् । पतत्युड्डयते इति पतङ्ग । “तृपतिभ्यामङ्ग” का० उ० सू० ५।२२। इत्यङ्गप्रत्ययस्तु युक्तः । “तृपतिभ्यामङ्ग” इत्यङ्गप्रत्ययः । ५ “पृषोदरादयः” २।२।१७२। शा० कारिका । ६ “पिश अवयवे” पिशति पिश्यते स्म वा पिशितम् । “पिशो किञ्च” उ० सू० ३।६५। इतीतम् । अथवा क । इति रामाश्रमः । ७. का० उ० सू० ४।५३ । ८ रक्षन्त्यभ्यादिति रक्षः । “सर्वधातुभ्योऽमुन्” । “मीमादयोऽपादाने” इत्यन्यत्र ।

रात्रिशब्दाग्रे चरशब्दे प्रयुज्यमाने राक्षसनामानि भवन्ति । रात्रिचर । निशाचर । क्षणदा-
चरः । रजनीचर । नक्तञ्चर । दोषाचरः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

प्रारभ्यते स्वर्गवर्गः

सुतोऽदितेस्-

- ५ अदितिशब्दाग्रे सुतशब्दे प्रयुज्यमाने दैत्य (देव) नामानि भवन्ति । अदितिसुतः । अदिति-
तनय । अदितिपोतः । अदितिदारकः । अदितिनन्दनः । अदित्यभक्तः । अदितिस्तनन्धयः ।
अदित्युत्तानशयः ।

तडिद्धन्वा सेन्द्रो देवः सुरोऽमरः ।

- १० पञ्च देवे । सह इन्द्रेण वर्तते इति सेन्द्र । “दिवु क्री०” — दिव् । दीव्यन्ति क्रीडन्ति स्वर्गेऽ
प्सरोभि सह विलसन्ति देवाः । अत्रा सिद्धम् । अथवा दीव्यति क्रीडति परमानन्दपदे
देवः । सुष्टु रात्रे सुर । तथा सुरन्ति सुरा । “सुर ऐश्वर्ये” सुरा एषामस्तीति वा । “अर्शसादिभ्योऽच” ।
यतोऽन्धिजा सुरा तै पीता । न ग्रियते अमर । आदित्या । त्रिदशा । सुमनसः । स्वर्गोक्तस । देवता ।
गीर्वाणाः । ऋभवः । मरुत । वृन्दारका । निर्जरा । अस्वाना । विबुधाः । त्रिविष्टपसदः । लेखा ।
सुपर्वाणाः । अमृताशनाः । अनिमिपाः । दैवतम् ।

- १५ स्वर्गोऽथ नाकश्च,

चत्वार स्वर्गे । मुदितो जन स्वरति शब्द करोत्यत्र सान्तमव्ययम् । स्वर । “दिवु क्रीडादिपु” ।
दीव्यन्ति क्रीडन्ति अत्र पुण्यवन्त इति द्यौः । “दिवेर्दिविः” प्रत्ययो भवति । असौ सुष्टु अर्ज्यते स्वर्ग ।
“स्वु^३ भूम्या गः” गप्रत्ययः । नास्त्यक दुःखमत्र नाक । उभयम् ।

तद्वासस्त्रिदशो मतः ॥ ५६ ॥

- २० तस्य स्वर्गस्य वास तद्वास - स्वर्गवास । बोवास, स्वर्गवास, इत्यादीनि देवनामानि भवन्ति ।

तत्पतिः

तस्य देवस्य (स्वर्गस्य च) पति, तत्पति । देवपति, सेन्द्रपति, स्वर्गवासपति, स्वर्गपति,
नाकपति, नाकेन्द्र, इत्यादिपर्यायनामानि इन्द्रस्य ज्ञेयानि ।

शक्र इन्द्रश्च शुनासीरः शतक्रतुः ।

- २५ प्राचीनवर्हिः सुत्रामा वज्री चाखण्डलो हरिः ॥ ५७ ॥

शत्रुर्वलस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि ।

वृत्रहा च महस्त्राक्षो गीर्वाणेशः पुरन्दरः ॥ ५८ ॥

विडौजाश्चाप्सरोनाथो वासवो हरिवाहनः ।

मरुतश्च मरुत्वोश्च वृषा चैरावणाधिपः ॥ ५९ ॥

- ३० शतमन्युस्तुराषाट् च पुरुहूतश्च कौशिकः ।

संक्रन्दनोऽथ मघवान् पुलोमारिर्मरुत्सखः ॥ ६० ॥

त्रयस्त्रिंशदिन्द्रे । पातु शक्नोतीति शक्र । “स्फाथितस्त्रिंशदिशक्तिपिष्ठुदिरुदिमदिचन्द्र्यु-

१ “अर्श आदेर” जै० सू० ४।१।५०। २. का० उ० सू० ६।५३। ३. का० उ० सू० ५।६०।
४ तस्मिन् स्वर्गे वसतीति तद्वास । गप्रत्यय । स्वर्गपर्यायार्थात् परत्र वासशब्दे प्रयुज्यमाने त्रिदशनामानि
भवन्तीत्यर्थः । ५. का० उ० सू० २।१४।

न्दीन्द्रियो रक्त् । इन्द्रति परमैश्वर्ययुक्तो भवति इन्द्र । रक्त् । शुन आदित्य शीरो वायुस्तथोरपत्यमणो
लुक्क्यमेदाद्वा, दीर्घे शुनाशीरः । तालव्यद्वयम् । शोभनं नासीर कटकं वा यस्य स सुनासीरः । द्वौ दन्तौ ।
शु अन्वय तालव्यमपि । अत्र पक्षे प्रथमस्तालव्यो द्वितीयो दन्त्यो भवति । तथा च शोभना नामीरा
अग्रेसरा अस्य, शुनासीर । शु पूजायाम्, श्वशुरवत्^१ । शुनासीरयोरपत्यमित्येके । शत क्रतवो यज्ञा
यस्य शतक्रतु । प्राचीना प्राचीनमुखा बर्हिषी दर्भा यस्य स । सुष्टु त्रायते नान्त सुत्रामा । वज्र विद्यते
यस्य स वज्री । आखण्डयति भिनत्त्यरीनाखण्डल । द्विपते शचीकटाक्षैर्हरि ।

“शत्रुर्बलस्य गोत्रस्य पाकस्य नमुचेरपि”-

बलशत्रुर्गोत्रशत्रु पाकशत्रुर्नमुचिशत्रु, इत्यादीनि इन्द्रनामानि भवन्ति । वृत्र दानव यज्ञ वा
हतवान् वृत्रहा । किप् । “(किप्)ब्रह्मभूणवृत्रेण” किप् सहस्रमक्षीणि यस्य स सहस्राक्ष । गोर्वाणानां देवानां
मीश (गीर्वाणेशः) । विट्सु प्रजासु ओजो यस्य । पृषादरादित्वाद् वृद्धि । विड भेदने वा । विड भेदकमोजो
यस्य वा (विडौजा^२) । अस्सरसा नाथोऽस्सरोनाथ । वस्वपत्य वासव । हरिर्वाहन^३ यस्य हरिर्वाहन ।
पुण्यक्षये म्रियते च्यवते मरुत् । तान्तम् । मरुतो देवाः सन्त्यस्य मरुत्वान् । वर्षति, नान्तम्, वृषा । ऐराव-
णानामधिप (ऐरावणाधिप) । शत मन्यवः क्रतवोऽस्य शतमन्यु । ‘पह मर्षणे’ । ‘पह् । ‘धात्वादेः^४
ष स’ । सहते कश्चित्तमपर प्रयुङ्क्ते, ‘धातोश्च^५ हेतौ’ इन् । अस्योप० दीर्घः । साहि जाते । तुम्पूर्वक ।
तुर त्वरितं साहयत्यभिभवत्यरीनिति तुरापाट् । ‘सहश्छन्दसि^६’ विण् । ‘कारितस्या०’ कारितलोप ।
वेलोप^७ । ‘नहि^८ वृतिवृषिभ्यधिरुचिसहितनिपु को’ कियन्तेषु प्रायकाराणां दीर्घः । तुरा जातम् । तुरासाह्
निष्पन्न । सि । ‘वज्रान्तात्^९’ मिलोप । ‘हशप्^{१०} च्छान्तेजादीना ड’ इत्यडः । ‘सहे साड् ष^{११}’
सस्य पत्वम् । रपरत्वात्परपदोऽपि सस्य पत्वम् । स्वमते अपिशब्दबलात् । अथवा तुर वेग सहते तुरापाट् ।
‘सह^{१२}’श्छन्दसि’ विण् पूर्ववत् । पुरु प्रभूत हूत यज्ञे यज्ञेष्वा (ज्ञे आ) ह्वान यस्य पुरुहूत । जातमात्रोऽ-
दित्वा कुशैराच्छादितत्वात् (कौशिक) । तथा पुराणम्^{१३}—

“जातमात्रोऽथ भगवानदित्या स कुशैर्वृतः ।

तदा प्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः ॥”

कुशैर्दमैश्वरति वा । अरिस्त्री सङ्क्रन्दयति सङ्क्रन्दन । मङ्घ्र्यते पूज्यते नान्तो मघवा ।
“मङ्घ्रे^१ नलुगवन्तश्च” मङ्घ्रे कनि प्राययो भवति नलुगवन्तश्च । पुलोमस्या (मोऽ) रि पुलोमारिः ।
मरुता पवनानां सखा मित्रः । (त्र) मरुत्सख । दुश्चयवन् । वृत्रारिः । बलसूदनः । वृद्धश्रवा । जिह्वा
वज्रधर । वास्तोष्पतिः । गोपतिः । पर्जन्यः । हरिहयः । पूर्वदिक्पतिः । खराट् । गोत्रभिद् । अप्रधन्वा ।
हग्मिन् । पाकशासन । दिवस्पतिः ।

१. शु पूजायाम् अश्रुते व्याप्नोति ‘श्वशुर’ इति व्युत्पत्त्या “श्वशुर” शब्दो निष्पन्नः । तद्व-
च्छुनासीरशब्देऽपि शु शब्दः पूजार्थ इत्याशयः । २. का० सू० ४।३।८३। ३. वेवेष्टि व्याप्नोति विट् ।
“विण्टु व्याप्तौ” किप् । विड व्यापकमोजो यस्य स विडौजा । पृषादरादित्वादोकारस्योकारः । इत्यप्यु-
ह्यम् । ४. त्वक्शेवालरोमाणि सुवर्णाभानि यस्य त्व । हरि स वर्णतोऽष्टवन्तु पीतकौशेशसप्रभ । इति
शालिहोत्रोक्तप्रकारोऽश्वो हरिः । ५. मरुतो देवाः शास्यत्वेन सन्त्यस्येति यावत् । ६. का० सू० ३।८।२४।
७. का० सू० ३।२।१०। ८. का० सू० ४।३।६०। ९. का० सू० ३।६।४४। १०. “वेरपुक्तस्य” पा० सू०
६।१।६७। ११. पा० सू० ६।३।११६। १२. का० सू० २।१।८९। १३. का० सू० २।३।४६। १४. पा० सू०
८।३।५६। १५. का० सू० ४।३।६०। १६. श्लोकोऽयम् अभि० चि० २।८७। टीकायामप्येवमेवोपलभ्यते ।
१७. का० उ० सू० ५।४ ।

काष्ठा ककुब् दिगाशा च दक्षकन्या तथा हरिन् ।

षड् दिशायाम् । काशन्ते राजन्ते (नक्षत्रादयोऽत्र) काष्ठा^१ । क स्कुम्भाति विस्तारयति ककुब्^२ । भान्तम् । दिशत्यवकाश दिक् । “^३ऋत्विग्दधृक् खगदिगुष्णिहश्च” इति साधु । आश्रुते आशा । दत् प्रजापति, तस्य कन्या, दक्षकन्या । हरत्यनया हरित्^४ ।

५

तत्पर्यायपरं योज्यं प्राज्ञैः पालगजाम्बरम् ॥ ६१ ॥

काष्ठादिनामतः परं योज्यं प्राज्ञैः विद्वद्भिः पालगजाम्बरम् । काष्ठापालः । ककुपालः । दिक्पालः । आशापालः । दक्षकन्यापालः । हरिपालः । पालप्रयोगे दिग्गजनामानि भवन्ति । काष्ठागज । ककुब्गज । दिग्गज । आशागज । दक्षकन्यागज । हरिद्वगज । अम्बरशब्दप्रयोगे दिग्गम्वर-नामानि भवन्ति । काष्ठाऽम्बर । ककुब्गम्बर । दिग्गम्बर । आशाऽम्बर । दक्षकन्याम्बर । हरिद्वम्बर ।

१० तथा च -

“गिरिकन्द्रदुर्गेषु ये वसन्ति दिग्गम्वराः ।

पाणिपात्रपुटाहारास्ते यान्तु परमा गतिम् ॥”

एवविधा मुनयो भव्याना शरणं भवन्तु जन्मनि जन्मनि ।

पवनः पवमानश्च वायुर्वातोऽनिलो मरुत् ।

१५

समीरणो गन्धवाहः श्वसनश्च सदागतिः ॥ ६२ ॥

नभस्वान् मातरिश्वा च चरण्युर्जवनस्तथा ।

प्रभञ्जनः—

पञ्चदश वायौ । पवते जगत् पवित्रीकरोति पवन । युच् । “पूङ् पवने ।” पू । पवते पवमान । ““पूङ् यजो शानङ्” आनमात्रः । अन्वि०^६ अनिच०^७ नाम्यन्तगुण । “ओ^८अव् ।” “आन्मो^९ऽन्त आने” मोऽन्त । वातोति वायु । ““कृवापाजी”—ति उण् । वाति सर्वत्राऽस्वलित वा वायु । वाति अस्वलित याति, घात । ““^{१०}भृगुवाहस्यमिदमित्पूङ्-यस्त.” । अनेन जगत् अनिति प्राणिनि, न निलति वा अनिल । “निल गहने” । ध्रुवजन्तवो अग्र्यन्ते स्पशैनास्य मरुत् । तान्तम् । ““^{११}मृधोऽति उतिप्रत्यय” । समन्तादीरयति समीरण । गन्धं वहति गन्धवह । गन्धवाह । गन्धवाही । श्वसन्यनेन श्वसन । सदा सर्वकालं गतिर्यस्य स सदागति । नभ आकाशमस्यास्तीति नभस्वान् । मातरि रेत श्वयति वर्धते नान्तो मातरिश्वन् । मातरिश्वेव भवति “^{१२}मातरिश्वा । चराचर याति चरे-

२५

१ “काशू दीनौ” “हनिकुशि” इत्यादि २।२। पा० उ० सूत्रेण वथन् । २ क वात स्कुम्भाति विस्तारयति । क्रिप् । पृषोदरादिवात्सलोप । केनादित्येन जलेन वा कुन्तितानि भानि नक्षत्राणि यस्या-मिति “ककुम्भा” इत्याद्यन्तोऽपीति केचित् । ३ का० सू० ४।३। ७३। ४ हरन्ति नयन्ति अनया हरित् दिग्-जानेनैव कञ्चित् कुतश्चित् कुत्रचिन्नयति । “दृसृहृगुप्तिभ्य इति” इतीति । ५ का० सू० ४।४। ८ । ६ “अन्विकरण कर्तरि” इति पूर्णं सूत्रम् । का० सू० ३।२। ३२ । इत्यन्विकरण । ७ “अनि च विकरणे” का० सू० ३।५। ३। ८ का० सू० १।२। १। ९ का० सू० ४।४। ७। १० का० उ० सू० १।१। ११ का० उ० सू० ४।२। ७। १२ का० उ० सू० १।३। १। १३ मातरि जनन्या रेतः प्रसिक्त यथा वर्धते, तथाऽन्तरीक्षे वर्धमानो वायु ‘मातरिश्वा’ इत्याशय । क्षीरस्वामी तु—‘मातरि मे श्वयति’ इत्याह । रामाश्रमस्तु—‘मातरि जनन्या श्वयति वर्धते सप्तसप्तकृत्पत्वात्’ इत्याह । धापन्नसत्त्वाया दितेर्निद्राऽवस्थाया तत्कुक्षिप्रविष्टेनेन्द्रेण कुलिशद्वया तद्गर्भस्यैवोनपञ्चाशच्छकलीकरणस्य पुराणप्रसिद्धत्वात्सप्तसप्तकत्वमुपपन्नम् । “दु ओशिव गतिवृद्धयो ।” शिवघातो “श्वन्नुन्नन्ति” ति कनिन्नन्तो निपातः समग्या अलुक् च ।

“रण्यः । ‘केवयुमुरण्यव्यर्वाद्य’ केवयादयः शब्दा बहुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । तथा च द्विसन्धानकाव्ये—

“असूययाऽगम्य निशाम्य यां पुरो
विलज्जयाऽम्भःपरिणामिनीदशम ।
गता इवाभान्ति कुलाद्रिपेशला-

अरण्युलोलाः परिखाऽम्बुवीचयः ॥”

५

“जु” इति सौत्रो धातुर्गतो । सौत्रा धातवोऽपि स्वादौ पठ्यन्ते । जवतीति जवन । ‘जुच्-
कम्पदन्त्रम्यसृष्टिचक्रलशुचपतपदाम्” एभ्यो युर्भवति । सर्वा दिशाः प्रभवन्ति प्रभञ्जन । जगत्प्राण ।
पृथग्दृश्व । स्पर्शन । ममीर । हरि । महाबलः । आशुग ।

अस्य पर्यायपुत्रौ भीमाञ्जनात्मजौ ॥६३॥

अस्य पर्यायात् प्रभञ्जनादिशब्दात्परत्र पुत्रशब्दो दीयते तदा भीमहनुमतोर्नामानि भवन्ति । १०
पवनपुत्र । पवनतनय । पवमानतनय । वायुपुत्र । वायुतनय । वातपुत्र । वाततनय । अनिलपुत्रः ।
अनिलतनयः । समीरणपुत्र । समीरणतनय । गन्धवाहपुत्र । गन्धवाहतनय । श्वसनपुत्र । श्वसनतनय ।
मदागतपुत्र । मदागतितनय । नभस्वपुत्र । नभस्वतनय । मातरिश्वपुत्र । मातरिश्वतनय ।
चरण्यपुत्र । चरण्युतनय । जवनपुत्र । जवनतनय । चलपुत्र । चलतनयः । प्रभञ्जनपुत्र । प्रभञ्जन-
तनय । भीमस्य हनुमतश्च नामानि जातव्यानि ।

१५

तत्सखाऽग्निः,

तस्य वायो, सखा तत्सख । वायुशब्दाग्रे सखशब्दे प्रयुज्यमाने अग्निनामानि भवन्ति ।
पवनसख । वायुसख । अनिलसख । वातसख । मरुसख । गन्धवाहसख । समीरणसख । श्वसनसख ।
मदागतिसख । नभस्वसख । मातरिश्वसख । चरण्युसख । जवनसख । चलसख । प्रभञ्जनसख । पवनेष्ट ।
पवमानेष्ट । इत्यादीनि अग्नेर्नामानि जातव्यानि ।

२०

शिखी वह्निः पावकश्चाशुशुभ्रणिः ।

हिरण्यरेता मत्तार्चिर्जातवेदास्तनूनपात् ॥ ६४ ॥

स्वाहापतिर्हुताशश्च ज्वलनो दहनोऽनलः ।

वैश्वानरः कृशानुश्च रोहिताश्वो विभावसुः ॥ ६५ ॥

वृषाकपिः समीगर्भो हव्यवाहो हुताशनः ।

२५

एकविंशतिरग्नौ । “अक अग कुटिलाया गतौ ।” अगति वायुवशादूध्व गच्छतीत्यग्निः ।
शिखाऽस्त्यस्य शिखी । उद्यते वह्निः । “अग्निश्रुश्रियुवहिभ्यो नि” एभ्यो धातुभ्यो नि प्रत्ययो
भवति । पुनाति पावकः । आशु शोषयति रसान् “आशुशुभ्रणिः । “आशौ शोषे सनिक्” । “शुप

१ चरण्युशब्दोऽयम्, न तु चरेण्युः । द्विसन्धानेऽपि चरण्युशब्दस्यैव दर्शनात् । एतत्साधकमुणा-
दिमुत्रम् अभिधानचिन्तामणिटीकायाम् (३।४८३) उपलभ्यते, नैवान्यत्र । वस्तुतस्तु वैदिकीय प्रयोगः ।
‘चरण् वरण् गतौ’ कण्वादौ चरण् धातुर्यक् प्रत्ययान्त । ततः “क्याच्छन्दसि” पा० मृ० ३।२।७० । इत्यु-
प्रत्ययः । सुन्नु, तुरण्यु, भुरण्य, सपर्यु, आदिशब्दवदस्य सिद्धिः । विशेषस्तु “क्याच्छन्दसि” इत्यस्य
तत्त्वबोधिन्या द्रष्टव्यः । चरण्यतीति चरण्यु । २ स० १ श्लो० १९ । ३. का० स० ४।४।३२ । ४ वहति
हव्य वह्निरिति व्युत्पत्तिरन्यत्र । ५ का० उ० सू० ३।५० । ६ आशोऽष्टुमिच्छतीति आङ्पूर्वकाच्छुपेः
सजन्तात् “आङि शुपे” सनश्छन्दसि” पा० उ० सू० २।१०६ । अनि । आशु शोषम्, आशु वीहि वा शु
मुण्डु क्षणोतीति वा । “सर्वधातुभ्य इन्” इत्यन्यत्र । ७ का० उ० सू० ५।१५ ।

शोपे ।” अन्तर्भूतकारितार्थोऽयम् । आशुपूर्वः । आशाशुपपदे शुपे सनिक् प्रत्ययो भवति । हिरण्यं
रेतोऽस्य स हिरण्यरेता । यत् स्मृतिः^१—“अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णम्” । सप्तार्चिषो यस्य स सप्तार्चिः । भवन्ति “हिरण्या, कतका, रक्ता, कृष्णा, प्रसुतभावाऽन्या । अतिरिक्ता बहुरूपेति सप्त
सप्तार्चिषो जिह्वाः ।” जाते जाते विद्यते सान्तो जातवेदस् । जाता वेदा अस्माद् वा जातवेदाः^२ ।

- ५ तन् न पातयति तनूनपात् । अपि तान्तो दान्तो वा । ‘स्वाहा’ इत्यस्य (स्याः) पतिः भर्ता
स्वाहापतिः । हुत वषट्कारकृत वस्तु अस्नातीति हुताश । हुतम् आशो भोजन यस्य वा । ज्वलती-
त्येवशीलो ज्वलनः । दहतीत्येवशीलो दहनः । अनिति प्राणिन्येन अनलः । विश्वानरस्यापत्य
वैश्वानरः । कृष्यति तनूकरोति कृशानुः । रोहिताऽरुयो मृगोऽश्वो वाहनमस्य रोहिताश्वः । विभा
वमुर्धन यस्य स विभावसु । वृषो धर्मः कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च तद्वत्त्वात् वृषाकपिः । “पुराणम्—

१०

“कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते ।

तस्माद् वृषाकपिं प्राह काश्यपो मां प्रजापतिः ॥”

हमीनाममालायाम्^३—

“वृषाकपिर्वासुदेवे शिवेऽग्नौ च ।”

- १५ शम्या गर्भो यस्य स शमीगर्भः । हव्य वहतीति हव्यवाद् । हुतमस्नातीति हुताशनः । बहुल ।
वमुः । मिततरगति । अर्चिष्मान् । धूमवजः । बहिर्ज्योतिः । उपवृष । चित्रमान् । शुचि । कृषीट-
योनि । दमना । कृष्णकर्मा । अपापितम् । वीतहोत्रः । वृद्धमानु । आश्रयाशः । धनञ्जयः । तमोऽन ।
दमना इत्येके । दमेरुनमि ।

तदादिसूनुः,

आग्निस्सुनुः । बहिपुत्र । वृषाकपिस्सुनुः । वृषाकपिपुत्र । इत्यादीनि स्कन्दनामानि भवन्ति ।

२०

सेनानीः स्कन्दश्च शिखिवाहनः ॥ ६६ ॥

कार्तिकेयो विशाखश्च कुमारः पण्मुखो गुहः ।

शक्तिमान् क्रौञ्चभेदी च स्वामी शरवणोद्भवः ॥ ६७ ॥

- २५ द्वादश स्कन्दे । सेना नयतीति सेनानीः । “स्तस्मै” द्विपट्टहृदहयुजविदभिदक्षिदजिनीराजामुप-
सर्गेऽपि एवामुपसर्गेऽप्यनुपसर्गेऽपि नाम्यनाम्न्युपपदे क्विप् भवति । स्कन्दत्यरीन् स्कन्दः । स्कन्द-
शुष्क रेतोऽस्य वा । शिखी मयूरो वाहनमस्य शिखिवाहनः । कृत्तिकानामपत्य कार्तिकेयः । दानव-
बलौ बस्तेजांसि ध्याति विशेषेण तनूकरोति विशाखः । विशाखासुतो वा । कुमारो ब्रह्मचारित्वात् ।

१. अम को० क्षीर० भा० १।१।५५ । २. सर्वत्रोत्पन्नपदार्थे वर्तमानत्वाद् वेदोत्पत्तिकार-
णत्वेन चान्नेरुनत्वाच्च । जात वेदो धन (सुवर्ण) यस्मात् जात वेत्ति वेदयते वा इति न्युत्पत्तिरपि ।
३. तन् स्वस्वरूप न पातयति दहतीत्यर्थः । क्विप् । “नग्राण्णपात्” इति नलोपाभावः । तन् न पाति
रक्षति जाते जाते विनष्टत्वादिति वा । पाते शत्रुप्रत्ययः । तन्वा ऊन पाति रक्षतीति तनूनप धृत
तदतीति । “आदोऽनन्ने” इति विट् । इत्यप्युक्तम् । ४. कृशोऽयनिति वर्धते कृशानुरिति वा ।
५. श्लाकोऽयम्, अभि० चि० २।१२९ । टीकायामेवोपलभ्यते । ६. अनेका० स० ४।२।१८ ।
७. का० सू० ४।३।७४ । ८. स्कन्द रेतोऽस्येत्यर्थाभिप्रायेण । विग्रहस्तु स्कन्दति शुष्करेता भवतीति स्कन्द
इत्येवंरूप । ब्रह्मचारिणा शुष्करेतस्त्वमागमात्सिद्धम् । पचाद्यच् । ९. विपूर्वात् “शो तनूकरणे”
इत्यस्माद् बाहुलकात्त्वप्रत्ययः, विशाखानक्षत्रे जातो वा । विशाखयति विशेषेण व्याप्नोति दानवबलमिति
वा । “शाप्त् व्याप्नोति” पचाद्यच् ।

कुत्सितो मारोऽस्येति कुमारः^१ । पण्डितानि यस्य स षण्मुखः । गूहति रक्षति देवसैन्यं गूढः । “नाम्बुपथ प्रीकृगृहा कः ।” शक्तिर्विद्यतेऽस्य शक्तिमान् । क्रौञ्चं पर्वतं भिनत्तीति क्रौञ्चमेदी । स्वमस्त्यस्य स्वामी^२ । शराणां वनम, शरवणम्, तस्मिन्नुद्भव शरवणोद्भवः । गौरीपुत्रः । शक्तिपाणि । तारकारि । अग्निभूः । बाहुलेयः । गाङ्गेयः । ब्रह्मचारी । महासेनः । महातेजा । पार्वतीनन्दनः ।

तत्पिता शङ्करः शम्भुः शिवः स्थाणुर्महेश्वरः ।

५

त्र्यम्बको धूर्जटिः शर्वः पिनाकी प्रमथाधिपः ॥ ६८ ॥

त्रिपुरारिविशालाक्षो गिरीशो नीललोहितः ।

रुद्रेन्दुमौलिर्यज्ञारिस्त्रिनेत्रो वृषभध्वजः ॥ ६९ ॥

उग्रः शूली कपाली च शिपिविष्टो भवो हरः ।

उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वरूपः कपर्द्यपि ॥ ७० ॥

१०

एकोनत्रिंशदीश्वरे । तस्य स्कन्दस्य पिता । शं सुखं करोतीति शङ्करः । शम्भवती (त्यस्मादि) ति “शम्भुः” । ‘सुवो’ दुर्विशम्भेषु च ।” शेते प्रलयकाले जगदत्र शिवः । जगति प्रलीनेऽपि तिष्ठति स्थाणुः । महोऽशौ ईश्वरः महेश्वरः । त्रीण्यम्बकानि अक्षीण्यस्य त्र्यम्बकः । त्रयाणां लोकानाम् अम्बकः पितेत्यागमः । धूर्मारमृता जटयो जटा यस्य, धूर्गङ्गा जटिषु यस्य वा धूर्जटिः । शृणाति दैत्यान् शर्वः । “शर्वजिह्वाप्रीवा” एते क्रप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पिनाकमस्त्यस्य पिनाकी । प्रमथाया “अधिपः, प्रम- १५ थाधिपः । त्रिपुरामुरस्वारिस्त्रिपुरारिः । विशाले विस्तीर्णं अक्षिणी यस्य विशालाक्षः । “सक्यक्षिणी स्वाङ्गे ।” गिराणामीशो गिरीशः । कालकूटमक्षणाञ्जलिं कृष्णं लोहितं यस्य स नीललोहितः । “नीलः” कण्ठं लोहितं च वेष्टे इति नीललोहितः” इति पुराणम् । रोदत्यरिस्त्री रुद्रः । “स्फायितश्चिवश्चि-” शक्तिक्षेपिष्ठुदिरुदिमदिमन्दिचन्द्युन्दीन्द्यो रक् ।” इन्दुमौलिमुकुट यस्य (स) इन्दुमौलिः^३ । यज्ञानां पशुकारणलक्षणानाम् अरिः, यज्ञारिः । त्रीणि नेत्राण्यस्य त्रिनेत्रः । वृषभो बलीवर्दो ध्वजाया यस्य स वृषभध्वजः । कोपमूर्जति उग्र^४ । शूलमस्त्यस्य शूली । कपालं मनुष्यकरोटिरस्त्यस्य कपालो । शिवः पिण्डो हता अस्थिरूपो (विष्टे) मूर्ध्नि यस्य स शिपिविष्टः^५ । भवतीति भवः^६ । हरत्यत्र हरः ।

२०

१ “कुमारं क्रीडायाम् ।” कुमारयतीति पचाद्यच् । को पृथिव्या मारयति दृष्टानिति वा विग्रहो बोध्यः । २ का० उ० सू० ६।६८ । इतीन्प्रत्ययः । ३ स्वशब्दादामिन् प्रत्ययः । “स्वामिन्नेश्वर्ये” पा० सू० ५।२।१२६ । अथवा शोभनममति रक्षतीति स्वामी । “सावमेरिन् दीर्घश्च” का० उ० सू० ६।६८ । इतीन् प्रत्ययः । ४ शम्भवति नावयतीत्यर्थो वा । अन्तर्भावित्यर्थोऽत्र भवतिः । ५ का० सू० ४।४।५६ । ६ उक्विग्रहं शेर्वाङ्गुलकाङ्ङ्विप्रप्रत्ययः । शिवं करोतीति शिवयति, ततः पचाद्यच्च शिवो वा । शिवन-स्यास्त्यस्मिन्नेत्यपि विग्रहो बोध्यः । ७ का० उ० सू० २।२। ८ प्रमथाया दुर्गायाः । परन्तु “प्रमथाः स्युः पारिपदाः” इत्यमरादिषु प्रमथशब्दस्य शिवपर्यायत्वेन प्रसिद्धेः, दुर्गात्वेनाप्रसिद्धे प्रमथानामधिपः इति सुवचम् । ९, “राजादीनामदन्तता” का० सू० २।६।४१ । वृत्तिः ५०। १० नीलं कण्ठं लोहितं जटाया-मङ्गं यस्येति विग्रहार्थः । तदुक्तम्—“नीलं येन ममाङ्गन्तु रसाक्तं लोहितं त्विवा । नीललोहितं इत्येष ततोऽहं परेकीर्तितः ॥ इति स्कान्दे” इति मुकुटः । ११ अम० को० क्षीर० भा० १।१।३३ । १२ का० उ० सू० २।१।४ । १३ इन्दुमौलिं यस्येति विग्रहः सरलः । १४ उच्यति क्रुधा समवेति उग्रः । “उच् समवाये” उच् घातु । ततो रक् । गश्त्रान्तादेशः । ऋज्रेन्द्रादि उ० सू० । १५ शिवपिण्डशब्दयोराद्यक्षरोपादानेन शिपिशब्दोऽ । १६, अभ्यायं भवति कल्पते इत्यर्थः ।

उमायाः पति उमापतिः । विरूपाण्यक्षीण्यस्य विरूपाक्षः । विश्वेषु रूप यन्मय स विश्वरूपः । कपर्दोऽस्यस्य कपर्दी । कपर्दो जटाजूटः । क शिरः पिपतीति कपर्दः । औष्णादिको द । अपिशब्दात्-ईशान । शशिशेखर । पशुपति । शम्भु । गिरिश । ओकण्ठः । सर्वज्ञः । त्रिपुरान्तक । भूतेश । परमेश्वरः । अन्वकरिणु । दत्ताध्वरध्वसक । स्रष्टा । वामदेव । कामध्वंसी । व्योमकेशः । वह्निरेता । भीम । भर्गः ।
५ कृत्तिवासा । वृषाङ्कः ।

भागीरथी त्रिपथगा जाह्नवी हिमवत्सुता ।

मन्दाकिनी—

पञ्च गङ्गायाम् । भगीरथेन राजाऽवतारितत्वात्तस्यापत्यं वा भागीरथी । त्रिभिः पथिभिर्गच्छति त्रिपथगा^१ । त्रिमार्गगा च । जह्नुना पीता औत्रेण त्यक्ता जाह्नवी । जह्नोरपत्यं वा जाह्नवी । हिमवतो हिमाचलस्य सुता हिमवत्सुता । मन्दाका मन्दा गतिरस्त्यस्या मन्दाकिनी । सुरसरित् । विष्णुपदी । सरिद्वरा । त्रिदशदीर्घिका । त्रिस्रोता । भीष्मसू । सुरनिम्नगा ।

द्युपर्यायधुनी

आकाशशब्दतो (तः परत्र) नदीपर्यायेषु गङ्गानामानि भवन्ति । खलोतस्विनी । विहायो-धुनी । विषस्तिन्धु । व्योमखवन्ती । नभोनदी । गगननिम्नगा । अम्बरापगा । द्योनदी । आकाशनदी ।
१५ अन्तरीक्षद्विरेफा । मेघपथसरित् । वायुपथतरङ्गिणी । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

गङ्गानदीश्वरः ॥ ७१ ॥

भागीरथ्यादिशब्दतः (परत्र) ईश्वरपर्यायेषु हरनामानि भवन्ति । भागीरथीराजः । त्रिपथगाधिप । जाह्नवीपति । हिमवत्सुतास्वामी । मन्दाकिनीनाथ । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

विधिवेधा विधाता च द्रुहिणोऽजश्चतुर्मुखः ।

२० पद्मपर्याययोनिश्च पितामहविरञ्चिनौ ॥ ७२ ॥

हिरण्यगर्भः स्रष्टा च प्रजापतिस्सहस्रपात् ।

ब्रह्मात्मभूरनन्तात्मा कः

सप्तदश ब्रह्मणि । विधति^३ सृजति विधि । विधते वा विधिः । “उपसर्गे द. कि. ० ।” विधाति सृजति वेधा । “सर्वधातुभ्यो ऽसृन् ।” “विध विधाने ।” विदधाति धारयति भूतानीति विधाता । द्रुह्यत्यसुरेभ्यो द्रुहिण । न जायतेऽजः । चत्वारि मुखानि वक्त्राण्यस्य चतुर्मुख । “पद्मपर्याययोनिः”—पद्मपर्यायशब्दाग्रे योनिशब्दे प्रयुज्यमाने धातुर्नामानि भवन्ति । तामरसयोनिः । कमलयोनिः । नलिनयोनिः । पद्मयोनिः । सरोजयोनिः । सरसीरुहयोनिः । खरदण्डयोनिः । पुण्डरीकभव । महोत्पलज । अरविन्दयोनिः । शतपत्रयोनिः । पुष्करयोनिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि । दत्तमन्त्रादीना लोकपितृणां पिता पितामह । आत्मनो भूतानि विरिङ्क्ते पृथक् करोति विरिञ्चनः । विरिञ्च । विरिञ्चिश्च ।

१ त्रयाणां पथा समाहारस्त्रिपथ तेन गच्छतीति वा । इत्थं च पूर्वं समाहारद्विगौ कृते तत्र समासान्तविधानेन त्रिपथशब्दस्याकारान्तत्वं सूत्रपाद्यं भवति । गंगायास्त्रिपथगामित्वे भारतोक्तं वचनम्—“क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागोस्तारयतेऽप्यधः । दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥” २ मन्दमकितु गन्तु शीलमस्या इति वा । “अक कुटिलाया गतो ।” णिन् । ङीप् । ग्रन्थोक्तविग्रहे मन्दाकशब्दस्य मन्दगन्त्यर्थे प्रमाणं नृग्यम् । ३ “विध विधाने” । तुदादिः । सर्व धातुभ्य इन् कित्त्व च । ४ का० सू० ४।५।७० । ५ का० उ० सू० ४।५६ ।

हिरण्य गर्भे यस्य, हिरण्य गर्भो वा यस्य हिरण्यगर्भः । 'पुराणम्—

“हिरण्यगर्भमभवत्तत्राण्डमुदके तथा ।

तत्र यज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूर्लोकविश्रुतः ॥”

सृजतीत्येवशीलं स्रष्टा । प्रजानां पतिं प्रजापति । “पदं गतौ ।” पदं । पश्यन्ते गम्यन्ते (गच्छन्ति) प्राणिनः, तान् पश्यमानान् जन्तून् चरणा एव प्रयुज्यते । “२ धातोश्च हेतोः” इत् । अय्योप० दीर्घः । पादि जा० । पादयन्तीति पादः । द्विप् च । “३ कारितस्या०” कारितलोपः । वेलोपः । पाद् । सहस्रं पादो यस्य स सहस्रपाद् । बृहन्ति वर्धन्ते चराचराण्यत्र ब्रह्म । उभयम् । इदं ब्रह्म । अयं ब्रह्मा । अथवा बृहन्ति व्रतानि यस्मिन्निति ब्रह्म । बृहद् भूम् प्रत्ययो भवति, अच्च हकात् पूर्वम् । आत्मना भवति आत्मभूः । न अन्तो विद्यते यस्य सोऽनन्तः, अनन्तो विनाशरहित आत्मा यस्य सः अनन्तात्मा । कायतीति “कः । परमेष्ठी । सुरज्येष्ठः । शतानन्दः । स्वयम्भू । जगत्कर्ता । शतवृत्ति । स्थविरः । १०

तत्पुत्रोऽथ नारदः ॥७३॥

तस्य पुत्रस्तत्पुत्रः । ब्रह्मणः शब्दात् (परत्र) पुत्रशब्दे प्रयुज्यमाने नारदनामानि भवन्ति । विधिपुत्रः । वेषपुत्रः । विवातपुत्रः । विरिञ्चिपुत्रः । द्रुहिणपुत्रः । अन्नपुत्रः । चतुर्मुखपुत्रः । पद्म-
योनपुत्रः । पितामहपुत्रः । हिरण्यगर्भपुत्रः । प्रजापतिपुत्रः । महस्त्रातपुत्रः । ब्रह्मपुत्रः । आत्मभूसुतः । अनन्तात्मपुत्रः । इत्यादीनि जातव्यानि । १५

कृष्णो दामोदरो विष्णुरुपेन्द्रः पुरुषोत्तमः ।

केशवश्च हृषीकेशः शार्ङ्गो नारायणो हरिः ॥ ७४ ॥

केशी मधुर्वलिर्बाणो हिरण्यकशिपुर्मुखः ।

तदादिसूदनः शौरिः पद्मनाभोऽप्यधोऽक्षजः ॥७५॥

गोविन्दो वासुदेवश्च—

एकविंशतिनारायणः । कर्षण्यरीन् कृष्णवर्णत्वाद्वा कृष्णः । “इण्जिक्पिभ्यो नक्” दाम उदरे यस्य स दामोदरः । यल्लक्ष्यम्—बालो हि चापलाद्दाम्ना बद्धोऽभूत् । वेवेष्टि व्याप्नोति विष्णुः । “सूविपिन्या यण्वत् ॥” उपगतमिन्द्रमुपेन्द्रः । इन्द्र उपगतोऽनुजत्वाद् वा उपेन्द्रः । पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तमः । केशा सन्त्यस्य केशवः । हृषीकाणामिन्द्रियाणामीशो वशित्वाद् हृषीकेशः । शार्ङ्गं धनु-
स्त्वस्य शार्ङ्गो । नारा आपः अयन यस्य नारायणः । यत्स्मृतिः १०— २५

“आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।

अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥”

१ “पुराणम्” इत्यारभ्य “लोक विश्रुतः” इत्यन्तम् अभिधानचिन्तामणिटीकायाम् २।१२७। उपलभ्यते । २. का० सू० ३।२।१०। ३ का० सू० ३।६।४४। ४ “सर्वधातुभ्यो मन्” का० उ० सू० ४।२८। ५ “कै शब्दे” वेदध्वनिकर्तृत्वेन ब्रह्मणि कायतीति क इति विग्रहः । “कच दीतौ” कचते वा । “अन्येभ्योऽपि दृश्यते” पा० सू० ३।२।१०१। सूत्रवार्तिकेन ड । ६. का० उ० सू० २।५।१७ बालकृष्णो हि यशोदया तच्चापल्यनिवारणाय कटिप्रदेशे बद्ध इति पौराणिकी कथा “लक्ष्यम्” इति पदेन स्मार्यते ८ का० उ० सू० २।८। ९. नाराणां समूहो नारम्, तदयन यस्य, नराद् विराट्पुरुषाज्जातं तत्त्वं नारम्; तदयते जानाति वा, आययति प्रवर्तयति वा, “नारायणः” इत्यपि व्युत्पत्तिरत्र । १० मनुस्मृति १।१०। तुल्यचरणे “ता पदस्यायनम्पूर्वम्” इति पाठो लभ्यते ।

- नरस्यापत्यं वा । नरानयते इति वाक्येन नरायणोऽपि । हरत्पथ हरि । वेशाः सन्त्यस्य केशी ।
 'मन्यते जनै मधु । "मनिजनिनमा मधजतनाकाश्च" एषामुप्रत्ययो भवति मधजतनाकाश्च यथासख्य-
 मादेशा भवन्ति । "बल वल्ल च ।" बलतीति बलि । "इ सर्वधातुभ्यः ।" बण्यते बाणः । तदादि-
 सूदनः । तदादीना केश्यादीना सूदनो नाशकर्ताऽरि । केशी मधु, बलिः, बाणः हरिण्यकशिपुः, मुर,
 ५ एभ्यः शब्देभ्यः परत्रारिशब्दे प्रयुज्यमाने नारायणनामानि भवन्ति । केशिवैरी । केश्यरातिः । केश्यमित्रः ।
 केशिद्विट् । केशिसपत्न । मधुवैरी । मन्वराति । मन्वमित्र । मन्वगिः । मधुद्विट् । मधुसपत्न । मधुरिपु ।
 बलिवैरी । बल्यराति । बल्यमित्र । बलिद्विट् । बलिसपत्न । बलिरिपु । बाणवैरी । बाणाराति । बाणा-
 मित्र । बाणारि । बाणद्विट् । बाणसपत्नः । बाणरिपु । हरिण्यकशिपुद्विट् । हरिण्यकशिपुसपत्न ।
 हरिण्यकशिपुरिपुः । मुरवैरी । मुरारिः । मुराराति । मुरद्विट् । मुरसपत्नः । मुररिपुः । मधुशत्रुः । बाण
 १० शत्रु । मधुसूदन । बलिसूदन । बलिबन्धनः । बाणसूदन । हरिण्यकशिपुसूदनः । केशिसूदन । इत्यादि
 पर्यायनामानि । शूरस्तस्यादिपुरुषस्तस्यापत्यम्, शौरिः । सारिर्वा । पद्म नामावस्य पद्मनाभः ।
 "सत्राया नाभिः ।" अधोक्ष्णा जितेन्द्रियाणां जायते प्रत्यक्षीभवति, अधोक्षजः । गा भुव विन्दति
 गोविन्दः । वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः । मञ्जुकेश । श्रीवत्साङ्क । श्रीपति । पीतवासा । विष्वक्सेन । विश्व-
 रूप । मुकुन्दः । धरणिधर । सुपर्णकेतु । वैकुण्ठ । जलग्रयन । रथाङ्गपाणि । दाशार्हः । ऋतुपूरुष ।
 १५ वृषाकपि । अच्युतः । इन्द्रावरज । बभ्रु । विष्टरश्रवा । वनमाली । सनातन । जिन । शम्भुः ।
 इत्याद्यूह्यम् ।

लक्ष्मीः श्रीर्गोमिनीन्दिरा ।

- चत्वार श्रियाम् । लक्ष् दर्शनाकाङ्क्षयोः । लक्षयति दर्शयति पुण्यकर्माणं जनमिति लक्ष्मी ।
 "लक्ष्मेमांस्तश्च" अस्मादीप्रत्ययो भवति मोऽन्तश्च । "भज् श्रिच् (सेवायाम्) ।" पुण्यकृतं श्रयतीति
 २० श्री । "वचिपच्छिश्चिद्रुपुञ्चा किञ्दीर्घश्च" एभ्यः क्तिप्रत्ययो भवति दीर्घश्च म्वरस्य चैपम् । गा मिनी-
 तीति गोमिनी । इन्द्राति परमैश्वर्ययुक्ता भवति इन्दिरा । कमला । पद्मा । पद्मवासा । हरिप्रिया ।
 क्षीरोदतनया । माया । मा । ता । ई । आ । रमा । सीता । वला (चला) । भर्भरी । अग्निधराऽपि ।

तत्पतिः शैलभूम्यादिधरश्चक्रधरस्तथा ॥ ७६ ॥

- तस्याः पतिस्तत्पति । लक्ष्मीपति । श्रीपति । गोमिनीपति । इन्दिरापति । इत्यादीनि हरि-
 ३५ नामानि स्युः । शैलभूम्यादिधरः । पर्वतधर । शैलधर । दरीभृद्धारः । अचलधर । ऋद्धिधरः । सानुम-
 दधर । गिरिधर । नगधरः । शिलोच्चयधर । भूमिधर । भूधर । पृथ्वीधर । गह्वरीधर । मेदिनीधर ।

१ मन्यते जनै 'खलत्वेन' इति शेषः । २ का० उ० सू० १।८ । ३ का० उ० सू० ३।१४ ।
 ४. का० सू० २।६।४१ । वृत्तिः । ५ अध कृतमक्षजमैन्द्रियकं ज्ञानं येन, अधो न क्षीयते जातु इति
 वा विग्रहोऽधिकोऽन्यत्र । ६. "मञ्जुकेश" शब्दस्य "विष्णु" पर्यायत्वे कल्पद्रुमि प्रमाणम्—'मञ्जुकेश'
 कौस्तुभोरा. सोमगर्भो धराधर ।" ३।२।७ । ७ बभ्रुशब्दस्य नारायणार्थेऽमरोऽपि प्रमाणम् । "विपुले
 नकुले विष्णौ बभ्रुः स्यात्पिङ्गले त्रिषु ।" ३।३।१७० । ८ का० उ० सू० ३।३५ । ९ का० उ० सू०
 २।२३ । १० "गोमिनी" शब्दस्य लक्ष्म्यर्थे प्रमाणं मुग्यम् । अत्रत्यविग्रहोऽपि चिन्त्यः । मन्वर्थे गोशब्दा-
 न्मिनिप्रत्यये ङीपि गोपालकार्थे तस्य प्रसिद्धौ कोपान्तरसंवादः । ११. ता, ई, आ, एषा लक्ष्म्यर्थे प्रमाणम्—
 "लक्ष्मी पद्मा रमा या मा ता धी कमलेन्दिरा" अभि० चि० २।१४० । "या" इत्यत्र ई आ इति
 च्छेदः । "लक्ष्म्यान्तु भर्भरी विष्णुशक्ति क्षीराब्धिमानुषी ।" इति तद्दीक्षायां ।

महीधरः । धराधरः । वसुन्धराधरः । धात्रीधरः । क्षमाधरः । वसुमतीधरः । विद्वम्भराधरः । अश्वनीधरः । धरणीधरः । क्षमाधरः । धरित्रीधरः । क्षितिधरः । कुधरः (अः) । कुम्भनीधरः । इलाधरः । उर्वरीधरः । उर्वीधरः । गोधरः । जगतीधरः । इत्यादीनि हरेर्नामानि ज्ञातव्यानि । तथा चक्रधरोऽपि ।

तत्पुत्रो मन्मथः कामः सूर्पकाराति (कारि) रनन्त्यजः ।

कायपर्यायरहितो मदनो मकरध्वजः ॥ ७७ ॥

५

पट् कामे । तत्पुत्रः । कृष्णपुत्रः । दामोदरपुत्रः । विष्णुपुत्रः । उपेन्द्रतनयः । पुरुषोत्तमसूनुः । केशवपुत्रः । हृषीकेशपुत्रः । हृषीकेशतनयः । शार्ङ्गिनन्दनः । नारायणोद्बहः । हरिसूनुः । गोविन्दतुक् । इमानि मदनस्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । मन्नाति चित्तं ^१मन्मथः । कामयते जन (अनेन) कामः । ^२सूर्पकारातिः । मनसोऽन्यस्मान्न जायते अनन्त्यजः । कायपर्यायरहितः । विदेहः । अकायः । अनङ्गः । अनपघनः । अवपुः । असहननः । अरुलेवरः । अमूर्तिः । इत्यादि (दीन्यपि तस्य) पर्यायनामानि । जन १० मदयतीति मदनः । मकरो 'वजे यस्य स मकरध्वजः । प्रयुग्मः । मनसिजः । सङ्कल्पजन्मा । अङ्गजः । पञ्चेपुः । श्रीनन्दनः । हृच्छ्रयः । मधुसखः ।

शिलीमुखः शरो बाणो मार्गणो रोपणः कणः ।

इषुः काण्डं क्षुरप्रं च नाराचं तोमरं खगः ॥ ७८ ॥

द्वादश बाणे । शिलीव सद्धमाग्रं मुखं यस्य 'शिलीमुखः । "शू हिमायाम्" । शृणन्त्यनेनेति १५ शरः । 'पु सि सजाया घ' घमत्ययः । वणति 'बाणः । ^६"व्यञ्जनाच्च" घञ् । मार्गयति अन्वेष्टयति मार्गणः । रोप्यते देहे निखन्यते रोपणः । कणति 'कणः । 'इषु गतौ' । इष्यते गम्यते शत्रुसंमुखमिति 'इषु । जन्तुमिष्यति दिनस्तीति वा इषु । "इषिष्टुपिमिदिष्टुचिमृदिष्टुभ्य कु' । काम्यते रिपुवधाय ^{११}'काण्डम् । उभयम् । खनति भिनत्ति ^{१२}'क्षुरप्रम् । नारः नरसमूहम् अञ्जतीति ^{१३}'नाराचम् । स्तोभ्यते श्लाघ्यते तोमरम् ^{१४} । त्वमाकाशं गच्छतीति खगः । कट्टपत्रः । चित्रपटुलः । विशिखः । कलम्बः । २० कदम्बोऽपि । सायकः । प्रदहः । पृषत्कः । रोपः । गार्धपक्षः । ^{१५}'खरः । भल्लः । भल्लः ।

१ विग्रहे चित्तस्थाने मनःशब्दपाठो योज्यः । मनसि हलोपाधौ पुषोदरादिगणपाठायामोऽपि तस्य कार्यः । क्षीरस्वामिरामाश्रमौ तु मनसः मत् चेतना । मन्नातीति मथः । पचायच् । मतश्चेतनाया मथः "मन्मथः" इत्याह । २ छन्दोभङ्गभयाच्छूर्पकारिरिति पाठो बोध्यः । शूर्पकौ नाम कश्चिद् दानवस्तस्य नाशकारित्वात्कामः शूर्पकारिः । तदुक्तम्- अभि० चि० २।१४२ । "पुष्पाण्यस्येपुचापास्त्राण्यरी शस्त्रमूर्पकौ ।" ३ शिली नाम गण्डूपदः । 'केचुवा' इति लोके ख्यातः । ४ का० सू० ४।५।९६ । ५ वणति शब्दायते पुङ्लोऽस्मिन्निति पूर्णो विग्रहः । ६ का० सू० ४।५।९९ । ७ कणति शब्दायते कणः । पचायच् । ८ इषति गच्छति शत्रुसंमुखमिति वा । ९ का० उ० सू० १।१० । १० कनति दीप्यते काण्ड इति रामाश्रमः । "कनी दीप्तौ" । "कादिभ्य कित्" उ० १।१२ । इति डः । अनुनासिकस्येत्युपधादीर्घश्च । अमरकोट्युक्तविग्रहे "कमु कान्ता" कमपातोः स एव प्रत्ययः । कणत्यनेनाहतः काण्ड इति हेमचन्द्रः । "कणः शब्दः" इत्यतो डः । ११ क्षुर तैद्वयेन प्राति गच्छतीति क्षुरप्रम् इत्यपि । क्षुराभ लोहः प्राति गच्छति वा । १२ नारमाचामतीति रामाश्रमः । नरमञ्जतीति नराची, नराच्यास्तुल्यो नाराच इति हेमचन्द्रः । १३ "तु गतौ" सौत्रः । तातीति तौ । विच् । म्रियतेऽनेनेति मरः । पुसि सजाया घ । तौश्चासौ मरश्चेति तोमर इत्यन्यत्र । १४ खरबाणः । तदुक्तं कल्पद्रुकोशे १।५।२६९ । "विकर्णं पत्रबाहश्च चित्रपुङ्खः शरः खरः ।" इति ।

कामुकं धन्व चापं च धर्म कोदण्डकं धनुः ।

शिलीमुखदेरसनम्—

- षट् धनुषि । कर्मणे शत्रुबधलक्षणाय प्रभवतीति 'कामुकम्' । दधन्ति मारयत्यनेन 'धन्वन्' ।
अदन्तम् धन्वम् । चपस्य वेणोर्विकारश्चापम् । उभयम् । धरति 'धर्मन्' । धर्मं च । "कुट्ट अन्तभाषणे" ।
५ कोदयत्यनेन 'कोदण्डम्' । शत्रुवधार्थं धन्यते अर्थ्यते धार्यते वा धनुः । उभयम् । उणादौ दधन्तीति
धनुः (नूः) । "कृपिचमितनिधनिवधिसर्जित्त्रिभ्य ऊ" । शिलीमुखादेरसनम् । शिलीमुखासन ।
शरासनः । मार्गणासन । रोपणासन । कणासनः । इष्वासन । काण्डासन । क्षुरासन । नाराचासनः ।
तोमरासन ।

तत्कोटिमटनीं विदुः ॥ ७६ ॥

- १० तस्य धनुषः कोटिमप्रभागम् । कामुककाटि । धन्वकोटिः । चापकोटिः । काण्डकोटि ।
धनुष्कोटिः । शिलीमुखासनकोटिः । शरासनकोटिः । बाणासनकोटिः । रोपणासनकोटिः । मार्गणासन-
कोटिः । इत्यादिकमटनीति कथ्यते । अटति गच्छति भूमिमटनि । इयाम् । अटनी । द्वौ स्त्रियाम् ।

पुष्पं सुमनसः फुल्लं लतान्तं प्रमवोद्गमौ ।

प्रसूनं कुसुमं ज्ञेयम्—

- १५ षट् (अष्ट) पुष्पे । पुष्पयति विकसति पुष्पम् । सुप्तं मन्यन्ते आनिः सुमनसः । स्त्रोत्ववदुत्वे ।
"त्रिकला विशरणे ।" फल् । फलति स्म फुल्लः । फुल्लं वा । "अग्यथऽकर्मक- 'त' ।" "आदनुन्धञ्" ।
इति नेट् । "अनुपसर्गाः फुल्लक्षीवकुशोच्छापा" निष्ठातकारस्य लत्वम् । "चरफलोऽस्य" तस्मादावगुणे
उत्त्वम् । सि । रेफ । लताया अन्त पतिन लतान्तम् । प्रस् (य) ते प्रसवम् । उद्गच्छति प्रादुर्भ-
वति उद्गमः । श्रिय प्रसूते प्रसूनम् । सून सनक च । एता उभयम् । कौ शोभा मते 'कुसुमम्' ।
२० सुम च । ज्ञेयं ज्ञातव्यम् ।

तदाद्यस्त्रशरः स्मरः ॥ ८० ॥

पुष्पपर्यायतो (त. परत्रा) छपयायेषु तथा बाणपर्यायेष्वपि स्मरनामानि भवन्ति ।
पुष्पेषु । पुष्पबाणः । पुष्पशिलीमुख । पुष्पशरः । पुष्पमार्गणः । पुष्परोपणः । पुष्पकाण्डः । पुष्पकणः ।
पुष्पक्षुरप्रः । पुष्पनाराचः । पुष्पतोमरः । सुमनःक्षुरप्रः । सुमशिलीमुख । सुमनोनाराचः । लतान्तेषु ।

१ 'कर्मण उकञ्' पा० सू० ५।१।१०३ । इति प्रभवत्यर्थे उकञ् । टिलोपः । २ 'धन धान्ये'
जुहोत्यादिः । वन्प्रत्ययः । धातूनामनेकार्यत्वान्माग्यतीत्यर्थः । धान्वर्थानुरागे तु दधति धान्यमर्जयत्यनेने
त्यर्थो बोध्यः । वीराणां वनधान्यार्जनमाधनत्वाच्च धनुषः । धन्वति गच्छति धन्वेति क्षीरत्वामिरामाश्रम-
हमचन्द्राः । कनिन्प्रत्ययः । ३ धरती रक्षत्यापन्नस्त्वानित्यर्थः । मनिन्प्रत्ययः । अकारान्तधर्मशब्द-
स्य धनुर्वचित्वे मेदिनी प्रमाणम् — 'धर्मोऽस्त्री पुण्य आचारे स्वभावोपमयोः कर्ता । आहिमोपनिषन्ध्याये ना
धनुर्यममोपे ॥' मान्तव० १६ श्लो० ॥ ४ बाहुलकादण्डप्रत्ययः । रामाश्रमस्तु 'कुट्ट अन्तभाषणे'
कोटती विग्रहमाह । म एव प्रत्ययः । पृषोदरादित्वाट्टस्य द । कदि सौत्रः । कथतेऽनेनेति हंमचन्द्रः ।
'कु शब्दे' कौतीति कौ । कौ. शब्दायमानो दण्डोऽस्त्येत्यन्यत्र । ५ का० उ० सू० १।३१ । ६ सुप्रीत
मन आभिरिति मुकुटः । ७. का०सू० ४।६।४९। ८ का०सू० ४।५।९१। ९. का०सू० ४।६।१५। १० का०
सू० ४।१।७६। ११ कुस्यति कुसुमम् । "कुस सश्लेषणे" दिवादि । "कुसेरुभोमेदेता" पा०उ० सू०
४।१०६। इत्युमप्रत्ययः । इति रामाश्रमः ।

लतान्तकाण्ड । लतान्तधुरप्र । लतान्तनाराचः । लतान्ततोमरः । प्रसवमार्गण । प्रसवरोपण । प्रसवकण । प्रसवेषु । प्रसवकाण्ड । प्रसवधुरप्र । प्रसवनाराचः । प्रसवतोमर । उद्गमशिलीमुखः । उद्गमशर । उद्गमबाण । उद्गममार्गणः । उद्गमरोपण । उद्गमकणः । उद्गमेषु । उद्गमधुरप्र । उद्गमनाराच । उद्गमतोमरः । प्रसूनशिलीमुख । प्रसूनशर । प्रसूनबाण । प्रसूनरोपण । प्रसूनकण । प्रसूनकाण्ड । प्रसूनेषु । प्रसूनधुरप्र । प्रसूननाराच । प्रसूनतोमर । कुसुमशिलीमुख । कुसुमशर । कुसुमबाण । कुसुम- ५
मार्गण । कुसुमरोपण । कुसुमकण । कुसुमेषु । कुसुमकाण्ड । कुसुमधुरप्र । कुसुमनाराच । कुसुमतोमर । पुष्पशब्दाग्रे धनुषि शब्दे प्रयुज्यमाने कन्दर्पनामानि भवन्ति । पुष्पकामुक । पुष्पधन्वा । पुष्पचाप । पुष्पधर्मा । पुष्पकोदण्डः । पुष्पधनु (न्वा) । लतान्तकामुक । लतान्तधनु (न्वा) । लतान्तचाप । लतान्तधर्म (र्मा) । लतान्तकोदण्ड । लतान्तधन्वा । प्रसवचाप । प्रसवकोदण्ड । प्रसवधनु (न्वा) । प्रसूनकामुक । कुसुमधन्वा । कुसुमचाप । कुसुमधर्म (र्मा) । कुसुमकोदण्डः । कुसुमधनु (न्वा) । १०
इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

स्वान्तमास्वनितं चित्तं चेतोऽन्तःकरणं मनः ।

हृदयं विशिखाऽकृतम्--

नव चित्ते । 'स्यम स्वन ध्वज शब्दे ।' आङ्पूर्वः । स्वनति स्म, आस्वनति स्म इति स्वान्तम्, आस्वान्तम् । 'गत्यर्था०' निष्ठा क । 'वा रुच्यमत्वरसधुषाऽस्वनाम' एव ते विभाषयेद् १५
भवति । वेट् । 'पञ्चमी०' ३ । 'मनोरनुभवो' ४ 'उटि' । मनोऽर्थे 'क्षुभिवाही' ११ 'त्यादिना के नेट् । कथितत्वकथनेऽपि परत्वात्पूर्वात्परोक्तयो परोक्तविधिर्बलवान् इति वचनात् । अनेन सूत्रेणायमेव विकल्पो भवति । मनोऽभिधानेऽपि परत्वादयमेव विधिर्भवति । चेतति चित्तम् १० । चेतति जानाति अनेनात्मा चेतस् सान्तम् । अन्तः निश्चयः । क्रियतेऽनेन, अन्तःकरणम् ८ । मन्यते बुध्यतेऽनेन सान्तम् मनस् । बुद्ध्यार्थे हरति हृदयम् । 'हृजो' दोऽन्तश्च ११ । दान्त च हृद् । विगत (ता नष्ट (ष्ट) शिख (खा) २०
यस्य तत् विशिखम् ११ । आ समन्तात् कूयते आकूयते (आकृतम्) । तथा चाष्टसाहस्र्याम् ११—
'जाताकृतेनाकारेणेति मानसम्' ।

मारस्तत्रोद्भवो मतः ॥ ८१ ॥

तत्र चित्ते उद्भवो मारो मतः कथित । स्वान्तसम्भवः । स्वान्तज । आस्वनितज । चित्त सम्भव । चित्तज । चेतस्सम्भव । चेतोजः । अन्तःकरणसम्भव । हृदयसम्भवः । हृदयजः । विशिखसम्भवः । २५
विशिखज । आकूयसम्भव । इत्यादीनि कन्दर्पनामानि ज्ञातव्यानि ।

मौर्वी जीवा गुणो गव्या ज्या-

पङ् गुणे । मूर्वति हिनस्यनया मूर्वा । तदाख्यस्य तृणस्य विकारो मौर्वी । धनुरनया जीवतीति

१ का० सू० ४।६।४९। २ का० सू० ४।६।९७। ३ का० सू० ४।१।५५। 'पञ्चमीपञ्चाया उटि चागुणे' इति पूर्णे सूत्रम् । ४ का० सू० २।४।४४। ५ का० सू० ४।६।९३। ६ आस्वनितमित्यत्र मनोऽर्थेऽपि परत्वात् 'वा रुच्यमत्वरसधुषाऽस्वनाम' इति वेट् । आङ्पूर्वकत्वाभावे तु स्वान्तमित्यत्र 'क्षुभिवाही' ११ 'त्यादिनेट्-प्रतिषेधः । तेन स्वान्तमित्येकमेव रूपम् । आङ्पूर्वकत्वे तु आस्वनितमारवान्तमित्युभयमित्याशयः । ७ 'ज्यनुबन्धमतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः क' इति का० ४।४।६६। सूत्रेण जानार्थत्वाद्वर्तमाने क । ८ अन्तः शब्दस्याऽत्राधिकरणशक्तिप्रधानरेफान्ताव्ययत्वेनान्तो निश्चयः इति व्युत्पत्तिर्न युक्ता । अन्तर्गतं करणम्, करणानामन्तर्गतं वेति व्युत्पत्तिर्गोच्या । ९ का० उ० सू० २।२६। १० विशिखशब्दस्य हृदयार्थे न किमप्यन्यत्र प्रमाणमुपलब्धम् । अधोमुखपुण्डरीकाकारत्वाद्दृढयस्य शिखारहितत्वं कथञ्चिन्नयेयम् ।

जीवा । गुण्यते अभ्यस्यतेऽनेन गुण । पुः । गोभ्यो हिता गव्या । जीयतेऽनया ज्या । बाणासनम् । दृणा ।

अलिर्भृङ्गः शिलीमुखः ।

अमरः षट्पदो ज्ञेयो द्विरेफश्च मधुव्रतः ॥ ८२ ॥

सप्त भृङ्गे । अलिमि मण्डयति पुपजाती. अलि । मधुना विमर्त्यात्मानं भृङ्ग । १५५ भृङ्गानि एतेऽङ्गप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शिलीसदृश शिलासदृश वा मुखमस्य शिलीमुख । अमन् रातीति निरुक्त्वा अमर । 'शकन्धादय' शकन्धुप्रभृतीनाम् अकारस्य लोपो भवति । आदिशब्दात् नकारस्य लोपः । उणादौ "अमु चलने" । अमतीति अमरः । 'देवि' वटिजटिभ्रमिवामिभ्योऽुर । पट् पदानि चरणा अस्य षट्पद । द्वौ रेकौ यस्य द्विरेफः । मधु व्रतयति मुड्के मधुव्रतः । मधुकर । पुणलिङ् । इन्दिन्द्र । पट्चरणः । पडङ्घ्रि । चञ्चरीक । असल । रोलम्ब । देश्याम् ।

१०

मौर्व्यादिप्रान्तमल्यादिकन्दर्पस्यैक्षवं धनुः ।

इक्षार्विंकार ऐक्षवम् । अलिमौर्वी (कम्) । भृङ्गमौर्वी (कम्) । शिलीमुखमौर्वी (कम्) । अमरमौर्वी (कम्) । षट्पदमौर्वी (कम्) । द्विरेफमौर्वी (कम्) । मधुव्रतमौर्वी (कम्) । अलिजीवा (वम्) । भृङ्गजीवा (वम्) । शिलीमुखजीवा (वम्) । अमरजीवा (वम्) । षट्पदजीवा (वम्) । द्विरेफजीवा (वम्) । मधुव्रतजीवा (वम्) । अलिगुण (णम्) । भृङ्गगुण (णम्) । शिलीमुखगुण (णम्) । अमरगुण (णम्) । षट्पदगुण (णम्) । द्विरेफगुण (णम्) । मधुव्रतगुण (णम्) । अलिज्या (ज्यम्) । भृङ्गज्या (ज्यम्) । द्विरेफज्या (ज्यम्) । मधुव्रतज्या (ज्यम्) । इत्यादीनि कन्दर्पशिलीमुख (धनु) नामानि ज्ञेयानि ।

हेतिरस्त्रायुधं शस्त्रम्—

चत्वार शस्त्रे । हिनाति अनया हेतिः । स्त्रियाम् । 'सातिहेनिज्' तिथून्यत्र । एने तिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अभ्यते क्षिपतेऽनेनेति अस्त्रम् । आयुःयतेऽनेन आयुधम् । उभयम् । २० शस्यतेऽनेन शस्त्रम् । 'नीदापशुशुयुजस्तुतुदसिचिमिहपतदशनहा करणे' धृन् । त्रमात्र । 'व्यञ्जनम्' इति सपरगमनम् । ननु अयेत्प्रतिपधाभावात् धृनि प्रत्यये इडागमः कथं भवति । आगमशान्त्रमनित्यमिति वचनात् शशुधानोः धृनि प्रत्यये ट् न भवति । 'युस्य' पत्रे इति जापकादेव (द्रा) ।

पुष्पाद्यस्त्रः स्मरगे मतः ॥ ८३ ॥

पुष्पापर्यायं अस्त्रपर्यायं शरपर्यायेषु तथा चापपर्यायेष्वपि स्मरनामानि भवन्ति । पुनः

१ गोभ्यो बाणेभ्यो हित्यर्थः । २ जिनाति जीयतेऽनया । 'ज्या वयोहानौ' । 'अन्येष्वपि दृश्यते' इति ड । ३ अल भूषणादौ । सर्वधातुभ्य इन् । ४ का० उ० १।४८ । ५ का० सू० वृ० । ६ कातन्त्रोणादौ नोपलब्धम् । ७. अमरपदे रेफद्वयसत्त्वाद् द्विरेफ । ८ कन्दर्पस्य धनुरैक्षवम् । इलुदण्ड-निर्मितम् । अत एव काम इक्षुधन्वेत्युच्यते । मौर्व्यादयः शब्दा अन्ते यस्य, अलि. अलिपर्याय आदौ यस्येदृश तदधनुरिति यथाश्रुतपाठार्थः । अस्मिन्नर्थे धनुर्विशेषणतया अलिमौर्वीकम् भृङ्गमौर्वीकम् इत्यादि टीकाया वक्तव्यम् । वस्तुतस्तु मौर्व्यादिप्रोक्तमल्यादिरिति पाठो युक्तः । तत्र पदार्थयोजनाऽपि साधु मगच्छते । अल्यादि कन्दर्पस्य मौर्व्यादि धनुश्च ऐक्षवम् इत्यर्थः । तदुक्तम्— 'मौर्वी रोलम्बमाला वनुरय विशिखा कौसुमा पुष्पकेतो' इति साहित्यदर्पणे । टीकैया तु यथाश्रुतपाठानुगामिनी । ९ "हि गतो वृद्धो च । इय व्युत्पत्तिरग्निशिखायं बोध्या । शस्त्रार्थे "हन् हिंसायाम्" हन्यतेऽनयेति सुवचम् । १० का० स० ४।५।७३ । ११. का० सू० ४।६।१। व्यञ्जनमस्वर परवर्णं नयेत् । १२ का० सू० १।१।२१। इति सकारस्य परगमनम् । १३ का० सू० ६।२।३३।

हेति । पुष्पाब्ज । पुष्पायुध । पुष्पशब्ज । सुमनोहेति । सुमनोऽब्ज । सुमनआयुध । सुमनश्शब्ज । लनान्तहेति । लतान्ताब्ज । लतान्तायुध । लतान्तशब्ज । प्रसवाब्ज । प्रसवायुध । प्रसवशब्ज । उद्गमहेति । उद्गमायुध । उद्गमशब्ज । प्रसूनहेति । प्रसूनान्त्रः । प्रसूनायुध । प्रसूवशब्ज । कुसुमहेति । कुसुमाब्ज । कुसुमायुध । कुसुमशब्जः । इत्यादिकानि नामानि ज्ञातव्यानि ।

ध्वजं पताका केतुश्च चिह्नं तद्वैजयन्त्यपि ।

५

पत्र पताकायाम् । ध्वजते (ति) धृयते ध्वजः^१ । तथाऽमरसिद्धे—“^२ध्वजमस्त्रियाम् ।”^३ ध्वजिश्च । पताकादण्डे ध्वज इत्यन्यः । पत्यते क्षिप्यते वातेन पताका । बलाकादयः^४—“बलाकापिनाक-पताकाश्यामाकशलाका” एते अकप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । पटाका च । छियाम् । कीयते सैन्यमनेन केतुः । “केत्रादयः—“कन्वृत्तत्वाप्तुपीत्वेधतुबहतुजीवातवः” एते तुन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । चह परिकल्कने । चहयति (अनेन) चिह्नम् । विजयतेऽनया वैजयन्ती^५ । जयन्ती च । छीघ्रो । वैजयन्तः । जयन्तः । १०

तत्तदन्तो झपाद्यादिः शम्भोर्विघ्नकरः स्मरः ॥ ८४ ॥

भूपध्वज । भूपपताक । भूपकेतु । भूपचिह्न । भूपवैजयन्ति । पडद्वीणध्वजः । पडद्वीण-पताकः । पडद्वीणकेतु । पडद्वीणचिह्न । पडद्वीणवैजयन्ति । सफरध्वज । सफरपताक । सफरकेतु । सफरचिह्न । सफरवैजयन्ति । अनिमिषवज । अनिमिषपताक । अनिमिषकेतु । अनिमिषचिह्न । अनिमिषवैजयन्ति । निमिषवज । निमिषपताक । निमिषकेतु । निमिषचिह्न । निमिषवैजयन्ति । मीनवज । मीन-पताकः । मीनकेतु । मीनचिह्न । मीनवैजयन्ति । पाटीनध्वज । पाटीनपताक । पाटीनकेतु । पाटीनचिह्न । पाटीनवैजयन्ति । शम्भोर्विघ्नकर । हरविघ्नकर । इत्यादीनि स्मरनामानि ज्ञातव्यानि । १५

कौक्षेयकासिनिस्त्रिशकृपाणाः करवालक ।

तगरिर्मण्डलाग्रं खड्गनामावलि विदुः ॥ ८५ ॥

अष्टौ खड्गे । कुक्षौ भव कौक्षेयकः^१ । कौक्षेय । अन्यते क्षिप्यतेऽस्मि । निष्क्रान्तस्त्रिशतोऽ-^२हलि-यो निस्त्रिशः । तालव्यान्त । शत्रून् हन्तु कल्पते याचते कृपाणः^३ । “कृपे काण” । करे वलनं करवालः^४ । करपालः । तरति (तर्) लवमान वारि यत्रेति निरुक्त्या तरवारिः । मण्डल वर्तुलमग्र यस्य तन्मण्डलाग्रम् । खण्डात् परममाण्यनेन खड्ग । “खण्डर्गक” । स्त्रीत्रा । ऋष्टि । चन्द्रहास । २०

अशौहिणी बलानीकं वाहिनी साधनं चमूः ।

ध्वजिनी पृतना सेना मैत्र्यं दण्डो वरूथिनी ॥ ८६ ॥

२५

द्वादश सेनायाम् । अक्षाणा रथानामूहिनी अशौहिणी । “अश्वम्यौत्वमूहिन्याम्”^१ औत्वम् । अथवा धात्वर्थेन साध्यते भाष्यकर्त्रा श्रीमदमरकीर्तिना । अश्व व्यामौ । अश्वनुने व्यानोतीति अश्व । “^२वृत्त-

१ “वज्र गतौ” । पचात्रच् । २. अम० को० २।८।१९। ३ का० उ० ३।४०। ४ का० उ० १।२८। ५ विजयते विजयन्तः, विजयशाली पुरुष । आणादिको भूचप्रत्यय । भूस्यान्तादेशः । विजयन्तस्येय पताका वैजयन्तीति । ६ ते ते ध्वजपर्याया अन्ते यस्य भूपादिमानपर्यायश्चादे । यस्य ईदृशस्तथा शम्भुविघ्नकरश्च स्मरः कामः । तेऽपि स्मरपर्याया । तद्यथा भूप व्रजेत्यादि । ७ कुलकुक्षि-ग्रीवाम्ब आऽस्यलङ्कारेण” पा०सू० ४।२। ६। इति खड्गार्थे ढकन् । ८ कृपा नुदति कृपाण इत्यपि । ९, का०उ०सू० ५।१७। १० “वल वेष्टने” । ज्वलादित्वाणः । बलन वालो वेष्टनम् । करे वालो यस्य, करेण बल्यने वोभयमप्यन्यत्र । ११ का० उ० सू० ५।५२। १२. का०सू० वृ० १।२। १३. का०उ०सू० ४।५३।

वदिहनिमनिकम्यशिकविभ्य स." स प्रत्ययः । "कुशोश्च"प । "पदो क २से" अक्ष्प । "कषयोगे क्त्" । अक्ष् इति जातः । ऊहन् ऊह । ऊहो विद्यते यस्या सा ऊहिनी । अक्षाणामूहिनी अक्षौहिणी । "समा-सान्तसमीपयोरसुवादैः" अर्थः समासस्य अन्ते समासस्य समीपे च नकारस्य पूर्वपदस्यान् निमित्तात् (परस्य) णो भवति वा । इदानीम् अक्षौहिणीप्रमाणं क्रियते । यन्भारतम्—

५

“एको रथो गजश्चैको नरा. पञ्च पदातयः ।

त्रयश्च तुरगास्तच्चैः पत्तिरित्यभिधीयते ॥

पत्त्यंगैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् ।

सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः ॥

अनीकिनी”

१०

पतेस्त्रिगुणं सेनामुखम् । गजा ३, रथाः ३, अश्वा ९, पदातय १५ इति सेनामुखम् । गजा ९, रथाः ६, अश्वा २७, पदातय ४५ इति गुल्मम् । गजा २७, रथाः २७, अश्वा ८१, पदातय १३५, इति गणः । गजा ८१, रथाः ८१, अश्वा २४३, पदातय ४०५ इति वाहिनी । गजा २४३, रथा २४३, अश्वा ७२९, पदातयः १२१५, इति पृतना । गजा ७२९, रथाः ७२९, अश्वा २१८७, पदातयः ३६४५ इति चमूः । गजा २१८७, रथाः २१८७, अश्वा ६५६१, पदातय १०९३५ इत्यनीकिनी । दशानी”-

१५

किन्योऽक्षौहिणी । गजा २१८७०, रथा २१८७०, अश्वाः ६५६१०, पदातयः १०९३५० । बलं न मृणोति परभूमिं बलम् । उभयम् । अनिति प्राणिति तूर्यस्वने न नीयते पराम्ब वा अनीकम् । वाहा अश्वाः सन्त्यस्या वाहिनी । साध्यते (अनेन) साधनम् । परान् शत्रून् चमति ग्रमते चमूः । “कृषि-चमितनिधनिबधिसज्जिज्जिभ्य ऊः ।” चमुश्च । ध्वजाः सन्त्यस्या ध्वजिनी । नायक पिपति पृतना । अङ्गैः सिनोति बन्नाति सेना । “मिनोतेर्नः” । सेनाया स्वायें यणि सैन्यम् । दाम्यति दण्डः । वरूथो रथ-

२०

गुतिरस्यस्या वरूथिनी । पताकिनी । चक्रम् । अनीकिनी । गूढः । तन्त्रम् ।

कदनं समरं युद्धं संयुगं कलहं रणम् ।

संग्रामं सम्परायाजी संयदाहुर्महाहवम् ॥ ८७ ॥

एकादश युद्धे । कथं कदनम् । समिप्रति प्रतिविकला भवन्त्यत्र नरा समरम् । युध्यते (त्रा) गिभिर्युद्धम् । भटा संयुज्यन्ते मिलन्त्यत्र संयुगम् । कल मनुष्य वाक्य हन्त्यत्र कलहः । रणन्ति दुन्दुभयोऽत्र रणम् । संग्रस्यन्ते सत्वान्यनेनेति संग्रामः । पुंलि । सपरैति मृत्युत्र सम्परायः । भटा अज्यन्ते ज्ञायन्तेऽत्र आजिः । स्त्रीत्रोः । सयतन्तेऽत्र तान्त संयत । महोश्चासौ आहव । “महाहव । तम् आहुः

१ का० सू० ३।६।६०। २ का० सू० ३।८।४। ३ “कषयोगे क्त्” । का० सू० ५० २५६ सू० । ४. प्रथमः श्लोको महाभारत उपलभ्यते । तस्योपलब्धिस्तु द्वितीयः व्याये पञ्चदशश्लोकेन । इतरस्तत्र नोपलभ्यते । तत्र “एको रथः” इति श्लोकानन्तरम् — “पत्तिस्तु त्रिगुणमेतामाहुः सेनामुखं बुधा । त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते ॥ त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणाश्च । स्मृता-स्तिष्ठस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्ष्णैः ॥ चमूस्तु पृतनास्तिष्ठस्तिस्रश्चस्त्वनीकिनी । अनीकिनी दशगुणा प्राहुः सेनामुखं बुधा ॥ इति । श्लो० १६, १७, १८ । ५ अभि० चि० २।४।१३। ६. का० उ० सू० १।३।१। ७ का० उ० सू० ६।३६। ८. गूढशब्दस्य सेनायेंज्यत्र प्रमाणं मृग्यम् । ९. “कद वक्लव्ये” । कथं विकल्प्यतेऽनेनास्मिन्वा । करणेऽधिकरणे वा ल्युट् । १० सङ्ग्रामयन्तेऽत्रेति । हेमचन्द्र । सङ्ग्रामण सङ्ग्राम इति रामाश्रम । ११ आदूयन्ते योद्धारोऽत्रेत्याहव ।

ब्रुवन्ति । आयोधनम् । जन्मम् । प्रधनम् । प्रविदारणम् । मृद्यम् । आस्कन्दनम् । सख्यम् । समीकम् । अनीकम् । विग्रहः । समुदायः । अभ्यागमः । सस्फोटिः (ट.) । समितिः । समित् । दम्बम् । सम्मर्दः । सगरः ।

गजो मतङ्गजो हस्ती वारणोऽनेकपः करी ।

दन्ती स्तम्बेरमः कुम्भी द्विरदेभमितङ्गमाः ॥ ८८ ॥

५

शुण्डालः सामजो नागो मातङ्गः पुष्करी द्विपः ।

करेणुः सिन्धुरः—

विंशतिर्गजे । गजति माद्यति गजः^१ । अच् । मतङ्गादृषेर्जातो मतङ्गजः । ^२सप्तमीपञ्चम्यन्ते जनेर्ङ^३ । हस्तो विद्यतेऽस्य हस्ती । “जातो तु दन्तहस्ताभ्या कराच्चैव इनेव हि” । वारयति परान् शत्रून् वारणः । न एकेन पिबत्यनेनपः । करोऽस्यस्य करिन् । दन्तोऽपि करि । दन्तो विद्यतेऽस्य १०
दन्ती । स्तम्बे तृणे रमते स्तम्बेरमः । “स्तम्बकर्णयो रमिजपो” खच् । कुम्भो विद्यतेऽस्य कुम्भी । द्वौ रदौ यस्य द्विरदः । एति गच्छति शत्रुसंमुखमितीभ । “इणा यण्वत्” भप्रत्ययो भवति स च यण्वत् । मित गच्छतीति मितङ्गमः । “गमेरच्”^४ खप्रत्ययः । ‘ह्रस्वा रूपोऽन्तः’^५ । शुण्डा लाति गृह्णातीति, शुण्डालः^६ । साम्नः^७ सामवेदज्जातः सामजः । नगे पर्वते भवो नागः । मन्यते जनेन मातङ्गः । पुष्करं विद्यतेऽस्य पुष्करी । द्वाभ्यां पिबति द्विपः । करोति कार्यं करेणुः । “इङ्गुभ्यामेणु”^८ १५
आभ्यामणुः प्रत्ययो भवति । स्यन्दने खति मठ सिन्धुरः^९ । दन्तावलः । पद्मी^{१०} । पीलुः । कालिङ्गः ।

तेषु यन्ता याता निषाद्यपि ॥ ८९ ॥

त्रयो हस्तिपके । यच्छतीति यन्ता । यातीति याता । निषीदति इत्येवशीलो निषादी । गजयन्ता । गजयाता । हस्तियन्ता । हस्तियाता । इत्यादीनि जातव्यानि । अपिशब्दात्—आधोरणः । हस्तिप । हस्त्यारोहः^१ । गजाजीवः । महामात्रः ।

२०

नागाद्यरिः कण्ठी^१ (ण्ठि) रवो मृगेन्द्रः केसरी हरिः ।

चत्वारः सिंहे । नागारिः । गजरिपुः । मतङ्गवैरी । हस्तिद्विट् । वारणवैरी । अनेकपसपत्न । करिरिपुः । दन्तिवैरी । स्तम्बेरमरिपुः । कच्चिदृश्यते ईदृश पाठः । कुम्भिवैरी । इभवैरी । मतङ्गशत्रुः । शुण्डालरिपुः । सामजद्वेषी । नागारिः । पुष्कररिपुः । द्विपवैरी । करेणुरिपुः । सिन्धुरवैरी । इत्यादीनि पर्यायनामानि सिंहस्य ज्ञातव्यानि । कण्ठे रवो ध्वनिर्यस्य कण्ठीरवः ।

२५

१ गजति माद्यति गर्जति वा गजः । २. का० सू० ५।३।११। ३ का० म० २।६।१५। वृत्तिः । ४ का० सू० ४।३।१६। ५. का० उ० सू० २।२६। ६ का० सू० ४।३। ४५। ७ का० सू० ४।१।२२। ८ शुण्डाऽस्त्वस्येत्यपि । ‘प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्’ पा०सू० ५।२।१६। इति मत्वर्थीयो लच्प्रत्ययः । ९ सामवेदो हि गीतपरः । तत्स्वरेण समाकृष्टा इति नो बद्धा अभवन् । बद्धाश्चाकृष्य जनपदे समानीता । गीतमूढा यतो बद्धसमानीताः । अत एव सामजा इत्युच्यन्ते । इति सङ्गतिः । प्रमाणांतरमपि मृग्यम् । सामवेदमुच्चारयन् विधिर्यत्रान् ससर्ज । साम्ना सह जातत्वात्सामजा इति । १० का० उ० सू० २।६। ११ स्यन्दघातोरकर्मकत्वात्स्रवति मदमित्यर्थश्चिन्तनीयः । १२ अत्र कल्पद्रुकोष १।५।१४४। प्रमाणम्— “करी मतङ्गजः पद्मी सूर्यकर्णो लतारसः” । इति । १३ छन्दो भङ्गभियाञ्ज कण्ठिरव इति पाठः प्रतिभाति । वर्णागमो गवेन्द्रादावित्येकारस्य इकार ईकारश्च विधेयः ।

“वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिहे वर्णविपर्ययः ।
षोडशादौ विकारस्तु वर्णनाशः पृषोदरे ॥”

इत्यनेन एकारस्य ईकार । मृगाणां चतुष्पदानां मध्ये इन्द्रः **मृगेन्द्र** । केसराः स्कन्धकेशाः सन्त्यस्य **केसरी** । क्रमप्राप्ते हरति **हरि** । पद्मानन । हर्यक्ष । नखरायुध । मृगरिपुः । सिंह ।

५

व्याघ्रश्चमूरः शार्दूलः—

त्रयो व्याघ्रे । व्याजिघ्रति प्राणान् उगादत्ते व्याघ्र । चमति अति पशून् **चमूर** । परान् शृणाति हिनस्ति **शार्दूल** । द्वीपो । पुण्डरीकः । तरक्षु । चित्रकाय । मृगारिः ।

गरभोऽष्टापदोऽष्टपात् ॥ ६० ॥

त्रयोऽष्टापदे । शृणाति हिनस्ति **शरभ** । “कृशुशलिगदिंरासवलिवल्लिभ्याम्” । अष्टौ पदान्यस्य **अष्टापद** । अष्टौ पादा यस्यार्मा **अष्टपात्** ।

क्रोडो वराहो दंष्ट्री च घृष्टिः पोत्री च शूकरः ।

अष्टा (पट्) शूकरे । पल्लव सक्रमति **क्रोड** । वरानाहन्ति **वराह** । दंष्ट्रा सन्त्यस्य **दंष्ट्री** । घर्षतीति **घृष्टिः** । शृष्टिश्च । पूड पवने । पू । भा० । पूड् पवने वा । क्रौ० । उभयपदी । प्रयत्नेऽनेनेति **पोत्रम्** । “हलशूकरया पुनः” घृन् । त्रमात्र । नाग्यन्तगुण । मि० नप० । पोत्रमस्यस्य **पोत्री** । सते प्रचुगा-
६५ पत्त्वानि, श्वयति वर्धते वा गीनत्वेन **सूकर** । शूकरश्च । दन्त्यतालव्य । कोल । किर । किरिश्च ।

उष्ट्रो मयः शृङ्खलिकः कलभः शीघ्रगामुकः ॥ ६१ ॥

पञ्चोष्ट्रे । उष्यते दह्यते मरी **उष्ट्र** । “सर्वधातुभ्य घृन्” । मयते गच्छति **मयः** । मयते इत्येके । शृङ्खल बन्धनमस्य **शृङ्खलिक** । क शिरो रभते उन्नमयतीति **कलभ** । कर्मभश्च । शीघ्र गच्छतीति **शीघ्रगामुक** । दासेगक । दीर्घजङ्घ । ग्रीवी । रवण । धू प्राफो (धूपक) ।

२०

कौलेयकः सारमेयो मण्डलः श्वा पुरोगतिः ।

जिह्वापो ग्रामशार्दूलः कुक्कुगे गत्रिजागरः ॥ ६२ ॥

नव सारमेय । कुले गृह भव **कौलेय** । (यक) । सरमाया अपत्य **सारमेय** । मण्डलानि **मण्डल** । चारादीन् श्वयति गच्छति **श्व** । श्वानोऽन्तोऽपि । पुरो गच्छति **पुरोगति** । जिह्वा शरीर

१. ‘पृषोदरादयः’ इति शा० सू० २।२।१७२। कारिका । २ प्राणान् हरतीत्येता-
वानेवान्यत्र । ३. यद्वा शारयतीति शार् । क्रिप् । दूयते इति दूल । अन्तर्भावितणिजयां दूट् । शार्-
चासौ दूलश्चेति विग्रहः । ४. का० उ० सू० ३।१२। ५ “क्रुड घनत्वे” । क्रोडन घनत्व सोऽस्यास्तीति क्रोड ।
“अर्श आश्रच्” इति रामाश्रम । ६ वरमाहन्तीति वर आहारो यस्येति वा पृषोदरादित्वात् । ७ का० सू०
४६।६२। ८ सुव प्रमव करोतीति । शूक्रोऽस्यस्य शूकर खररोमन्वात् । शूक राति वा । शू इतिश्वनि
करोति वा । ९ घृष्टि इच्छति कण्टकवृक्षादन मरुग्रमि वा इति उष्ट्र । “सर्वधातुभ्य घृन्” इति का० उ०
४।२६। सूत्रे दुर्गासिह — “वश कान्तौ” । वष्टाति उष्ट्रः कर्मभः । अस्य घृन्नन्त्य सम्प्रसारण निपातना-
न्त्यव च । इत्याह । १० का० उ० सू० ४।३९ । ११ मीनायहीन् मय । ‘मीञ् हिंसायाम्’ । पचायच ।
इति वा । १२ शृङ्खलमस्य बन्धन कर्मभे पा० सू० ५।२।३९ । इति कन् । तेन शृङ्खलक इति माधु ।
“न तु शृङ्खलक काष्ठमयै स्यात्पादबन्धनै” । इति अभि० चि० । १३ “कुलकुक्षिग्रीवाभ्य श्वाःस्थलद्वारेषु”
पा० सू० ४।२।१६। इति श्वाऽर्थे टकन् । १४ जिह्वया रसनया पिबतीति विग्रहः सुवच । जिह्वया शरीर
पातीत्यपि सम्भवति ।

पति रक्षति जिह्वाप । ग्रामाणां शार्दूलं व्याघ्र ग्रामशार्दूल । कुक् शब्द करोतीति कुक्कुर^१ । कुर शब्दे । कुकुरश्च । रात्रौ जाग्रति रात्रिजागर । लेङ्वह । वुक्कण । भषण । मृगदश । शालावृक ।

हेम चाष्टापदं स्वर्णं कनकार्जुनकाञ्चनम् ।

सुवर्णं हिरण्यं भर्मं जातरूपं च हाटकम् ॥ ६३ ॥

तपनीयं कलाधौतं कार्तस्वरशिलोद्भवम् ।

२

पञ्चदश स्वर्णं । हिनोति वर्धतेऽनेन हेमन् । नान्तम् । अदन्त हेम च । अष्टसु लोहेमुपद प्रति-
ष्टास्य अष्टापदम् । “अष्टनः” सत्रायाम्” इति दीर्घ । शोभनो वर्णाऽस्य स्वर्णम् ।
उकारलोपः । अथवा समासे वर्णस्य वा वलोपमाहुः । यथा पञ्चाणां मन्त्र । कनति दीप्यते कनकम् ।
‘कनिचनिभ्यामक’^२ । कनी दीप्तिकान्तिगतिषु । अर्जं सर्जं अर्जने । अर्जतीत्यर्जुनम्^३ । “अकृतवृन्त्यमि”^४
दार्पण्ये उनः । काञ्चति शोभा बभूवति काञ्चनम् । शोभनो वर्णा यस्य सुवर्णम् । उभयम् । पुण्य जिहीते^५
हिरण्यम् । अथवा ओहाम् त्यागे । हीयते हिरण्यम् । ‘हो हिरश्च’ अस्मादन्य प्रत्ययो भवति
हिरादेशश्च । भ्रियते धार्यते नान्तम् भर्मन् । अदन्त च भर्मम् । जात रूप यस्य जातरूपम् । जीवे ।
नया च “यशस्तिलके—“अमङ्गमृहोऽपि जातरूपमृह ।” हटति हाटकम् । हट दीप्ता । अग्निना
नयते तपनीयम् । कला धावति गच्छति कलाधौतम् । कृतस्वराकरे भव कार्तस्वरम् । शिलाया-
नापाणादुद्भवा यस्य शिलोद्भवम् । शातकुम्भम् । गाङ्गेयम् । कबुरम् । चामीकरम् । महारजतम् ।
रुक्मम् । रुमम् । जम्बूनदम् । कल्याणम् । गिरिक । चन्दवसु च ।

१०

१५

रूप्यं रजत गुलिका-

त्रयो रूप्ये । रूप्यते जना मुह्यतेऽनेन रूप्यम्^१ । जन रजति रजतम् । रज्यते हेम्ना रजत वा ।
गुड रक्षायाम् । गुडति रक्षति आपद सकाशाद् गुलिका । गुडिका च । कलाधौतम् । तारम् । सिनम् ।
दुर्वर्णम् । खर्जरम् । श्वतम् ।

२०

शुक्तिज मौक्तिकं तथा ॥ ६४ ॥

द्वौ मौक्तिकं । शुक्त्या जलादियानोपकरणद्वयविशेषाज्जातम् शुक्तिजम् । मुक्तानां समूहो
मौक्तिकम् । समूहऽर्थे इकण् ।

वित्तं वस्तु वसु द्रव्यं स्वार्थं ग द्रविणं धनम्-

कस्वर्गं

२५

दश धने । विन्दति पुण्यकृत वित्तम् । धात्वर्थेन वृत्पत्तिः क्रियतेऽमरकीर्तिना । ‘विदलु लाभे ।
विद् । विद्यते स्म मुज्यते (स्म) वित्तम् । निष्ठाकः । ‘भित्तर्णवित्ता’^१ शकलाधमर्णभोगेषु” वित्तमिति

१. कुक् इति शब्द कुरति उच्चारयतीति विग्रह । इगुपधत्वात्कृत्यय । यद्वा कौकने
ऽथ्यादिकमादत्ते कुक् । ‘कुक् आदाने’ । ऋप् । कुरति शब्दायते कुर । कुक् चामौ कुश्चेति
विग्रहः । २ पा० सू० ६।३।१२५ । ३ का० उ० म० ३।४६ । ४ अर्ज्यते पुण्यैर्जुनम् । ५ का०
उ० सू० २।६० । ६ का० उ० म० ३।३१ । ७ अकृतकरूपमित्यर्थ । अथवा प्रशस्त जात जातरूपम् ।
प्रशमाया रूपप्रत्ययः । ८ मुदत्तमुनिवर्णने आ० । ९ हाटकाकरप्रभवत्वाद् वा हाटकम् । १० कला
सुवर्णकलिका धौता गता धावति गच्छति वा यस्मादिति कलाधौतम् । ११. रूप रूपक्रियायाम् । प्यन्त ।
अचा यत् । १२ का० सू० ४।६।११४।

- निपातः । निपातस्येङ् न भवति । “दाहस्य^१ च” तो नो न भवति । वसति सुखमनेन वस्तु । “कमि^२-
मनिजनविबसिहिभ्यश्च” एभ्यस्तुन् प्रत्ययो भवति । वसति सुखमनेन वस्तु । “पय^३सिवसिहिनिमनि-
त्रपीन्दिकन्दिविब्रह्मणिभ्यश्च” एभ्य एकादशभ्य उ प्रत्ययो भवति । द्रूयते गम्यते द्रव्यम् । पर स्यति
अन्ते नयति अथवा पुण्य स्वनति स्वः^४ स्वम् । उभयम् । पुण्यकृतमियति अर्थम् । गुणान् राति ३ः ।
५ “राते^५ङ् ।” स्त्रीत्रा । द्रूयते गम्यते द्रविणम् । दधाति धारयति सारत्वं धनम् । कश गतौ । कशतीत्येव
शील कस्वरम् । “कसिपिसिथासीशस्थाप्रमदा च” वरप्रत्ययः । द्युम्न । सारम् । स्वापतेयम् । शृ-
कथम् । रिक्थम् । हिरण्यम् । विभवः ।

तत्पति प्राहुः कुवेरं चकपिङ्गलम् ॥ ६५ ॥

वैश्रवणं राजराजमुत्तराशापतिं तथा ।

१० अलकानिलयं श्रीदं धनपर्यायदायकम् ॥ ६६ ॥

- सप्त कुबेरे । तस्य पतिः तत्पतिः । त कुवेरं प्राहुर्भवन्ति । वित्तपतिः । वसुपतिः । वस्तुपतिः ।
द्रव्यपतिः । स्वपतिः । अर्थपतिः । रा(ग)पतिः । द्रविणपतिः । धनपतिः । कस्वरपतिः । इत्यादिपर्यायनामानि
कुवेरस्य जातव्यानि । कुत्सितो वेरो देह कुञ्जत्वाद्यस्य स कुवेरः । पिङ्गलं कनेत्रत्वादेकपिङ्गलः । विश्व-
वसोऽपत्यमणि शिवादित्वात् । शादेशो वैश्रवणः । राजा यज्ञाणा राजा राजराजः । उत्तराशायाः पति
१५ उत्तराशापतिः । अलका निलयो गृह यस्य अलकानिलयः । श्रिय दयते श्रीदं । धनपर्यायदायकः ।
धनदायकः । धनदः । वित्तदायकः । वित्तदः । वसुदायकः । वसुदः । द्रव्यदायकः । द्रव्यदः । स्वदायकः ।
स्वदः । रंदायकः । रंदः । द्रविणदायकः । द्रविणदः । कस्वरदायकः । कस्वरदः ।

राष्ट्रं जनपदो निर्गो जनान्तो विषयः स्मृतः ॥

- पञ्च जनपदे । राजते राष्ट्रम् । तथा च सोमनीतौ^१—“पशुधान्यहिरण्यसपदा राजते
२० शोभते इति राष्ट्रम्” । जनी प्रादुर्भावे । जन् । जायते कश्चित्तमन्ये प्रयुज्यते । “धातोश्च हेतौ” इन् प्रत्ययः ।
अस्थोप० दीर्घ । जानि रिति जातम् । “जनिब-योश्च” ह्रस्वः । जनि जातम् । जनयन्ति प्रजा धनमिति
जना । “अच् पचादिभ्यः” अच् प्रत्ययः । “कारितस्थाना०”^२ कारितलोपः । पद गतौ । पद । जनैर्वर्णाश्रम-
लक्षणैः पद्यत गम्यते प्राप्यते आश्रीयत इति जनपदः । “अच् पचादे”^३ अच् प्रत्ययः । जनपद इति जातः ।
तथा च सोमनीतौ—“जनस्य वर्णाश्रमलक्षणस्य द्रव्योत्पत्तेर्वा स्थानार्थमिति जनपदः ।”^४ निर्गम्यते
२५ यस्मिन्निति निर्गो । “निगो”^५ देशेऽधिकरणे इति डप्रत्ययः । देशादन्यत्र निर्गम्यते यस्मिन्निति निर्गमनो
गिरि । जनानामन्तो निकटं जतान्तः । पितृ बन्धने । “धात्वादे”^६ प सः” सि० विपू० । विपिष्वन्ति
अस्मिन्निति विषयः । “पुंसि सजाया”^७ घः “नाम्य०”^८ गुणः । “ए० अय्” तथा । च सोमनीतौ—
“विविधवस्तुप्रदानेन स्वामिनः सद्गानि गजान् नृवाजिनश्च सिनोति बध्नातीति विषयः ।”^९

पूः पुरी नगरं चैव पट्टनं पुटभेदनम् ॥ ६७ ॥

१ का० सू० ४।६।१०२। २ का० उ० सू० १।२।७। ३. का० उ० सू० १।६। ४ “पोऽन्त-
कर्मणि” । वप्रत्ययः । “स्वन शब्दे” डप्रत्ययो वा । ५ का० उ० सू० २।२।७। ६ का० सू० ४।४।५।
७ जन० समु० १।८ का० सू० ३।२।१०। ८ का० सू० ३।४।२।७। १० का० सू० ४।२।५।८। ११ का०
सू० ३।६।४। १२ घत्रये कविधानम्, पुंसि सजाया घः इति कर्मणि कप्रत्ययो घप्रत्ययो वा वक्तव्यः ।
न तु पचाद्यच्, तस्य कर्तरि विधानात् । १३ जन० समु० ५। १४ हे० श० ५।१।१३३। १५. का० सू० ३।८।२।४।
१६ का० सू० ४।५।६। १७. का० सू० ४।५।१। १८ का० सू० १।२।१२। १९. जन० समु० ३।

षट् (पञ्च) नगरे । ५ पालनपूरणयोः । ५ । कै० । पृष्ठातीत्येवशीला पूः । 'किञ्चाजिपृथुर्वि-
भासाम्' क्तिप् । 'उरोष्ठयोपधस्य च' उर् । पुर जातम् । 'नामिनोर्वोर' पूर । वेलोप ४ । सि ।
'व्यञ्जनाच्च' सिलोप । 'रेफसोर्विसर्जनीयः' रस्य विसर्गः । पू । अदन्त । पुर पुरी च । इदन्तोऽपि
पुरि । नगाः सन्त्यत्र, ग्राम्यत्व नश्यत्यत्र वा नगरम्^१ । क्लीबे । नगरी च । नानादिदेशागतानां
वणिजा भाण्डानि पतन्त्यत्र पत्तनम् । पट्टन च । अत्र स्मृतिभेद —

५

“पट्टन शकटैर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेव वा ।
नौभिरेव तु यद्गम्य पत्तनं तत्प्रचक्षते ॥”

पुटा वासा भिद्यन्तेऽत्र पुटभेदनम् । क्लीबे । अधिष्ठानम् । निगमः । द्रुह । स्थानीयम् ।

वक्त्रं लपनमास्यं च वदनं मुखमाननम् ।

प्रणम्ये । वच परिभाषणे । उच्यतेऽनेन वक्त्रम् । 'सर्वधातुभ्यः' घृन् । रप् लप् जल्प् व्यक्ताया १०
वाचि । लप्यतेऽनेन लपनम् । युट् । अच्यतेऽस्मिन्नास्यम् । 'कृत्यल्युटो बहुल' मिति ण्यच् । वद व्यक्ताया
वाचि । उच्यतेऽनेन वदनम् । महति मुह्यति स्तोत्रेण वा मुखम् । खन्यते वा मुखम् । उणादौ । मुख
ट् ख तत्क्रियाम् । चौरादिकत्वादिन् । मुखयति अन्नादिखादनेनेति मुखम् । 'मुखेः' को मुखिश्च ।
मुखे क प्रत्ययो भवति धातोर्मुखिश्च । इकार उच्चारणार्थः । आ अनिति श्वसित्यनेन आननम् । तुण्डम् ।

श्रवणं श्रोत्र श्रवश्चापि कर्णं चैव श्रुति विदुः ॥ ६८ ॥

१५

पञ्च कर्णे । श्रूयतेऽनेन श्रवणम् । श्रूयतेऽनेन श्रोत्रम् । क्लीब । शृणोत्यनेन सान्तम् श्रवः ।
क्लीबे । करोति शब्दावधानं कर्णः^{१३} । कर्णयति वा कर्ण । छिद्र कर्णभेदे । श्रूयतेऽनया श्रुतिः ।
स्त्रियाम् । विदुः कथयन्ति ।

दृगक्षि चक्षुर्नयनं दृष्टिर्नेत्रं विलोचनम् ।

सम नेत्रे । दृश्यतेऽनया दृक् । तालध्यान्तः । अक्ष व्याप्तौ । अश्नते व्याप्त्यनेनात्मा घटादीन- २०
र्थानिति अक्षि । 'अशिकुपिभ्या सिक्' । चण्ट हृदयाकृत सान्तम् चक्षुः । 'अपृथिविचक्षिजीव-
तनिर्घनभ्य उम्' । नीयते चित्त विषयेषु अनेन नयनम् । दृश्यते प्रकटार्थोऽनया दृष्टि । नीयतेऽनेन
दृश्य नेत्रम् । उभयम् । विशेषेण लोच्यते अवलोक्यतेऽनेन विलोचनम् । अन्तम् । तात्का । ज्योति ।

कटाक्षं केकरापाङ्गं विभ्रमस्तस्य वैकृतम् ॥ ६९ ॥

तस्य नेत्रस्य वकृते षट् (पञ्च) । कटयतीति कटाक्षम् । उभयम् । के (शिरमि) २५

१ का० सू० ४।४।५७। २ का० सू० ३।५।४३ । ऋकारस्योत्त्वम् । ३ का० सू० ३।८।१। इति
दीर्घ । ४ का० सू० ४।१।३४। ५ का० सू० २।१।४६। ६ का० सू० २।३।६३। ७ 'नगपासु-
पाण्डुभ्यश्चेति' पा० सू० ५।२।१०७। वार्तिकेन मत्वर्थोयो रः । अथवा नश् धातोर्लोणादिकोऽरप्रत्ययः
शस्य गत्वे च । ८ का० उ० सू० ४।३१। ९ आस्यन्दतेऽग्लादिना प्रसवत्यत्रेति । १० 'कृत्यल्युटोऽ-
न्यत्रापि' इति का० सूत्रम् । ४।५।९२। टीकोक्तयथाश्रुतसूत्रन्तु पाणिनीयम् ३।३।९३। ११ खन्यतेऽ-
वदायते फलादिकमनेनेत्यपि । 'दिन्वनेमुट् चोदातः' उ० अच् स च डित् मुडागमश्चेत्यन्यत्र । 'मुदि-
तानि खानोन्द्रियाण्यनेत्येके' इति क्षीर० स्वा० । १२ का० उ० सू० ६।६५। १३ टीकोक्तविग्रहे करोतेरोणा-
दिको णप्रत्ययः । कीर्यते शब्दग्रहणाय क्षिप्यते, कीर्यते शब्दोऽस्मिन्निति वा, किरति शरीरे मुखमिति वा ।
१४ का० उ० सू० ६।५७। १५ का० उ० सू० २।४६। १६ कटेऽतिशयितेऽक्षिणी यत्र, कट गण्डमक्षति
व्यापनाति वेति रामाश्रम । कटे आक्षिपतीति क्षीरस्वा० ।

किरति विक्षेप क्षिपतीति (कर्षतीति) केकर । न पाति कामिनमपाङ्ग^१ । उभयम् । विभ्रमण विभ्रम । विकृतस्य भावो वैकृतम् ।

दन्तवासोऽधरोऽप्योष्ठे वर्णितो दशनच्छदः ।

चत्वारश्चतुर्थे ओष्ठे । दन्तानां वासो दन्तवासः । अत्रति शोभाधरः । ‘अधो’ भवोऽधरो
५ वा । ओष्ठाभ्यां सहितावधरो वा । अधरोऽप्योष्ठमात्रे वर्तते । उपति दहति सपत्नीद्वयमोष्ठः । उप्यते
तीक्ष्णाहारेणोष्ठो वा । वर्णित कथित । दशनस्य छदो दशनच्छदः ।

शिरोधरो गलो ग्रीवा कण्ठश्च धमनी धमः ॥ १०० ॥

पट्ट गले । शिरो धरति शिरोधर । शिरोधरा च । गलति भोजन गल । गृणाति गिरति वा
ग्रीवा । उष्णादौ गृण्यै गृणातीति ग्रीवा । ‘शर्बजिह्वाग्रीवा’ एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । कण्ठि
१० कण्ठः । ‘कण्ठः’ अस्मादृप्रत्ययो भवति । धमः संत्रो धातु । धम्यतेऽनया धमनिः । इदन्त ।
स्त्रियामी । धमनी । धमति धमः । मन्या । कन्धरा ।

दोर्दोषा च भुजो बाहुः-

चत्वारो बाह्वौ । दम्यते विनीयते परोऽनेन दोः । सान्तम् । ‘‘दमेडांस्’’ । दूपयति दृष्ट या इति
दोषा । आदन्त । अभ्ययः । न व्ययते । मुञ्च्यतेऽनेन भुज । निपातनात् चजोः कगत्वं न भवति । नामिन
१५ इति गुणश्च न भवति । भुज्युर्जो^१ पाणिरोगयो^२ इत्यमित्रार्थे निपातनात् । भुजा च । वहत्यनेनेति
बाहुः । ‘‘वह्निस्वदि’’ (रहि) तलि पशिम्य उण् । प्रकोष्ठ ।

पाणिर्हस्तः करस्तथा ।

त्रयो हस्ते । पणायते व्यवहरत्यनेन पाणिः । ‘‘अजिज्ज्यतिरशिपणिभ्य एभ्य इत्’’
भवति । हस्ते हस्तः । ‘‘हस्तेस्त । कीर्यते क्षिप्यतेऽनेन करः । शयः । शम^३ इत्यन्यः । पञ्चशाखः ।

२०

प्राहुर्बाहुशिरोऽमश्च-

बाहुशिरो अस इति सज्ञा प्राहुः कथयन्ति । अस्यते भागेशानः^४ । स्कन्धश्च ।

हस्तशाखा कराङ्गुलिः ॥ १०१ ॥

द्वौ अङ्गुल्याम् । हस्तस्य शाखा इव हस्तशाखा । आकुञ्चनादिकर्माणि अङ्गति गच्छति
अङ्गुलम् । अङ्गुलीवे । अङ्गुली । करस्याङ्गुलिः^{१३} कराङ्गुलिः । एवमङ्गुरम् । अङ्गुरी ।

२५

नासा घ्राणम्-

१ अपाङ्गतीत्यपाङ्ग । ‘‘अगि गतौ’’ । अच् । २ ‘‘अधो भव’’ इत्यारभ्य ‘‘वर्तते’’ इत्यन्त क्षीर
स्वामिभाष्यमत्रोद्धतम् । तद्व्याख्ये ‘‘ओष्ठाधरो तु’’ इत्यमरोक्तमूलपदस्य व्याख्यारूपम् । ‘‘ओष्ठाभ्यां
सहितावधरो’’ इति वाक्यमन्धानुसरणेनात्रोद्धृतमप्रस्तुतमिति विवेकः । ३ दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेनेति तदाशयः ।
पु ति सज्ञाया घः । ४ का० उ० सू० २।२। ५ का० उ० सू० १।४। ६ का० उ० सू० २।३। ७ का०
सू० ४।६। ८ का० उ० सू० १।३ । ९ का० उ० सू० ८।६। १० का० उ० सू० ८।२। ११ ‘‘मृगुवा-
हस्यमिदमिलूपस्यस्तः’’ इति पूण सूत्रम् । १२ अत्र प्रमाणम्—‘‘पाणिः शयः शमो हस्तः’’ इत्यमरमाला ।
‘‘पञ्चशाखः शयः शमः’’ इति अभि० चि० । १२ अस्यते समाहन्यते इत्यर्थः । ‘‘अस समाधाते’’ । अस
धातुश्चुरादिः । यद्वा ‘‘अम गतौ’’ अमति अम्यते वा असः । ओष्ठादिक सन्प्रत्ययः । १३ अङ्गुल इत्यत्र
‘‘अङ्गुलः’’ का० उ० सू० ६।४। इत्यङ्गुधातोऽलप्रत्ययः । अङ्गुलिशब्दे तु ‘‘अङ्गुयतिभ्यामुलीयि’’ का०
उ० ३।३०। इत्युलिप्रत्ययः । स्त्रियामी । अङ्गुली इत्यपि ।

द्वौ नासिकायाम् । नासते शब्दायते नास्यतेऽनया वा नासा^१ । नेस्ना^२ च । जिघ्रत्यनेन घ्राणम् । क्लीबे । सिद्धनी । नासिका । घोणा ।

उगे वक्षः

द्वौ भुजमव्ये । अयते गम्यते उर^३ । “अतैरुश्च” अस्मादसुनप्रत्ययो भवति अस्य उरादेशो भवति । श्रु गतौ । अस्य धातो प्रयोगः । वक्ति वार्णी वक्षः । “वचेः” सोऽन्तश्च^४ अस्मादसुन प्रत्ययो भवति सोऽन्तः । अकार उच्चारणार्थः । “चवर्गस्य किः” । “^५निमित्तादि” त्यादिना पत्व च ।

कुक्षिः स्याज्जठरोदरम् ।

त्रयो जठरे । कुपति (कुष्णाति) निष्कर्पत्याहार कुक्षिः^६ । पुमि । कुक्षम् । क्लीबे । जमति जठरम् । अथवा जठ सौत्रोऽय धातु । उणादौ निपातोऽस्ति । उनत्ति क्लेदयत्याहारमुदरम् । एते उभयम् । पिचण्डम् । तुन्दम् ।

१०

स्तनः पयोधरकुचौ वक्षोज इति वर्णितः ॥ १०२ ॥

चत्वारः कुक्षौ । स्तन्यते बालैः “स्तनः” । पयो धरतीति पयोधर^७ । कोचते स्त्री मृग-मानेऽत्र, कुच्यते मर्दनेन आकुलीक्रियते वा कुचः । कूचश्च । वक्ष्मि जातो वक्षोज । उरसिजः । वक्षोरुहः ।

कटिनितम्बं श्रोणी च जघनं-

१५

चत्वारः कट्याम् । कटयते वस्त्रैराच्छायते कटि । कटी । कटः । कटम् । नितरामतिशयेन तम्बनं काङ्क्षते^८ नितम्बः । आश्रीयते कामिभिः श्रोणः । नदादित्वादिभः श्रोणी । उदन्तोऽपि श्रोणिः^९ । स्त्रियामी । श्रोणी । इन्ति चित्तमिति जघनम् । “^{१०}हनेर्जघश्च” । चकारात् काञ्चीपदम् । कलत्रम् । कडत्रम् । जघनम् । ककुब्जती । आरोहः । कटीरम् । त्रिकस्थानकम् । स्थानपदभावेऽपि त्रिकम् । फलक च ।

जानु जहु च ।

२०

द्वौ जानो । गन्तु जायते जानुः^{११} । “^{१२}कृवापाजिमिस्वदिसा^{१३}यशूहसनिजनिचरिचटिभ्य उण्” । जहानि^{१४} जहुः । शृष्टीवान् । जह्वा^{१५} ।

चलनं चरणं पादं क्रमोऽहिश्च पद विदुः ॥ १०३ ॥

१ ‘णाम्’ शब्दे । नाम् धातु । अच् घञ् वा । २ नेदमतोऽन्यत्र समुपलब्धम् । ३ अयते गम्यते क्लेनेति शेष । अथवा उरम् बलार्थः कण्डवादि । उरस्यति बलमाधत्ते उर । क्विप् । ४ का० उ० मू० ४।६।७।५ का०उ०मू० ४।६२। ६ का०सू० ३।६।५।५। “चवर्गस्य किरसवर्णे” । इति पूर्ण सूत्रम् । ७ का०सू० ३।८।२६। “निमित्तात्प्रत्ययविकारागमस्थ स पत्वम्” इति पूर्ण सूत्रम् । ८ “कुष निष्कर्पे” “अशिकुपिभ्या सिक” का०उ०सू० ६।५।७। ९ “स्तन गदी शब्दे” स्तनति कथयति यौवनोदयम् । स्तन्यते वर्णयते कामुकैर्वा स्तन इत्यन्यत्र । १० धरतीति धर । पचाद्यच् । पयसो धरः पयोधर । इति बोध्यम् । टीकोक्तविग्रहे तु कर्मण्यणि पयोधार इति स्यात् । “११ तम्ब गतौ” नितम्बति गच्छतीति, निभृत तम्बते कामुकैः निभृत ताम्यति सुरतसम्मर्दाद्वा नितम्ब इति रामाश्रम । १२ श्रूयते किङ्किणिध्वनिरत्र “श्रु श्रवणे” श्रोणादिको णि । टति हेमचन्द्र । “श्रोणृ सङ्घाते” श्रोणति विविधशरीरावयवैः सङ्घातो भवतीति श्रोणि । “सर्वधातुभ्य इन्” इति रामाश्रम । १३ का० उ० म० २।३।७। १४ जायतेऽनेनाकुञ्चनादि जानुरिति हेमचन्द्रः । १५ का०उ०मू० १।१। १६ नात्र कोपान्तरप्रमाणमुपलब्धम् । १७ यद्यपि जानोरघ आगुरुत्वात् जह्वा, जह्वाजघनयोः सन्धिर्जानुरिति भेदः । तथापि जह्वासामीप्याद् भेदाविवक्षया जानु-पर्यायो जह्वेत्युक्तम् । तत्र भेदस्तु न विस्मय्यते ।

पङ्क चरणे । चाल्यते **चलनम्**^१ । चरत्यनेन **चरणम्** । पद्यतेऽनेन **पादः** । षञ् । दान्तोऽपि पादः । क्रमु पादविक्षेपे । क्राम्यत्यनेनेति **क्रमः** । 'अहि गतौ'^२ । इदनुबन्धत्वात् । गमः अहृत्यनेनेत्यहिः । "अंहरेरिः" अहंघातोरित्ययो भवति । अङ्गिप्रश्नश्च । पद्यते **पदम्** । क्लीबे ।

शिरो मूर्धोत्तिमाङ्गं कम्-

- ५ चत्वारो मस्तके । १२ हिंसायाम् । शीर्यते हिंस्यते **शिरः** । "उपिरजिशृभ्यो यण्वत्" एभ्योऽमन् प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । तेनागुणः । अनुपङ्गलोपः । 'मूर्ध्ना मोहसमच्छायाया' । मूर्ध्न्त्य-चाहता । प्राणिनो **मूर्धा** । *गृपादय -- "गृषन् अर्यमन्मज्जन्नुत्तन्वन्स्त्रीहन्मातरिश्वन्कुलेदन्स्नेहन्-मूर्धन्युषन्" एते कस्यन्ता निपात्यन्ते । उत्तम च तद् अङ्गम् **उत्तमाङ्गम्** । कै गै शब्दे । कायतीति **कम्** । शीर्षम् । मस्तकम् । 'कन्याङ्ग' च नानार्थे ।

प्रारभ्यं प्रेरितेरितम् ।

- १० त्रयः प्रेरणो । प्रारभ्यते **प्रारभ्यम्** । "शक्तिसहिपवर्गान्ताच्च" यः प्रत्ययः । ईर गतो कम्पने च । प्रेर्यते **प्रेरितम्** । ईरितम् । "नपु सके भावे क" ।
सांप्रत सरस्वतीनामानि प्रारभ्यन्ते आचार्यश्रीमदमरक्रीतिना-

वाग्वचो वचनं वाणी भारती गीः सरस्वती ॥ १०४ ॥

- १५ म वाण्याम् । उच्यते **वाक्** । "वचिप्रच्छिश्चद्रुप्रज्वा विच् दीर्घश्च" एभ्यः णिप् प्रत्ययो भवति दीर्घश्चस्वरभ्येपाम् । वक्ति **वच्** । "सर्वधातुभ्योऽमन्" । उच्यते **वचनम्** । वाण्यने वाणि । स्त्रियामीः । **वाणी** । विभर्ति जगद् धारयति, सरतो ब्रह्मा तस्येव **भारती** । तथा च—
"आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्तौ ताते च भरतराजस्य ।
ब्रह्मेति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥"
२० गीर्यते उच्चार्यते रान्त **गी** । सर प्रसरणमस्तस्या **सरस्वतीः** । ब्राह्मी । तथाहि—
"गौर्गोः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः ।
दुग्धप्रयुक्ता पुनर्गो वं प्रयोक्तुः संव शसति ॥

सिंहद्विपघने गर्जः-

सिंहे कण्ठीगवे, द्विपे गजे, घने मेघे च **गर्जः**^१ शब्द कथ्यते । गर्जनं गज ।

- २५ **हेषाऽश्वे**

अश्वाना शब्दे **हेषा** । हेषणम् । हेषा हेषा च ।

वृंहितं गजे ।

गजशब्दे वृंहितम् । वर्हणम् ।

स्फीकृतं धेनुकलभे-

१ चलत्यनेनेति चलनमिति सुवचः । २ अत्राभिधानचिन्तामणिः, प्रमाणम् — 'चरण नमणः पादः पदोऽहिश्चलन क्रमः' । इति । ३।२८०। ३ का० उ० सू० ४।५९। ४ का० उ० सू० २।५। ५ अत्र प्रमाणान्तराभावः । वराङ्ग कमनीयाङ्गमिति वा स्यात् । ६ का० सू० ४।२।११। ७ का० उ० सू० २।२३। ८ उच्यते वच इति कर्मणि विग्रहो युक्तः । ९ का० उ० सू० ४।५६। १० "वण शब्दे" चुरादि । ११ सिंहगजमेघध्वनौ गर्जशब्दः प्रयुज्यते । एव वक्ष्यमाणतत्तद्वर्णनौ सर्वत्र योज्यम् ।

धेनुकलमे शिशुवत्से स्फीकृत^१ स्फीशब्द कथ्यते ।

स्तमितं जलदे तथा ॥ १०५ ॥

जलदे मेवे मेधाना शब्दे स्तनित कथ्यते । स्तन्यते स्तनितम् ।

स्यन्दने चीत्कृतं मन्त्रे भटे च हुङ्कृतं तथा ।

स्यन्दने रथशब्दे चीत्कृतं कथ्यते । मन्त्रे भटे च हुशब्दः कथ्यते । हु मन्त्रे, हु परिप्रत्ये ५
हु सन्व सुहु ते भयादो राक्षसोऽयम् । कुत्सने हु निर्लज्जा । अनिच्छायाम हु हु मुख ।

मीत्कृत मणितं कामे—

कामे कन्दर्पभोगास्तावशब्दे मीत्कृत मणितम् । मीढियते मीत्कृतम् । मण्यते मणितम् ।

खन्कृतं शृङ्खलायुधे ॥ १०६ ॥

शृङ्खलायुधे खन्कृतम् । मुगमम् ।

१०

मञ्जीरकं तुलाकोटिर्न पुर—

त्रयः स्त्रीणां चरणाभरणे । मञ्जि मैत्र । मञ्ज्याकर्षति चित्त मञ्जीरम् । अथवा मञ्जु मञ्जु-
नीरयति मञ्जीरम् । तुलाकृतेर्ब्रह्मया कोटिरिव तुलाकोटिः^२ । स्त्रीमति नौतीति नूपुरम्^३ । शिञ्जिना ।
पादकटकः । हसकम् । पदाद्गदम् । कलापो नानाये ।

तत्र संसृतम् ।

१५

तत्र तस्मिन् मञ्जीरके तच्छब्दे ससृत कथ्यते ।

झाङ्कृतं चाथ मरुति—

मरुति वाया तच्छब्दे झाङ्कृतं कथ्यते ।

क्रेङ्कृतं क्रौञ्चहंसयोः ॥ १०७ ॥

क्रौञ्चश्च हंसश्च क्रौञ्चहंसो तयो क्रौञ्चहंसयोः क्रेकृतशब्दो मतः कथित । तथा^४ चामरमिह — २०

^१ निपादपद्मगान्धारपङ्कजमध्यमधैवता ।

पञ्चमश्चेत्यर्मा सम तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥

तथा च भरतनाटके —

^२ “पङ्कज मयूरा ब्रुवते गावस्तृपभभाषिण ।

आजाविक तु गान्धार क्रौञ्चः कणति मध्यमम् ॥

२५

पुष्पसाधारणे काले पिकः कूजति पञ्चमम् ।

धैवत हेषते बाजी निपाद वृ हते गजः ॥

नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादन्ताश्च सम्पृशन् ।

पङ्कज सजायते यस्मात्तस्मात्पङ्कज इति स्मृत ॥”

१ नवप्रसूता गो धेनु त्रिशदब्दो हस्तिशावक कलभस्तथो शब्दः, स्फीकृतमुच्यते इति शब्दार्थः । टीकास्वारम्यन्तु गोवत्सशब्द स्फीकृतमित्येव प्रतिभाति । अत्र कोशान्तरप्रमाणाभावात्स्वि-
प्रयोगादर्शनाच्च मूलशब्दार्थाऽनुसरणमेव शरणम् । २ तुला तुलया वा कीटयति । कुट प्रतापने चुरादि ।
अच इ । यद्वा तुलाकार कीटिप्रमस्येति रामाश्रमः । ३ नुवन नूयते वा न । ए स्तवने । क्विप् ।
नुवि पुरति नूपुरम् । पुर अग्रगमने । इगुपवेति क । ४ शब्दभेदप्रसङ्गाद् ग्रन्थान्तरोक्तमन्यशब्दभेद-
स्वर्गभेद च ह । ५ अम० को० १।३।१ । ६ ‘पङ्कज’ इत्यारभ्य “इति स्मृत” इत्यन्त ‘तथा च
भरतनाटके’ इत्येव टीकायामुपन्यस्तः पाठः “निपादपद्मगान्धार” — इति स्त्रीस्वामिभाष्येऽमरेऽविकल
उपलभ्यते ।

प्रतीतं संस्तुतं लब्धं दृष्टं परिचितं स्मृतम् ।

५८ स्मृते । प्रतीयते प्रतीतम् । षुञ् स्तुतौ । षु । “धात्वादेः षः सः ।” स्तु सम्पूर्वः । सम्यक्-
प्रकारेण स्तूयते स्म संस्तुतम् । लभ्यते स्म लब्धम् । परिचोयते स्म परिचितम् । स्मर्यते स्म स्मृतम् ।

संस्थितं दशमीस्थं च परासुं च मृतं विदुः ॥ १०८ ॥

५ चत्वारो मृते । सतिष्ठते स्म संस्थितः । सम्पूर्वकस्तिष्ठति । दशमीं तिष्ठतीति दश-
मीस्थः । तथा च—

१० “प्रथमे जायते चिन्ता द्वितीये द्रष्टुमिच्छति ।
तृतीये दीर्घनिश्वासश्चतुर्थे भजते ज्वरम् ॥
पञ्चमे दह्यते गात्रं षष्ठे भुक्तं न रोचते ।
सप्तमे स्यान्महामूर्च्छा उन्मत्तत्वमथाष्टमे ॥
नवमे प्राणसन्देहो दशमे मुच्यते सुभिः ।
एतैर्वर्गैः समाक्रान्तो जीवस्तत्त्व न पश्यति ॥”

दशाना पूरणी दशमी तत्र तिष्ठतीति वा दशमीस्थः । परागता असवोऽस्य परासुः । म्रियते स्म
मृतं विदुः कथयन्ति ।

१५

खेदो द्वेषोऽप्यमर्षश्च रुट्कोपक्रोधमन्यवः ।

मम क्रोधे । खिद परिघाते । तुदादौ खिन्दति । दैन्ये रुधादिपाठात् ग्विन्ते (तत स्तेदन)
‘खेदः । भावे घञ् प्रत्ययः । द्विप् अप्रीती अदादौ । द्वेषण द्वेषः । मृप तितित्तायाम् । चुरादौ । शक
मृप क्षमायाम् । दिवादो विभाषित । मृप सहने वार्श परस्मैपदी । अमर्षणम् अमर्षः । कुप क्रुध रुष रोपे ।
रोपण रुट् । सम्पदादित्वाद्भवे क्विप् । कोपन कोप । क्रोधन क्रोध । मन जाने । मन्यते मन्युः ।
२० “३जनिमनिदमिभ्यो यु” । एभ्यो युप्रत्ययो भवति । उणादित्वाद्योरनादेशो न भवति ।

हर्षः प्रमोदः प्रमदो मुक्तोपानन्दमुत्सवः ॥ १०९ ॥

मम हर्षे । हर्षण हर्ष । प्रहर्षश्च । प्रमोदन प्रमोद । मदी हर्षे । प्रमदन प्रमदः । “‘मदेः
प्रसमोर्हर्षे’” प्रसमोरुपपदयोर्मदेरल् भवति हर्षार्थः । मोदन मुद् दान्त छियाम् । तुप तुष्टौ । तोषण
तोप । आनन्दनम् आनन्दः । पु मि । ट्नादि समुद्धा । उत्सवनम् उत्सव । प्रीतिः । उत्कर्ष । उद्धवः” ।

२५

कृपाऽनुकम्पानुक्रोशोऽहन्तोक्तिः करुणा दया ।

पठ दयायाम् । कृप कृपायाम् । कृपण कृपा । “‘पानुबन्धमिदादिभ्योऽङ्’” इत्यङ् । “कृपे
सम्प्रसारणम्” इति परसूत्रेणाङ् सम्प्रसारणं च । स्वमते कृप कृपायाम् इति ज्ञापकात् सम्प्रसारणम् ।
“स्त्रियामादा ।” अनुकम्पनमनुकम्पा । अनुक्रोशन्त्यनेन अनुक्रोशः । पुसि । न हन्तोक्तिः अहन्तोक्तिः ।
करोति विपादं चित्तं किरति वा करुणा । उणादौ डुकृञ् करणे । क्रियते करुणा । “‘ऋकृतृवृद्मिदाय-

१ द्वेषपर्याये खेदपाठश्चिन्तनीयः । खेदपर्यायस्तु “शोकं शुक् शोचनं खेदः” इति
अभि० चि० । क्रोधपर्यायस्तु—“कोपक्रोधाऽमर्षरोषप्रतिषा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ” इत्यमरः । २ मन्यते त्वा-
व्यत्वेनेति शेषः । ३ का० उ० सू० ४।१। ४ का० सू० ४।५। ४। ५ उद्धवशब्दस्योत्सवार्थे प्रमाणम्—
‘उद्धवो यादवभिर्द महं च कतुपावके’ । इति मेदि० को० वा० व० ३२ श्लो० । ६ का० सू०
४।५। ८। ७ “कृपेः सम्प्रसारणं च” पा० गण सू० ३।३। १०। ८ कातन्त्रमतमत्र स्वमतम् । पाणिन्यादि-
सूत्र परमतम् । ९ का० उ० सू० २।६० ।

र्जिभ्य उनः” एभ्य उनः प्रत्ययो भवति । दयन दया । दय दानगतिहिंसादानेषु । भिदाद्यङ् ।

शेमुषी धिषणा प्रज्ञा मनीषा धीस्तथाऽशयः ॥ ११० ॥

पङ् बुद्धौ । शे इत्यव्ययम् । मोह । न मुष्णाति शमयति इति शेमुषी^१ । धुष्णोत्पन्नया धिषणा^२ । प्रज्ञान प्रज्ञा^३ । मनुते जानात्यनया मनीषा । मनस ईषा मनीषा वा । “इललाङ्गलयो-
रीषे मनसश्च” इत्यनेन अन्त्यस्वगदेलोपः । अत्र मलोपश्च । चकाराधिकाराहोकोपचाराद्वा सलोपः । ५
स्मृ ध्यै चिन्तायाम् । ध्यान धीः । सम्पदादित्वाद्वावे क्रिप्^६ । ‘वायो सम्प्रसारणम्’^७ अनेनैव सम्प्रसारण
दीर्घत्व च । प्र० सि । “रेकमोर्विसर्जनीय” । आशेने तिष्ठति सर्वमन्नाशयः । तथा-प्रेक्षा । प्रतिभा ।
बुद्धिः । मति । मेधा । सख्या । सवित्तिः । उल्लङ्घि ।

प्राज्ञमेधाविनौ विद्वानभिरूपो विचक्षणः ।

पण्डितः सूरिाचार्यो वाग्मी नैयायिकः स्मृत ॥ १११ ॥

१०

दश चिदुपि । प्रजानाति प्रज्ञ । प्रज्ञादित्वाद्वा प्राज्ञः । मेधाभ्यस्य मेधावी । माया-
मेधात्मजो विन् वायिकागत्मवै एवमे विमपया विमापिता । शेपेभ्यो मनुष्प्येने । मतिमान् । बुद्धिमान् ।
विद जाने । विद । वेत्ति जानानीति विद्वान् ।^१ वर्तमानं श० शतृप् । “अन्वि०” अदादि^२ । “वेत्ते
३ शतुर्वसु” । शतृप् स्थाने वसु । तदादेशात्तद्वद्भवन्ति इति वचनात् वसो शतृव्वावेन सविधातु-
न्वात् ‘अर्त्तोण्’^४ ध्येसैकम्बरातामिड्वमौ अनेनैकस्वरत्वात्प्राप्त इत् न भवति । विद्वन् सजातम् । ५
“मिः । “सान्तमहतोनोंपधाया” दीर्घ । विदुपोऽपि । अभिगत रूप येनाभिरूपः । रूप विद्या ।

“कोकिलानां स्वरो रूप नारीरूप पतिव्रता ।

विद्या रूप कुरूपाणां क्षमा रूप तपस्विनाम् ॥”

चक्ष धातुर्विपूर्वः । विविध चष्टे विचक्षणः । नन्दादेयु^१ । योगन । १२५० एत्वम् ।
विचक्षणे विद्वान् इत्यनेन विचक्षण इति निपात । निपातस्य फल ख्यादशो न भवति । पण्डा बुद्धि । २०
पण्डा सजाताऽस्थिति पण्डितः । “तारकितादिदर्शनात्सजातेऽयं इतच्” । “द्वर्णावर्ण०” आकार-
लोपः । मि । रेक । पृष्ट प्राणिगर्भविमोचने । सूते बुद्धि सूरिः । “सूखदिभ्य क्रि” एभ्य क्रिप्रत्य-
यो भवति । को यण्वदर्धः । २ आचर्यते आचार्य । “चरेराटि चागुरौ” । तथा चोक्तम्— इन्द्र-
नन्दिनीतिशास्त्रे -

“पञ्चाचाररतो नित्य मूलाचारविदग्रणीः ।

२५

चतुर्वर्णम्य सङ्घस्य य स आचार्य इष्यते ॥”

१ शेते इति शेमोह । विच् । तमुष्णातीति, मूलविभुजादित्वात्क । गारादिङाप ।
शमे क्रमौ एत्वाऽन्वासलोपे उगितश्चेति ङोपि शशामेति शेमुषीति क्षी० स्वा० । २ ‘धिप शब्दे’ ।
देधेष्टीति । क्षी० स्वा० । ३ प्रज्ञायनेऽनयेत्यन्यत्र । ४ का० रू० पूर्वा० २८ स० । ५ व्यायतेऽनया
धीस्त्यन्यत्र । ६ ‘सम्पदादिभ्य क्रिप्’ का० रू० उ० ८०५ स० । का० रू० मा० ६५८ सू० ।
८ का० पू० २३।६३ । ९ का० सू० २।६।१५ । अत्र तुर्गवृत्ति । १० ‘वर्तमाने शन्तृटानशाव-
प्रथमैकाधिकरणामन्त्रितयो’ । का० सू० ४।४।२। ११ “अन्विकरणं वर्तरि” का० सू० ३।२।-
३। १० “अदादेलुग्विकरणस्य” का० सू० ३।४।२। १३ ‘शन्तुर्वसु’ । का० सू० ४।४।४।
१४ का० सू० ४।६।७६ । १५ का० सू० २।२।१८। १६ का० सू० २।४।४८। १७ का० रू० पू०
५०८ । १८ का० सू० २।६।४४। १९ का० उ० सू० ३।५३ । २० का० सू० ४।२।१४ । २१ नीतिसा०
१५ श्लो० ।

प्रशस्ता वागस्यस्य **वाग्मी** । न्याये विचारे नियुक्तो **नैयायिकः** । धीर । लब्धवर्ण । विपश्चित् । वृद्ध । आमरूपः । सन् । मनीषी । ज्ञ । दोषज्ञ । कोषिदः । प्रबुद्ध । सुधीः । कृती । कृष्टि । कवि । व्यक्तः । विशारदः । सख्यावान् । मतिमान् ।

पारिषद्यो बुध सभ्यः सदः संसत्सभोचितः ।

- ५ पट्टसमापुरुषे । परिषदि सभाया भव **पारिषद्य** । यण् । बुध अवगमने । बोधतीति **बुधः** । सभाया साधु **सभ्य** । कुशलो योग्यो हितश्च साधुरुच्यते । सदसि उचितो योग्य **सदुचित** । **संसदुचितः, सभोचितः** । सभासद् । सभास्तारः । सामाजिकः ।

परिपत्सभाऽस्थानपती—

- त्रय सभायाम् । परिषीदन्त्यस्या **परिषद्** । सह भान्त्यस्या सभा । आसमन्तात्स्थीयते ८
१० स्मिन् **आस्थानम्** ।

(‘अधिपति राजा’) **पति** —आस्थान सभा इत्यादिपर्यायनामतोऽधिपति **पति** रित्यादिपर्याय शब्देषु सत्सु राज्ञो नामानि भवन्ति । परिषदधिपति । परिपत्पति । सभाधिपति । सभापति । आस्थानाधिपति । आस्थानपति ।

राजसूयो नृपक्रतुः ॥ ११२ ॥

- १५ मण्डलेश्वरप्रजाया (प्रजाजे) द्वा । पुन् **अभिपद्ये** । पु । ‘धात्वा०’ स । राजन्पूर्वं राजा सोतव्यो राजा सूयते वा यस्मिन्निति **राजसूय** । ‘राजसूयश्च’ । ध्वण्यन्ययान्तो निरात । नृपाणां राजा क्रतु **नृपक्रतु** । तथा च ‘स्मृतौ—

“गोसवे मुरभि हन्याद्राजसूये तु भूभुजम् ।
अश्वमेधे हय हन्यात् पौण्डरीके च दन्तिनम् ॥”

विष्टं मल्लिकापीठमासन्दीमामन विन्दु ।

- २० पडासने । नृन् आच्छादने । विपूर्व । विस्तरण **विष्टः** । ‘स्वर^६वृहगमिग्रहामल्’ । अल् । नाभ्यन्तगुण । ‘वागृणातेः’ । सजाया सम्य पत्वम् । “तवर्गस्य पटवर्गाद्वर्गः” । मल्लयते धार्यते **मल्लिका** । पेठतीति **पीठम्** । ‘पृषोदरादिवाहीर्घ’ । आ समन्तात्सीदति तिष्ठत्यस्या**मासन्दी** । आस्यते

१ अत्र प्रमाणम् अभि० चि० ३।५। ‘विद्वान् सुधी’ कविविचक्षणलब्धवर्णा जः प्रामरूप-
कृतिवृष्ट्यभिरुधीरा । मेधाविकोविदविशारदसूरिदोपज्ञा प्राजमण्डितमनीषिसुप्रबुद्धा ॥ व्यक्तो
विपश्चित्सदुच्यवान् सन्” इति । २ “अधिपति राजा” इति प्रतीकमाश्रित्य व्याख्यादर्शनादय मूल-
पञ्चाश इति, न भ्रमितव्यम् । पूर्वापरपादयोर्मध्ये त-समावेशामभवात् पटवर्गत्वेन स्वतन्त्रपादत्वा
भावात् अत्र राजवर्णनस्याप्रसङ्गाच्च । एव च सभाप्रसङ्गेन तदधिपते राजव्यपदेशार्थ-टीकाकर्तुवि-
शेषवचनमित्यव द्युक्तं भवति । ३ का० सू० ३।८।२। ४ का० सू० ४।२।४। ५ ‘स्मृतौ’ इत्युक्तम् ।
रमविकल श्लोको यशस्विलक आ० ७ क० ३० श्लो० ३ उपलभ्यते । ६ का० सू० ४।५।४।
७ का० सू० ३।८।५। ८ शा० सू० २।२।१०२। ९ ‘आस उपवेशने’ । अन्दाद्यः पा० उ० सू०
४।६। इति द्रष्टव्यो भवति, अमागमश्चित् च । टिप्पण्डात् । तथा चोक्तम्—“स्याद् वेदासनमासन्दी”
इति ३।२।८। अभि० चि० ।

उपविश्यते ऽस्मिन्नासनम् । “कृत्ययुटोऽन्यत्रापि च” युट । चिदुः कथयन्ति ।

विष्टपं भुवनं लोको जगत्—

चत्वारो जगति । “विष्टपन्त्यत्र विष्टपम्” । भूतानि भवन्त्यस्माद्भुवनम् । लोक्यते लोक । गच्छतीत्येवशील जगत् । “युतिगमोर्द्वे च” क्विप् । गमो द्विर्वचनम् । अन्यासमकारलोप । “कवर्गस्य चवर्गः” गस्य ज । ज गम् जातम् । “पञ्चमो” । दीर्घ । “यममनतनगमा कौ” पञ्चमलोप । ५
आन् अत् । “धातोस्तोऽन्तः पानुवन्धे” तोऽन्तः । वेलाप । सि । नपु मकम् ।

तस्य पतिर्जिनः ॥ ११३ ॥

तस्य भुवनस्य पतिर्जिनः कथ्यते । अनेकभवगहनव्यसनप्रापणहतून् कर्मारतीन् जयतीति जिनः । “इण्णशजिक्विभ्यो नक्” । विष्टपपतिः । लोकपतिः । जगत्पतिः । इत्यादीनि जिनस्य पर्याय-
नामानिज्ञातव्यानि । १८

वर्षायान् वृषभो ज्यायान् पुरुराद्य प्रजापतिः ।

ऐश्वराकुः (कः) काश्यपो ब्रह्मा गौतमो नाभिजोऽग्रजः ॥११४॥

द्वादश वृषभे । अतिशयेन वृद्धो वर्षायान् । “प्रियस्थिरन्निरोस्वबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घ-
वृन्दारकाणां प्रत्यस्त्वर्वाहिगर्वविचित्रवृद्धाविवृन्दा” । वृषण अहिमालद्रणोपेतधर्मेण भातीति “वृषभ ।
“अपिचिन्म्या यणवत्” । आभ्यामभः प्रत्ययो भवति स च यणवत् । अयमेवा मध्ये प्रकृष्टो १५
वृद्धः प्रशस्यो वा ज्यायान् । “वृद्धस्य” च ज्य, ” वृद्धशब्दस्य ज्यादेशो भवति । पृ पालनपूरणयो ।
पृणाति पालयतीति पुरु । “इपिठुपिभिदियचिन्दिपुम्य कुः” ए-यः कुपत्ययो भवति । अस्मिन्नहनि
अय १६ । इदमोऽद्रावो अथ परविधि “सद्योऽद्या” निपात्यन्त इति वचनात् । (आदो भव आद्य)
प्रजानाम् इन्द्रवरुणेन्द्रचक्रवर्त्यादीनां पतिः स्वामी प्रजापतिः । इषु इच्छायाम् । वाञ्छयते लोकै
ऐश्वराकुः १७ । तथा चापे महापुराणे—

“अङ्कनाञ्च तदेक्षुर्णारससंग्रहणे नृणाम् ।

इक्ष्वाकुरित्यभूद्देवो जगतामभिसम्मतः ॥”

काश्य दक्षितेजः पातीति काश्यपः । तथा च महापुराणे—

“काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनान् ।”

वृहतीति ब्रह्मा । २५

१ का० सू० ४।५।१२। २ “ष्टप स्तप प्रतिघाते” अम० को० स्त्री० स्वा० भा०य एवोपलभ्यते न
तु पाणिनिधातुपाठे । ३ विशन्त्यत्रेति रामाश्रमः । विशन्त्यस्मिन् जीवाजीवा इति हेमचन्द्र । ४ का० सू०
४।४।४८ । ५ का० सू० ३।३।१३ । ६ का० सू० ४।५।५। ७ का० सू० ४।१।६९। ८ का० सू०
४।१।३०। ९ का० सू० ४।१।३४। “वेल्लोऽप्युक्तस्य” इति पूर्णं मन्त्रम् । १० का० उ० सू० २।५।१।
११ पा० सू० ६।४।१५७। १२ वृषेण भातीति विग्रहे आतोऽनुपसर्गे क । भाट्टमौ । वर्षति धर्माभूतमिति
विग्रहे “अपिचिन्म्या यणवत्” इत्यभ । “वृषु सेचने” । १३ का० उ० सू० ३।१३ । १४ हे०श० ७।४।५।३
१५ का० उ० सू० १।१०। १६ अत्र आद्यशब्दो नत्वयशब्दः । तेनादो भव आद्य इति युक्तं प्रतिभाति ।
१७ का० सू० २।६।३०। १८ इक्ष्णाम् आ (रमापकर्षणम्) अङ्कतीति इक्ष्वाकु । तत ऐक्ष्वाकः । तत्र
प्रमाणमाह— “अङ्कनाञ्चेति” सङ्गति ।

“आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्तौ ताते च भरतराजस्य ।

ब्रह्मेति गीः प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥”

अतः परो ब्रह्मा नास्ति । गीतमो गोत्रोऽवतागद् गीतम् । श्राव्यं महापुराणे—

“गोः स्वगः स प्रकृष्टात्मा गीतमोऽभिमतः सताम् ।

स तस्मादागतो देवो गीतमश्रुतिमन्वभूत् ॥”

नाभेर्जानो नाभिजः । अग्रे जानोऽग्रजः । अदृष्टत्वात् ।

सन्मतिर्महतिर्वीरो महावीरोऽन्त्यकाश्यपः ।

नाथान्वयो वर्धमानो यत्तीर्थमिह साम्प्रतम् ॥ ११५ ॥

सती समीचीना मतिर्यस्य स सन्मतिः । महापुराणे—

“तत्सन्देहे गते ताभ्या चरणाभ्या च भक्तितः ।

अस्तावि सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः ॥”

(मद्यते पूज्यते इति महति) । महती पूजा यस्य स महतिः । विशिष्टां इन्द्रायमम्भाविनीम्

ईम् अन्तरङ्गा समवसरणानन्तचतुष्टयलक्षणा लक्ष्मीं रात्यादत्ते इति वीरः । वीर इति नाम कस्माज्जानम् ?

जन्मान्निषेकं चालयुशरीरदर्शनादाशङ्कितवृत्तेरिन्द्रस्य सामर्थ्यस्थापनार्थं पादाङ्गुलं मेरुसचालनादन्तरेण

वीरनाम कृतम् । महाभ्यासौ वीरः महावीरः । तथा च बृहत्प्रतिक्रमणभाष्ये—

“कुमारकाले आमलकीक्रीडाया क्रीडतः सङ्गमदेवेन विमानस्खलनाद्भगवत्पो (जो)दनार्थं
महाफटाटोपोपेत भयानक सर्परूप विकृत्य वृक्षो वेष्टिनः । भगवोन्मत्तान्मस्तकादिपादन्यास
कृत्वा वृक्षादुत्तीर्ण । ततस्तेन महावीर इति नाम कृतम् ॥” अन्त्य काश्य नेत्रं पातीति अन्त्यका-
श्यपः । ततः परस्तीर्थकरा नास्ति । नाथोऽन्वयो यस्य स नाथान्वयः । तथा च—

“चत्वारः पुरुवंशजा जिनवृषा धर्मादयस्ते पुन-

र्नेपि श्रीमुनिमुव्रतां हरिकुले वीरोऽयं नाथान्वये ॥

जेषाः सप्तदशाधिका जिनवरा इष्ट्वाकुवशोद्भवा

प्राद्यन्मोहविनाशनैकनिपुणाः सङ्घस्य सन्तु श्रिये ॥”

अथ समन्ताद् ऋद्धः परमातिशयप्राप्तमानः केवलज्ञानयन्मामौ वर्धमानः ।

वष्टिमागुरिरल्लोपमवायोरुपसर्गयोः ।

आप चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा ॥”

इत्यवशब्दस्याकारलोपः । तथा ऋषिश्च प्रत्यक्षवेदी—भगवतो हि गर्भावतारादौ पित्रे-
न्द्रादिविनिर्मिता विशिष्टा पूजा रत्नवृष्टिः स्वयं च ऋद्धिबुद्ध्यादिकं दृष्ट्वा वर्धमान इति नाम कृतम् । इह
अस्मिन् पञ्चमकाले यस्य तीर्थं यत्तीर्थम् साम्प्रतम् अयुना वर्तते ।

सर्वज्ञो वीतरागोऽहन् केवली धर्मचक्रभृत् ।

तीर्थङ्करस्तीर्थकरस्तीर्थकृद्विषयवाक्पतिः ॥ ११६ ॥

नव जिनेन्द्रे । ज्ञा अवबोधने । ज्ञा । सर्वज्ञः । सर्वं जानाति वेत्तीति सर्वज्ञः । “आतोऽनुपस-
र्गात्क” अप्रत्ययः । “के” यण्वच्च योक्तवर्जम्” इति यण्वद्भावात् आलोपः । विशिष्टा ई तां प्रति इतः प्रातो
रागो यस्य स वीतरागः । अरिहन्नाद्रजोहन्तः (स्या) भावाच्च परिप्राप्तानन्तचतुष्टयस्वरूपं सन् इन्द्रनिर्मिता-

मतिशयवर्ती पूजामर्हतीति अर्हन् । धानिक्षयजमनन्तजानादिचतुष्टय विभूत्याय यस्येति वाऽर्हन् । त्रिकाल केवलज्ञानमस्त्यस्य केवली । जिनधर्मचक्र सहस्रारयुक्त तीर्थकृदग्रे निराधारतया विहाङ्काले गगने गच्छत् सर्वजीवदयामृचक रत्नमयमायुधविशेष विभर्ति तद्वाऽनुभवतीति धर्मचक्रभृत् । तीर्थ द्वादशाङ्ग शास्त्र करोतीति तीर्थङ्करः । तीर्थ करोतीति तीर्थकृत । दिव्यवाचाभ्यतिः दिव्यवाक्पति । तथा चोक्तम् —

“यत्सर्वार्त्तमहित न वणसहित न स्पन्दिताष्टद्वय

ना वाऽङ्गाकलित न दोषमलिन न ऽवासरुद्धकमम् ।

शान्तामर्षविष सम पशुगणैः सकर्णित कर्णभि-

स्तद्व सर्वविद्. प्रनष्टविपद्ः पायादपूर्वं वच ॥”

चेलं निवसनं वामश्रीरमम्बरमंशुकम् ।

पट्ट वस्त्र । चिल्यते वस्यतेऽनेन चेलं चैल च । निवसत्यनेन निवसन, विवसन, वस्न च । वस्यतेऽनेनाङ्ग वास । सान्तम् । चिनोति उपार्जयति सारता चीरम्, चीवर च । अम्बने गच्छति शोभा-
मनेन अम्बरम् । उभयम् । अशन् कारयति अशुकम् । क्लीवे । कर्पटम् । आच्छादनम् । वस्त्रम् । मिचयः । पट, पटन, पटी । पोत । प्रावर । प्रावार । सव्यान च ।

वस्त्राद्यन्तः दिगाद्यादिसज्जितो वृषभेश्वरः ।

वस्त्रादय वस्त्रपर्याया अन्ते दिगादयो दिक्पर्याया आद्ये यस्य तत्सज्जितो वृषभेश्वर । वस्त्रादिक नाम अन्ते दिगादिक नाम आद्यौ यथा — दिक्चेल । दिग्वासा । दिग्वसन । दिगम्बर । दिगगुकः । दिग्वस्त्र । काष्ठाचेल । काष्ठानिवसन । काष्ठावासा । काष्ठाचीर । काष्ठाम्बर । काष्ठागुक । काष्ठावस्त्र । ककुचेल । ककुचनिवसन । ककुच्वासा । ककुचीर । ककुचम्बर । ककुचगुकः । ककुचवस्त्र । आशाचेल । आशानिवसन । आशावासा । आशाचीर । आशम्बर । आशागुक । आशावस्त्र । दत्तकन्याचेल । दत्तकन्यावासा । दत्तकन्याचीर । दत्तकन्याम्बर । दत्तकन्यागुकः । दत्तकन्यावस्त्र । हरिचेल । हरिचि-
वसन । हरिद्रासा । हरिचीर । हरिदम्बर । हरिदगुक । हरिद्वस्त्र । इत्यादीनि वृषभेश्वरनामानि ज्ञातव्यानि ।

कुङ्कुमं रुधिर रक्तम्—

त्रयः कुङ्कुमे । काम्यते जने कुङ्कुमम् । रुधिर आवरणे । रुणद्धि रुधिरम् । “तिमिरुधि-
मन्दिधिरुचिशुषिभ्य किर ” । रज्यतेऽनेन रक्तम् ।

कस्तूरी मृगनाभिजम् ॥ ११७ ॥

द्रो मृगमदे । के स्यते कस्तूरी । मृगनाभेर्जातम् मृगनाभिजम् । मृगनाभीज च ।

कर्पूरं घनमात्रं च हिमं सेवेत पुण्यवान् ।

कूपू सामर्थ्य । कल्पते कर्पूर । “कूपेरप्रत्ययः । “नाम्यन्तगुणः ।” “कूपे” रेल ” कवच,

१ कुक्यते आदीयते कुङ्कुमम् । कुक् आदाने । “कुदकुकोनुम च” भो० उ० इति उमक प्रत्ययो नुमागमश्च । इति गमाश्रम । कु कौतीति क्षीरस्वामी । २ का० उ० १२३ । ३ तथा चोक्तम्-
मेदिन्याम् ता० व० श्लो० ४६ । “रक्तोऽनुरक्ते नील्यादि रञ्जिते लोहिते त्रिषु । क्लीबन्तु कुङ्कुमे ताग्रे प्राचोनामलकेऽनुरजि ” इति । ४ के शिरसि स्यते प्रशस्तधार्यत्वेन मन्यते इत्यर्थ । विक्रमति सांगन्ध्यम स्या इति क्षी० स्वा० । “कम गतौ” कसति गच्छति गन्धोऽन्या इति रामाश्रम । “स्वर्जपिङ्गादिभ्य उरो-
लचौ” । पा० उ० ४१० । इत्यमर । पृषोदरादित्वात्तट्, गौरादित्वान्दीप् च । ५ “खजिर्गुपिमपिङ्गा-
दिभ्य उरोलौ” इति का० उ० ३६० । ६ नाम्यन्तयोर्धातुविकरणयोगुणं ” का० सू० ३।५।१ ।
७ का० सू० ३।६।१७ ।

सन्धम् । उणादयो हि बहुलम् तेन—

“कचित्प्रवृत्तिः कचिदप्रवृत्तिः कचिद्विभाषा कचिदन्यदेव ।

विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥”

घनस्येव सारोऽस्य घनसारः । हि गता । हिनोतीति हिमम्^२ । “इन्धिद्युधिभ्याधूहिभ्यो

५ मक्” । चन्द्रसङ्गः । सिताभ्रः । हिमवालुकः ।

समालम्भोऽङ्गरागश्च प्रसाधनविलेपनम् ॥ ११८ ॥

चत्वारो रागो । सम्यक् प्रचारेणालभ्यते *समालम्भः । अङ्गस्य रागोऽङ्गरागः । प्रकर्षणं सा यते मण्ड्यते प्रसाधनम् । विलिप्यते विलेपनम् ।

भूषणाभरणं रुच्यम्—

१० त्रय आभरणं । तस्मिन् भूषणं अलङ्कारे । भूष्यते मण्ड्यतेऽनेन भूषणम् । आ समस्ताद् भ्रियते शोभा धार्यतेऽनेन आभरणम् । रोचते रुच्यम् । अलङ्कारः । परिष्कारः । मण्डनम् ।

माल्य मालागुणमजः ।

चत्वार उपमालायान् । मालैव माल्यम् । चातुर्वर्णादिवाक्येण । माल्यते धार्यते माला । अथवा मालान्ति पुष्पाण्यत्र माला । स्त्रियान् । गुणतीति गुणः । “नाम्युपध्वीकृग्जा” क । सृज्यते १५ स्रक् । ‘कृत्विग्दृक्त्वगिति’ साधु ।

मेखला रमना काञ्ची ।

त्रय काञ्च्याम् । मेहनस्यैव तस्य मालानीति निम्क्तिः । मिनोति प्रक्षिपति कामिचित्तमिति वा मेखला^१ । रमति शब्दं करोतीति रसना^२ । रम कान्तो (शब्दे) सात्रोऽयं वातु । श्रोणी शोभा कचति(काञ्चते)^३ बन्नातीति काञ्चिः । ब्रियामी । काञ्ची । तनका । कलापः । कटिसूत्रम् । सारसनम् ।

२० शिञ्जिनी^४ च ।

हेमपर्यायसूत्रकम् ॥ ११९ ॥

हेमशब्दात्सूत्रशब्दे प्रयुज्यमाने मेखलापर्यायनामानि भवन्ति । हेमसूत्रम् । अष्टापदसूत्रम् । स्वर्णसूत्रम् । कनकसूत्रम् । अर्जुनसूत्रम् । काञ्चनसूत्रम् । हिरण्यसूत्रम् । जातरूपसूत्रम् । शातकुम्भसूत्रम् । हाटकसूत्रम् । कलधोतसूत्रम् । तपनीयसूत्रम् । कार्तस्वसूत्रम् । इत्यादीनि जातव्यानि ।

२५

श्रोणीविम्बं कटीसूत्रं मानसूत्रमिवाहितम् ।

त्रय पट्टसूत्रे । श्रोण्या कट्या त्रिभ्यः प्रच्छादकं श्रोणीविम्बम् । कटी सूत्रयति वेष्टयतीति

१ शा० सू० १।३।१८९। अत्र कारिकारूपेण पठितं । २ हिनोति गच्छतीत्यर्थः । कपूर्स्याश्लेष-
ननस्वभावात् । हन्ति श्रौट्यमिति रामाश्रमः । ३ का० उ० १।५५। ४ आलभ्यते विलिप्यते इत्यर्थः ।
५ का० सू० ४।२।५१। ६ का० सू० ४।३।७३। ७ मक् गतिं लातीति पृषोदरादित्वानमेखलेति रामाश्रमः ।
मुहुः खलतीति हेमचन्द्रः । मीयते प्रक्षिप्यते इति ली० म्वा० । ‘मित्रं खलचैच्च’ २।३।१७। सर० क० ।
८ अश्रुते कटिमग्रश्रान्ति कामिचित्तं वेति रामाश्रमहमचन्द्रो । ‘अरोरश्च’ इति यूगशादेशश्च । ९, “काचि
दीप्तिबन्धनयोः । “मर्वधातुभ्य इत्” । १० शिञ्जिनी नूपुरम् । मेखलापर्याये तत्पाठोऽयुक्तः । तदुक्तम्—
“नूपुरन्तु तुलाकोटि” पादत कटकाङ्गदे । मञ्जीर हसक शिञ्जिनी,—अभि० चि० ३।३३०।

कटीसूत्रम् । मान प्रमाणीभूत सूत्रयतीति मानसूत्रम् । केचिद् रागसूत्र पठन्ति पट्टसूत्र च ।

मदिगं मद्यमैरेयं शीघ्रं कादम्बरीमिगम् ॥ १२० ॥

प्रमत्ता वारुणी हालां मधुवारां सुरां विदुः ।

एकादश मद्ये । माद्यन्यनया मदिरा । मधिष्ठा च । मद्यतेऽनेन मद्यम् । ‘यमिकदिगदा त्वनुपसर्गे’ । इराया ग्रामसीमायाम् सधु परेयम् । शेरनेऽनेन शीघ्रः । ‘‘शीघ्रो बुक्’ । शीघ्रो(घो)मित्येके ५ पठितत्वात् शीघ्रप्रकृते ३ क इति व्याख्यत । अथवा पीतेऽत्र जनः शेते शीघ्रः । उभयम् । तालव्यः । कुत्सित नीलमन्धर यस्य स कदम्बरो बलदेव’ । तस्येय प्रिया कादम्बरी । कुत्सितमन्वते याल्यनया वा कादम्बरी । एति परिभ्राम्यत्यनया इरा । आत्मा प्रमोद्यनया प्रमत्ता । आदन्त । वम्हन्त्यापत्य वारुणी । जहति लज्जामनया हाला । स्त्रियाम् । मधु वारयतीति मधुवारा । मुवति सूते भव सुरा । तथा द्विसन्धानमाप्ये—“अतिप्रलापभावेन समुद्रमथनान्निष्कासिता सुर सुरा ।” १०

‘‘लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा

गात्र कामदुघाः सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गना ॥

अश्वः सप्तमुखः सुधा हरिधनु शङ्खो विष चाम्बुदेः

गङ्गानीति चतुदश प्रतिदिन कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥

विदु कथयन्ति । मधु । आसव । परिप्लुता । स्वादुग्मा । गुण्डा । गन्धोत्तमा । माधवक । १५ माधव । कृत्य कन्या । कश्य, कन्या । परिश्रुत् । तान्ति न्नियाम् । तालव्यदन्त्य । ‘‘हासृ’ । कापि-शायनम् । गङ्गीकम् । मात्वीकम् ।

शुण्डामवः—

मद्यविशेषा द्वा । मुन्व(न)न्ति तृप्ति गच्छत्यनया शुण्य (न्य) ने पानुमनिगम्यते वा शुण्डा” । स्त्रीचो । शुण्ड । आसते जनयति मदम् आसव । पुमि । २०

तद्विधायी शौण्डो मद्येत मद्यपः ॥ १२१ ॥

द्वा कल्पपालके । शुण्डाया मद्ये भव शौण्ड । मद्य पिबति पाययतीति वा मद्यपः ।

सक्तोऽक्षयृतपानेषु विचित्रा शब्दपद्धतिः ।

त्रयो मद्यासक्ते । अक्षेपु घृतेषु सक्त अक्षसक्त । घृतसक्त । पानेषु सक्त पानसक्त । विचित्रा नाना प्रकारा शब्दाना पद्धति श्रेणिः शब्दपद्धतिर्वर्तते । अक्षशौण्ड । अक्षधूर्त । अक्षकृतव । ‘‘सप्तम्” २५ शौण्डै । व्याल, अधि, पट्ट, पण्डित कुशल, चपल, निपुण, स्वेत्यादि शौण्डादिराकृतिगण ।

सर्पिर्हैयङ्गवीनाज्यं—

त्रियः सर्पिषि । सप्त घातव सर्पन्त्यनेन सान्त सपः । क्लीबे । ‘‘अर्चिशुचिश्चिहुसृपि-छादिछर्दिभ्य इमि” । मृलू गतौ । ह्यो गोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनम् । इदं हैयङ्गवीनं ह्यस्तनदिन-गोदोहे सज्जतम् । उक्तं च—

“ तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्वय घृतम् ।”

१ का० सू० ४२।१३।२ का० उ० सू० २।३३।३ सीतुगिति दन्त्योऽयन्यत्र पाठः । ४ “शुण्डा हाला हारहूर प्रमत्ता वारुणी सुरा ।” अभि० चि० ३।५६।५ शुण्डाशब्दो मदिरावाची पानमदस्थानमपि । तदुक्तम्—“शुण्डा हाला हारहूरम्” अभि० चि० ३।५६।६ “शुण्डा पानमदस्थानम्” अभि० चि० ३।५७।६ शुण्डाया मदिरापानागारे भव इति रामाश्रम । “शुण्डा मदिरा पुस्त्यस्येति ज्यो-त्नादिवादर्ण” इति हेमचन्द्र । ७ पा० सू० २।१।४०।८ का० उ० सू० २।४४।९ अम० को० २।१।५२।

तथा चाशधरमहाभिके—

“आयु पीयूषकुण्डे. स्मृतिमणिखनिभिः शोमुषीबल्लिकन्दै-

र्मैधासस्याम्बुवाहैर्वरफलतरुभिर्नेत्ररत्नाधिदेवैः ।

निष्टप्तैर्घ्रागपेयप्रचुरमधुरिमस्नेहधूमोऽपि येषां

५

कुर्मो हैयङ्गवीनैः स्नपनमपनय ध्वान्तभानोजिनस्य ॥”

वीयते क्षिप्यते पित्तमनेनाज्यम् । तथा क्षीरस्वामिनि—“आ अञ्जनीयमाज्यम्” ।

“आहूपूर्वां दजे. सज्ञायाम्” वयप् । घृतम् । आधार. । स्पृह्यम् । याज्यम् । हविः ।

दुग्धं क्षीराऽमृतं पयः ॥१२२॥

चत्वारो दुग्धे । दुह प्रपूरणे । दुह्यते दुग्धम् । घृतम् अदने । सौत्रोऽयम् । पश्यते क्षीरम् ।

१०

‘घसेः’^२ किञ्च ईरमात्र । ‘गमहनजनेत्युपधालोप । ‘अघोपेभ्यश्चिग प्रथम’ क । “शासिवसि-
घसाना च’ पत्वम् । क्^३प्सयोगे क्ष. । “व्यञ्जनमस्व”^४ । उणादीं क्षिणु क्षणु हिंसायाम् । क्षणीतीति
क्षीरम् । “क्षीरोशोग्गभोग्गभीरा” एते ईरप्रत्ययान्ता निपायन्ते । न भ्रियन्तेनेन अमृतम् ।
अत्रगमरकारित्वात् । पीयते वा सरस्त्वात् पयः । यमुन् । उधस्यम् । स्तन्यम् । पीयूष, पयूप च ।

उदश्विन्मथितं तक्रं कालशेयं पिबेद् गुरुः ।

१५

चत्वारस्तक्रे । उदकेन श्वयति वयते उदश्विन् । तान्तस्तालव्यमध्य । मध्यते (स्म)
मथितं धोल च । तन्नति द्रव गच्छति तक्रम् । उभयम् । “तक्र विभागभिन्न तु केवल मथित
स्मृतम्” इति धन्वन्तरिः । कलश्यां गर्ग्यां भव कालशेय पिबेत् गुरु । तत्कालान गरिष्ठम् ।
अरिष्टम् । दण्डाहतम् ।

प्रायो वयो दशानेहा पूर्णं यौवनकं विदुः ॥ १२३ ॥

२०

तारुण्यं यौवनं च

‘अष्टौ तारुण्ये । प्रकर्षण परलोकमेत्यनेन प्रायः’^{१०} पुंसि । मान्तोऽपि प्रायम् । वयते
वयः’^{११} । दशति चुम्बति स्त्रीमुख्य दशा । न ईहते’^{१२} चेष्टत अनेहा । अनेहसोऽसरमोऽङ्गिरस’^{१३} एते सन
प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । ईह चेष्टायाम् । पूरी अत्यायने दिवादीं आत्मनेपदी । अदन्ताना प्राक् तु(क्ल)तीयः
परस्मैपदी । पूर्यते कश्चित्, पूरयति कश्चित् । इन् चुगायपेक्षया वा । “कारितं कारितलोप । उभयथा
पूरि ज्ञातम् । पूर्यते स्म पूर्णः । निष्ठाक्तः । “दान्तगान्तपर्णादन्तस्पष्टक्षत्रज्ञाश्चेनन्ता” इत्यनेन
पूर्णं निपातः । यूना भावो यौवनम् । स्वार्थे क । यौवनकम् । “युवादित्वाद्भावेण । वृद्धौ । तरुण्य

२५

१ पा० सू० ३।१।१०९। वार्तिकम् । २ पा० उ० सू० ८।३२ । ३ का० सू०
३।६।४३ । ४ का० सू० ३।८।९। ५ का० सू० ३।८।२७ । ६ का० सू० पू० सू० २५६ ।
७ “व्यञ्जनमम्बर पर वण नयत्” का० सू० १।१।२१। ८ का० उ० सू० ३।६६। ९ अत्र
प्रायादयोऽनेहोऽन्ताश्चत्वारो वयोवाचका । पूर्णपूर्वका एते चत्वारो यौवनकतारुण्ययौवनानीति त्रय ।
एव च सन तारुण्ये इति वक्तुं युक्तम् । १० प्रकर्षेण शरीरस्य क्रमेणायने गच्छति इति हे० च० । ११
शरीरस्य क्रमेण वियन्ति वयः, बाल्यादीनि दृश्यन्ते दशा इति हैम । १२ नाहन्ति नागच्छति नाहन्यते
नागम्यते वेति रामाश्रम । ‘नज्याहन एह च’ इति साधु । १३ का० उ० सू० ४।१।८। १४ का० सू०
३।६।४४। १५ का० सू० ४।६।१००। १६ हे० श० ७।१।६७। युवादेरेण इति सूत्रम् ।

भावस्तारुण्यम् । भावार्थे यण् । युनो भावो यौवनम् ।

अन्त्यो वाद्रीनः स्थविरो मतः ।

त्रयो वृद्धे । अन्ते भवोऽन्त्यः । वृद्धे नियुक्तो वाद्रीनः^१ । तिष्ठतीति स्थविरः^२ । गति-
भङ्गात्मतः कथितः । प्रवयाः । यातयामः । दशमीस्थः । जरन । जरठ । जीर्णः । वृद्धः ।

वशोऽन्वयोऽन्ववायः स्यादाम्नायः संततिः कुलम् ॥ १२४ ॥ ५

पङ् वशे । उश्यते काम्यते जनेन वंशः^३ । पु सि । अन्वयते सन्ततिरान्वयः^४ । अन्ववेत्य-
पत्यमत्रान्ववाय । आम्नायते आम्नायः^५ । सम् सम्यक् प्रकारेण तनोति विस्तारयतीति सन्ततिः^६ ।
सन्तनन वा सन्तति । कु (को) लति सर्व भवन्त्यत्र कुलम् । उभयम् । गोत्रम् । अभिजन ।

ओघो वर्गश्च सन्तानः

त्रय समूहे (वशस्यावान्तरवर्गभेदे) । ओघाते ओघः^७ । वृज्यते विजातोयेन पृथक् क्रियते^{१०}
वर्गः । सन्तन्यते सन्तानः । विक्र । निकाय । निवहः । विमरः । व्रज । पुञ्ज । समूहः । सन्चयः ।
समुदय । समुदायः । सार्थः । यूथ । निकुरम्भ । कदम्बम् । पृगः । राशिः । चयः । समवायः । मण्डलम् ।
चक्रवालम् । जालम् । स्तोमः । व्यूहः ।

काव्यमेव कविस्थितिः ।

द्वौ काव्ये । कवेभावः काव्यम् । तथा च यशस्तिलके—

१५

“दुर्जनानां विनोदाय बुधानां मतिजन्मने ।

मध्यस्थानां न मौनाय मन्ये काव्यमिदम्भवेत् ॥”

कवीनां स्थितिः कविस्थितिः ।

पक्षिवर्गः प्रारभ्यते श्रीमदमरकोटिना—

हमो मरालश्चक्राङ्गः

२०

त्रयो हसे । विम हन्ति खण्डयति, चारुगत्या हन्ति गच्छति वा हसः । हन्ते^१ स । मरं
मलं ५ मलमण्डितनडागमियति गच्छतीति मरालः । चक्रमङ्गानि चक्राण्यङ्गानि वा यस्य चक्राङ्गः ।
मानसोका । श्वेतच्छुदः ।

हंसवाहः सनातनः ॥ १२४ ॥

हंसशब्दाद् वाहशब्दं प्रयुज्यमाने ब्रह्मणो नामानि भवन्ति । हंसवाहः । मरालवाहः । चक्राङ्ग- २५
वाहः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

मयूरो बर्हिणः केकी शिखी प्रावृषिकस्तथा ॥

नीलकण्ठः कलापी च शिखण्डी—

अष्टौ मयूरे । मत्स्या रौति मयूरः । मीनाति वाऽहीन् मयूरः । उष्णादौ । मीन् हिसायाम् । मयते

१ अत्रान्यत्प्रमाणं नोपलब्धम् । २ यौवनमतिक्रम्य तिष्ठतीति हं० च० । “अजिरशिशिरेत्यादि
पा० उ० १।५३ इति किरप्रत्ययो रुगागमो ह्रस्वश्च । ३ “वशः कान्तौ” घञ् । नुम् । वन्यते कन्यतेऽनेनेति
स्वामी । ४ अन्ववेति अन्वीयते । अन्वयः । “इण् गतो” । अच् । इत्यन्यत्र ५ अत्र प्रमाणम्—“आम्नायः
कुल आगमे उपदेशे” इति हैम १।१।११। ६ सन्तन्यते सम्यग्विस्तारयतीति रामाश्रमः । ७ ऊह्यते ।
ऊह वितके । न्यङ्क्वादिन्वाद् ह्रस्वश्च । ८ आ० १ श्लो० २५।९ का० उ० सू० ८।५। “वृट्वादिह-
निमित्तकस्य शिकपेभ्यः सः” । इति ।

इति मयूर । “मयते रुरो खौ” । बहमस्यास्ति बर्ही । “फलं बर्हान्यामिनच्” । केका वाणी अस्त्यस्य केकी । शिखास्त्यस्य शिखी । प्रावृषि वर्षाकाले प्रयुक्त प्रावृषिकृ । नील कण्ठे यस्य स नीलकण्ठ । कलापोऽस्त्यस्य कलापी । शिखण्डोऽस्त्यस्य शिखण्डो । प्रचलाकी । सर्पाशन । शिखावल । श्याम-कण्ठ । चन्द्रकी । शुक्लापाङ्ग ।

५

तत्पतिगुहः ॥ १२६ ॥

तस्य पतिस्तत्पतिगुहः कार्तिकेय । मयूरशब्दात् पतिशब्दे प्रयुज्यमाने कार्तिकेयपर्यायनामानि भवन्ति । मयूरपति । वरिणपति । केकिपति । शिखिपति । प्रावृषिकपति । नीलकण्ठपति । कलापि-पति । शिखण्डिपति । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

वरटा वारली हंसी-

१०

त्रयो वृषभार्यायाम् । वर विशिष्टमटति गच्छति वरटा । वरलस्य भार्या वारली । स्वार्थे णि । वरला च । हन्तीति हंसी ।

कोक ईहामृगो वृकः ।

अजादिक कोकते आदत्ते कोकः । ईहा मृगेष्वस्य ईहामृगः । ईहा मृगयते वा ईहामृगः । कुक वृक आदाने । वर्कते वृकः । अग्नयश्वा ।

१५

हरिणो मृगश्च पृषतः-

त्रयो मृगे । गीतेन द्वियते हरिणः । व्यापैर्मृगयते मृगः । पृषति मिचति मृगेण पृषत । तान्तोऽपि पृषत् । एण । कुण्ड । कुण्डम । सारङ्ग । ऋश्य । रिश्य । ऋष्यश्च । रुक् । न्यङ् । वात-प्रमी । शम्बर । शत्रल । कुण्णमार । कलमारोऽपि ।

तदङ्कः शर्वरीकरः ॥ १२७ ॥

२०

हरिणपर्यायादङ्कपर्याये प्रयुज्यमाने चन्द्रस्य नामानि भवन्ति । हरिणाङ्क । मृगाङ्क । पृषताङ्कः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

पन्नगोऽहिर्विषधरो लेलिहानो भुजङ्गमः ॥

नागोग्नौ फणी मर्पः-

नव सर्पे । पन्नगा न गच्छतीति पन्नगः । नभ्राण्णपादित्यस्योपलक्षत्वात् । अहन्त्य (तेऽ) २५ हि । “अहिः कर्मयोर्नलोपय” नलोपः । विष धरति विषधर । लिहेति लेलिहान । भुजाभ्या गच्छति भुजङ्गमः । न गच्छतीति नागः । उरसा गच्छतीत्युरगः । “उरो विहायसो रुरविहो च” । उरो विहायसोरुपपदयोगमन्त्र सजाया खो भवति तयोश्च उरविहो यथास्त्य भवतः । फणाऽस्त्यस्य फणो ।

१ का० उ० सू० ६।४७ । २ पा० ५।२।१२२ वार्तिकम्—“फलबर्हान्यामिनच्” । ३ ईहया महताऽयासेन मृगयते आवेटीक्रियते इत्यन्यत्र । ४ वर्कतेऽजादिकमादत्ते, वृणोति वा वृकः । ५ रामाश्र-मस्तु—“पृषता बिन्दवो बिन्दुसदृशलक्षणान्यस्य पृषत । अर्श आश्रच् इत्याह । पृषतो बिन्दुचित्र इति क्षो० स्वा० । ६ पन्न पतित यथा स्थ तथा गच्छतीति रामाश्रम । सर्वपन्नयोरिति वार्तिकन ड । ७ का० उ० सू० ४।४। क्रिययो नलोपश्च । अहि गतो । अहति वेगेन गच्छति । ८ मृश लेटीत्येवशीलो लेलिहानः । लिह्येडुलुगन्तात्—“ताच्छीन्यवयोचनशक्तिषु चानश्” पा० सू० २।२।१२६ इति चानश् । ९ भुजेन कौटिल्येन गच्छति, भुज इव गच्छति वेत्यन्यत्र । “गमश्च” का० सू० ४।३।८५ इति । “विहङ्गुतुरङ्ग भुजङ्गाश्च” का० सू० ४।३।४८ इति खचि, डे च, भुजङ्गम, भुजङ्ग इति । १० नगे पर्वते भवो नागः । अथवा न गच्छतीत्यग, न अग, नाग इत्यन्यत्र । ११ का० सू० ४।३।४६ ।

सर्पति गच्छति सर्पः । पृदाकु । भुजग । आशीविष । चक्री । व्याल । सरीसृप । कुण्डली । गूढपात् ।
द्विरसन । चक्षुःश्रवा । काकोदर । दर्वीकर । दीर्घपृष्ठ । दन्दशूक । विलेशय । भोगी । जिह्मग ।
पवनाशन । गोकर्णः । कुम्भीनम । कञ्चुकी । राजसर्प । भुजङ्गसृक् । दृक्श्रुति ।

तद्वैरी विनतात्मजः ॥ १२७ ॥

तस्य पन्नगस्य वैरी शत्रु विनतात्मज गरुड । पन्नगवैरी । अहिरिपुः । विपधरागति ।
लेलिहानरिपु । भुजङ्गशत्रु । नागद्विट । भुजङ्गसपत्न । फणिविट । सर्पद्वेष्ट । सर्पद्वेष्टी । इत्यादीनि
गरुडनामानि स्युः ।

सुपर्णो गरुडस्ताक्ष्यो गरुत्मान् शकुनीश्वरः ।

इन्द्रजिन्मन्त्रपूतात्मा वेनतेयो विपाशयः ॥ १२८ ॥

नव गरुड । शोभन स्वर्णमय पर्णमस्य सुपर्ण । तथा च—“सुपर्णो” हेमपक्षत्वात् ।^{१०} डीट
विहायसा गते । गरुपूर्व । गरुडिन् पक्षैर्द्वयते गरुडः ।

“वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिद्धे वर्णविपर्यय ।

पोडग्रादौ विकारस्तु वर्णनाशः प्रपोदरे ॥”

इत्यनेन श्लोकेन गरुडशब्दस्य तकारस्य लोप । लत्वे गरुल । गरुटश्च । तृप्तस्यापत्य ताक्ष्यः ।
गरुत पक्षा मन्त्रस्य गरुत्मान् । शकुनीना विहङ्गानामीश्वर स्वामी शकुनीश्वरः । इन्द्र जितवान्
इन्द्रजित् । मन्त्रेण पुन पवित्र आत्मा यस्य स मन्त्रपूतात्मा । विनताया अपत्य वेनतेय । विप
क्षयतीति विषक्षय । काश्यपनन्दन । विष्णुरथः । पन्नगाशन । नागान्तक ।

खमिन्द्रियं हृषीकं च श्रो (स्रो) तोऽक्षं करणं विदुः ।

पांडिन्द्रिये । स्वर्गमोक्षो न्वनति विदाग्यतीति खम्^३ । इन्द्रस्थात्मनो लिङ्गमिन्द्रियम्^४ ।
हृष्यति हृषे प्राप्नोति विषयेषु शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु हृषीकम् । शृणोत्यनेन सान्तम् श्रोत^५ ।
तालव्यादिः । अक्षणोति विषय व्याप्नोति अक्षम् । क्रियते मनोऽनेन विषयेषु करणम् । शिव
[विपर्यय] । कञ्चलम्^६ ।

पुण्यं भाग्यं च सुकृतं भागधेयं च सत्कृतम् ॥ १२९ ॥

पञ्च पुण्ये । पुण्य शोभे । पुण्यति शोभने पवते वा पुण्यम् । “पञ्चन्यपुण्य” । भगस्यैश्वर्या
देष्टु [कारणम्] भागम् । भागमेव भाग्यम् । “भाग्यञ्च” । सुदृ क्रियते सुकृतम् ।

“ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।

वैराग्यम्याथ मोक्षस्य पण्णा भग इति स्मृतिः ॥”

१ क्षी० स्वा० भा० १।१।२९ । २ शा० सू० २।२।१७२ । अत्र कारिकारूपेण पठित ।
३ न्वनति, तत्तदिन्द्रियाधिष्ठानस्य खानसदृशत्वदर्शनात्, खम । ‘खनु अवधारणे’ । डप्रत्यय इत्यन्यत्र ।
४ इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमित्यादिना घच् । धम्येय । ५ तालव्यश्रोतश्शब्द कर्णेन्द्रियवाचकः । दन्त्यमोतश्शब्द
इन्द्रियवाची, सोऽत्र पठितः । तदुक्तम्—“हृषीकमन्त्र करणं श्रोतं ख विषयीन्द्रियम्” अ० चि०
‘श्रोत इन्द्रिये निम्नगारये ।’ इत्यमर ३।३।२३ । ६ नात्रान्यत्प्रमाणमुपलब्धम् । क्लिष्टसमाधान-
प्रकारान्तु—कमिति सुवार्थकमव्ययम्, तस्य ब्रह्म साधनमिन्द्रियमिति । ७ पुण्यतीति पुण्य । “पुण्य शुभे
कर्मणि । इमुपवेति कः । पुण्यमर्हति पुण्यम् । “तदर्हति” । पा० सू० ५।१।६३ । इति यत् । पुनाति
पवते वेत्यन्यत्र । ८ का० उ० सू० ३।४ । ९, श्लोकोऽयं विष्णुपुराणस्थत्वेनोल्लिखित अम० को०
क्षी० स्वा० भाष्ये १।१।१३ ।

भगव्येद भाग भागमेव भागधेयम् । 'नामरूपभागेभ्यो धेयः' ११ । सत्समीचीन क्रियते (स्म)
सक्तम् ।

अधमंहश्च दुरितं पाप्मा पापं च किल्बिषम् ।

वृजिनं कलिलं ह्येनो दुष्कृतम्

- ५ दश पापे । न जहाति प्राणिनम् अधमम् २ । अहति गच्छति नरकादिकमनेन अ ह् । सान्तम् ।
दुरितम् ३ । दुर् सौत्रोऽय धातु । पाति सुगतेर्वासयति पाप्मा । पु सि । "सर्वधातुभ्यो मन् ।" पाति सुगन्-
वासयति पापम् । "पातेः प." । निन्द्यत्वेन कल्पने मुहुर्महुः, किरति सङ्गति वा किल्बिषम् । "किल्बिषा"
व्यथिषी" एतौ टिप्प्रत्ययान्तौ निपात्येते । वृज्यतेऽपनीयतेऽनेन वृजिनम् ४ । कलयति कलिलम् ५ ।
"कलेरिलः" । एति गच्छति [सुखम्] अनेन एने । सान्तम् । दुष्क्रियते स्म दुष्कृतम् । तम । कल्पम् ।
१० कल्पमम । अशुभम् । प्रतिकिष्टम् । पङ्कम् । किण्वम् । मल । अनेकार्थे ।

तज्जयी जिनः ॥ १३० ॥

तस्य पापस्य जयी तज्जयी । अघजयी । दुरितजयी । पापजयी । इत्यादीनि जिनस्य नामानि भवन्ति ।

सदनं सन्न भवनं धिष्ण्यं वेदमाथ मन्दिरम् ।

गेहं निकेतनागारं निशान्तं निवृतं गृहम् ॥ १३२ ॥

१५ वमत्यावसथावासं स्थानं धामास्पदं पदम् ।

निकायं निलयं पस्त्यं शरणं विदुगलयम् ॥ १३३ ॥

- चतुर्विंशतिर्यह । जना मीदन्त्यत्र सदनम् । क्लीबे । मीदन्ति सुख गच्छन्त्यत्र सन्न । 'सर्व-
धातुभ्यो मन्' प्रायेण । भवति भूतान्यत्र भवनम् । धिप शब्दे । देधेष्टि शब्द करोत्वत्र धिष्ण्यम् ।
"धिषेर्न्यक्" प्रत्ययो भवति । विशन्त्यत्र वेदम् । नान्तम् । मायन्ति जना अत्र मन्दिरम् १ । स्त्री-
२० क्लीबे । मन्दिरा । गेह सौत्रा निवारणग्रहयोः । गेहति शीतवातातपादिक निवारयतीति गेहम् । गृह्णाति
वा गेहम् । 'गेहे' 'त्वक्' । सुख निकेतन्ति जानन्त्यत्र निकेतनम् । अद्गन्ति गच्छन्त्यत्र आगारम् २ ।
अगार च । निशाम्यन्त्यत्र निशान्तम् ३ । निव्रियते आच्छाद्यते निवृतम् । गृह्णाति नरेणोपाजितं धनं
गृहम् । वसन वसति । आवसन्त्यत्र जना आवसथम् । आ समन्तादुपयत्त्रावासः । स्थीयते जनेनात्र
स्थानम् । दधाति धनादि धाम । नान्तम् । अदन्त च धामम् । क्लीबे । आम् (प) यत्त्रास्पदम् ४ । पथते
२५ गम्यते पदम् । निचायतेऽस्ते निकायः । "शरीरनिवासयो कश्चादे" घञ् । निलीयते आश्रयते (अत्र)
निलयम् । पसि सौत्रो निवासे । जना पमन्ति वसन्त्यत्र पस्त्यम् ५ । वस्ता वासे माधु वस्त्यम् । वस्ती

१ पा० मू० ५।४।३५ ।वार्तिकम् । २ अङ्घ्रते गच्छति दानादिनाऽधम् । "अघि गतो" ।
पचाद्यच् । आगमशास्त्रस्यानित्यत्वाच्च नुम् । ३ दुष्टमिति गमनमनेनेति रामाश्रम । ४ का० उ० मू०
२।५।५ । "किल्बिषाव्यथिषी" का० उ० मू० १।२।६ । ५ 'वृजा वर्जने' । वृजे किञ्चेतीनच् । वृज्यते
वृजिनमित्यपि । ६ कलयति जनयति दुःखमिति शेष । ७ का० उ० मू० ४।२८ । ८ का० उ० मू०
३।६० । ९ "तिमिरधिमदिमन्दिचन्द्रिवधिरुचिशुभिभ्यः किरः" का० उ० मू० १।२३ । ११ का० मू०
४।२।६० । इति निर्देशाद् गेह इति निपातः । १२ आ अद्गति अद्गयते वाज्र बाहुलक आरप्रत्यय । "अगि
गतौ" आङ्पूर्व । नलोपश्च । १३ निशाया अन्नोऽत्रेत्यन्त्यत्र । निशायाम् अम्यते गम्यते स्मेति रामा-
श्रम । "अम गतौ" । कः । १४ "आस्पदं प्रतिष्ठायाम्" पा० मू० ६।१।१८६ । इति मुट् । १५ का० मू०
४।५।३५ । १६ अपस्त्यायन्ति सङ्घोभवन्त्यत्र पस्त्यम् । "स्त्यै शब्दमङ्घयोः" ।

वासे साधु 'वस्त्यमिति श्रीभांज. । शीर्यते हिंस्यते शीताद्यत्र शरणम् । आलीयते जनेनात्रालयः । पुसि ।
विदुः कथयन्ति । पुरम् । कुलम् । सस्त्यायः ।

खेयं खातं च परिखा

अय परिखायाम् । खनु अवदारणे । खन् । खन्यते खेयम् । "आत्वनोरिच्च^{२१}" यप्रत्ययो
नकारस्येकार । "अवर्णह्वरणे ए" अवर्णेवर्णयोरेकार. । खन्यते [स्म] खातम् । परिखायते परिखा । ५

वप्रं स्याद्धूलिकुट्टिमम् ।

द्वौ प्राकारे । शुल्कादिक वपन्यत्र वप्रम् । धूल्या कुट्टिम धूलिकुट्टिमम् । बद्धभूमिकम् ।
धूलिकुट्टिमम् ।

प्राकारः परिधिः सालः

अथो दुर्गे । प्रकुर्वन्ति तमिति प्राकार^४ । "अकर्तरि च^५ कारके सञायाम्" घञ् । परि १०
समन्ताद् धीयते परिधिः^६ । इयति तनूकरानि स्वनगरपर्यंत शाल सालं^७ च ।

प्रतोली गोपुराकृतिः ॥ १३४ ॥

द्वौ विशिखायाम् । प्रविशन् जन प्रतोत्यते परिमीयतेऽत्र प्रतोली । गोप्यते रक्ष्यते गोपुरं
तस्याकृति गोपुराकृति^८ ।

प्रासादसौधहर्म्याणि

अय साधे । प्रासादश्च सौध च हर्म्ये च प्रासादसौधहर्म्याणि । प्रसीदन्त्यस्मिन्नयनमनासीति १५
प्रासाद । "अकर्तृणि च कारके सञायाम्" । सुवाया लिप्ताया भव 'सौधम् । चन्द्रकरान् हरति
हर्म्यम्^{११} ।

निर्व्यूहो मत्तवारणः ।

द्वौ अशश्रये । निर्व्यूह्यते निर्व्यूह । मत्ता प्रमादिन पतन्तो वार्यन्तेऽनेन मत्तवारण । २०

वातायनं मतालम्बम्

द्वौ गवान्ने । वातस्यायन मागो वातायनम् । उभयम् । मतमभीष्टम् आलम्बम् मतालम्बम् ।
जालकम् । जालम् ।

आलम्ब्यसुखमासनम् ॥ १३५ ॥

राजामवष्टम्भे द्वौ । आलम्ब्यस्य अवलम्बनस्य मुखम् आलम्ब्यसुखम् । सुखेनास्यते आसनम् । २५

ममः सवर्णः सजातिः सदृशः सदृक् ।

तुल्यः सधर्मरूपश्च तुला कक्षोपमा विधा ॥ १३६ ॥

१ यद्यपि मूले वस्त्यशब्दो नास्ति, तथापि पाठभेदात् "निशान्तवस्त्यमदनम्" २।२।५।
इत्यमरे वस्त्यशब्दपाठात् टीकाकृता तदपि विग्रहीतम् । २ का० सू० ४।२।१२। ३ का० सू० १।२।२।
४ प्रक्रियते इति कर्मणि घञ् । इति रामाश्रम । ५ का० सू० ४।५।४। ६ परितो धीयते वेष्ट्यते
नगरमनेनेति रामाश्रम । ७ दन्त्यपाठे तु मल्यते सालः । "सल गतौ" । घञ् । ८ पुण्डारन्तु गोपुर
भट्टरक्षितम् । तस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्यास्तसदृशीत्यर्थः । ९ का० सू० ४।२।४। १० सुधया लिप्तः सौधः ।
शेषेऽण् । ११ हरति मनासि हर्म्यमित्यन्यत्र । प्रासादसौधहर्म्याणामत्रविशेषणोपादानम् । पर तद्विशेषां
न विस्मर्त्तव्य । तदुक्तम्-“हर्म्यादि धनिना वास प्रासादो देवभूभुजाम् । सौधोऽस्त्री राजमदनम्”
२।२।१०। इत्यमरः ।

१एकादश समाने । समान मातीति^२ समः । समान सदृशो वर्णोऽत्य सवर्णः । समाना ज्ञातिः अस्य सहाति । समान इव दृश्यते सदृशः । “^३समानान्ययोश्च” सक् प्रत्यय । शस्य च पत्वम् । “षट् ४ कस्ते” षस्य कत्वम् । “कपयोगे” क्त्वा । समान इव दृश्यते सदृशः । “^६समानान्ययोश्च ट्कप्रत्यय । अत्रात्र । कानुबन्धत्वादगुणनिषेध । टानुबन्धत्वाद्वादादौ पठ्यत । “दक् ७ दश” इति समानस्य सभाव । समान इव दृश्यते सदृक् । “^८समानान्ययोश्च” क्त्वा । तुलया सम्मितस्तुल्यः । समनो धर्मो यस्य सधर्मः । समान रूप यस्य स सरूपः । “^९रूपनाभगोत्रस्थानवर्णवर्धोवयस्सु” इति समानस्य सादेश । तोलन तुला । “^{१०}तोलेकच” अङ् प्रत्यय । आकाररखाकारश्च । कपति कक्षा । उपमा । विधा । प्रग्व्य । प्रकाश । प्रतिम । मन्त्रिमः । प्रकार ।

विन्मान्यो विद्यमानश्च गुरुस्थानाम्बुजाननाः ।

१०

सिंहादीनि च पर्यायमुपमानेषु योजयेत् ॥ १३७ ॥

योजयेत् जोडयेत् । पर्यायं विशेषणम् उपमानेषु । विन्सम । वित्सवर्णः । वित्स-
ज्ञातिः । वित्सदृक् । वित्सदृशः । वित्सदृक् । वित्तुल्यः । वित्सधर्मः । वित्सरूपः । वित्तुल्यः । वित्सधर्मः ।
अनेन प्रकारेण मान्यविद्यमानगुरुस्थानाम्बुजाननसिंहादिशब्दा उपमानेषु प्रयोजनीयाः ।

व्यपदेशो निभं व्याजः पटं व्यतिकरश्छलम् ।

१५

छद्म

सम कैतवे । व्यपदेशेन व्यपदेशः । पुंसि । निरु अतिशयेन भाति निभम्^१ । व्यज्यते व्याजः ।
पुंसि । पद्यते गम्यते कैतवेन पदम् । व्यतिकरण व्यतिकरः । छलति छलम् । क्लोवे छद्मार्थनि
छद्म^२ । नान्तम् । क्लीबम् । कैतवम् । कपटम् । कूटम् । उपाधिः । मिषम् । लज्जम् ।

वृत्तान्तमुत्प्रेक्षा शब्दमन्यं च निर्णयेत् ॥ १३८ ॥

२०

३१ वार्तायाम् । वृत्तस्य चरितस्यान्तो वृत्तान्तः । उत्प्रेक्षणम् उत्प्रेक्षा । वार्ता । प्रवृत्ति । उदन्तः ।

१ अत्र समाख्य सरूपान्ता नव समाने । तुलाकक्षोपमा विधा इति चत्वारस्तुलायामिति
पार्यक्येन वक्तव्येऽपि सदृशाऽभिप्रायेण तदाह । कचिदभिधेति पाठः । परन्तु तुल्यार्थकविधाशब्दोऽत्र युक्तः ।
एव च त्रयोदश इति वक्तव्यम् । अभिधापाठे तु “उपमाभिधा” इत्यनयोरुपमावाचकत्वे मति “एकादश”
इति सङ्गच्छते । २ मकारे परे समानस्य सादेशविधायकवचनाभावात्समान मातीति विग्रहधिन्य ।
‘सम वैकल्ये’ समति वैकल्य करोतीति सम । समः समस्य वैकल्य करोत्येव । पचाद्यच् । ३ “कर्मण्यु
पमाने त्यदादो दशष्टक् नकौ च” का० सू० ४।३।७५। अत्र वृत्ति । ४ का० सू० ३।२।४। ५ का० सू०
४०२।५६ । ६ “समानान्ययोश्चेति वक्तव्यम्” इति वार्तिकरूपणोपलभ्यते । ७ का० सू० ४।३।८५।
कातन्त्रसूत्रन्तु नैतादृशमुपलब्धम् । वृत्तिरपीदृशी कार्ष्णि नास्ति । काशिकाया टीकां कवचनसाम्येऽपि प्रत्य-
यस्वरूपसाम्य नास्ति । ८ “दृग्दृशदृक्षेपु समानस्य स” का० सू० ४।६।६५। ९ का० सू० ४।२।७५।
वृत्ति । १० “ज्योतिर्जनप्रदरात्रिनाभिनाभगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धु” इति० पा० सू० ६।३।८५।
१० वाचनिक नैतत् । अनुलोपमाभ्यामिति ज्ञापितमिति प्रतिभाति । ११ व्यपदिश्यते व्यपदेशोऽतद्रूपस्य
ताद्रूप्यम् । १२ नि नितरा तदिव भाति निभम् इत्यन्यत्र । १३ व्यजन्ति विज्जिपन्ति अनेन व्याजः । “अत्र
गतिक्षेपणयो” । घञ् । १४ छ्यति छिनत्ति वस्तुतन्वमनेनेति वा । छो छोदने । कल प्रत्यय । १५ छाद्यते
रूपमनेन छद्म । मनिन् । ह्रस्वः । “छद्म अपवारणे” । चुगादिः । १६ लङ् शब्दोऽप्ययम् । १७ वृत्तोऽनुस-
धानीयो गवेषणीयोऽन्तः समातिर्यस्येति रामाश्रमः ।

व्रातः^१ पूगः समाजश्च समूहः सन्ततिव्रजः ।

व्यूहो निकायो निकुरो निकुरम्बं कदम्बकम् ॥ १३६ ॥

ओघः समुदयः सङ्घः मङ्घातः समितिस्तति ।

निचयः प्रकरः पङ्क्तिः

विशतिस्समूहेः । वृणोति ह्लादयति व्रातः^१ । पूज्यते पूयते वा पूगः^२ । सवीयते समाजः^३ । घञ् । समूह्यते सम्भृगं दौक्यते समूहः । सतन्यते सन्ततिः । व्रजन्त्यत्र व्रजः । उभयम् । विशेषेण उह्यते व्यूहः । ५ निचीयते ऽसौ निकायः । कायश्च । निकीर्यते निकरः । समन्तान्निकुरन्ति^४ वदन्ति (छिन्दन्ति) निकुरम्बः । कुत्सितम् अम्बते कदम्बम् । स्वार्थे के कदम्बकम् । द्वौ क्लीबे । उह्यते ओघः^५ । “न्यङ्क्वादीना” इह्यश्च ।^६ समुदीयते ऽत्र समुदयः^७ । समुदायश्च । महन्त्यन्ते ऽस्मिन्नवयवा सङ्घः । महन्त्यते सघातः । हन्तेर्घः । इण् गतोः समपूर्वः । समयनः समितिः । स्त्रिया क्ति । तननं तति । निचीयते ऽसौ निचयः । १० उच्यते । प्रचयः । सञ्चयः । प्रक्रियते प्रकरः । पचि विस्तारवचनः । पञ्च । उदनुब्रम्हाना धातूना नलीयो नास्तीति । पञ्चन पङ्क्तिः । स्त्रिया क्ति ।

पशूनां समजो व्रजः ॥ १४० ॥

पशूनां व्रजः समूहः समजः कथ्यते । अजः क्षीरगे । अन् समपूर्वः । समजनः समजः । ‘एमुदोरञ्ज पशुपु’^१ अल् ।

१५

समीपाभ्याममासन्नमभ्यर्णं मन्निधिं विदुः ।

अविदुं च निकटमवलग्नमनन्तरम् ॥ १४१ ॥

नव समीपे । समानोति समीपम्^१ । अभ्युपेत्य चाभ्यर्णं अभ्यासः । घञ् । आसद्यते स्म आसन्नम् । अर्दं गतो याचने च । अर्दं अभिपूवः । अभ्यर्दति स्म अभ्यर्णः । निष्ठात् । “सामीप्ये ऽभे”^२ नेट् । दाह”स्य च” टकारतकारयोरन्तत्वं । “पृष्ठः”^३ —धातोरन्कारस्य णत्वम् । “तवर्गस्य”^४ निष्ठा- २० नस्य णत्वम् । सन्निवीयते मन्निधिः । अ(व)विदुनोतीति अविदुर्म । “दुनोते दीर्घश्च”^५ दुनोतेर्गकप्रत्ययो भवति दीर्घश्च । टट् उपताप । निकटति निकटम् । (नि)नान्ति कटोऽप्येति च निकटः । कटे वर्पाऽवसरणयोः । अवलगति (स्म) अवलग्नः । न अन्तरम् अनन्तरम् । समीडम् । समर्थादम् । आगतम् । सदेशम् । उपक-

^१ चेतनाचेतनसर्वसमूहे व्रातादयो विशतिशब्दा प्रयुज्यन्ते । ओघो वर्गश्च सन्तान इति वशस्यावान्तरवर्गभेद इति द्रष्टव्यः । परन्तु व्यवहारे प्रयोगमाङ्ग्यमपि दृश्यते । २ “वृत्रवर्गः” । आतक् प्रत्ययः । अन्यत्र तु व्रत्यते एकस्मिन् राशौ नियम्यते उति मुण्डमिश्र इति ण्यन्ताद्व्रतेर्घञ् । व्रातच्छनोर्गति निर्देशाद् दीर्घः । ३ पूज्यते राशित्वेन मन्यते, पूयते जनसमुदायान् राशिभेदेन निर्वाच्यते वा पूगः । “छापूर्वविभ्य क्ति” । उ०सू० १२४ । इति वृट् पूजो वा किद् ग प्रत्ययः । पूगयते पूगसातुत्वे घञि कृतेऽपि स्थानिवत्त्वेन ण्यन्तात्कुत्वट्स्वाध्यम् । ४ “अत्र गतिक्षेपणयो” । घञ् । ५ “कुर् छेदने । बाहु-लकादम्बच् । अस्थोत्वे निकुरम्ब इत्यपि । ६ आङ्पूर्वाद्दृहतेर्घञ् । “ऊह वितर्के । ७ का० सू० ४।६।५७ । ८. सम-उद्पूर्वकः “इण् गतोः” इण्धातुः । अलि समुदयः । घञि समुदायः । ९. “समुदी-र्गणमशसया.” का०सू० ४।५।६४ । इति हन्तेर्ङप्रत्ययो धादेशश्च । १० का०सू० ४।५।५१ । ११. सङ्गता आनोऽस्मिन्निति विग्रहे समासः । अचसमासान्तः । “द्व्यन्तरूपसंभोगोऽप ईत्” इतीकारः । उपनारादभ्यर्णमपि समीपम् । १२ का० सू० ४।६।६७ । १३. का० सू० ४।३।१०२ । १४. का० सू० २।४।४८ । १५ “तवर्गस्य पटवर्गाद्वर्गः” का० सू० ३।८।५ । १६ का० उ० सू० ६।५ ।

पठम् । अ-यग्रम् । सन्निकटम् । आसन्नम् ।

जित्या हलिर्हलं सीरं लाङ्गलम्

पञ्च हले । जि जये । जि । जीयते **जित्या** । “जयतेर्हली क्यवेव” क्यप् । “घातोऽस्तोऽन्त-
पानुबन्धे ।” “ऽस्त्रियामादा” । हलति हलि । महद्वल हलिरुच्यते । भूमि हलति विलिखति **हलम्** ।
५ सीयते बध्यते वरत्रया **सीरम्** । लङ्गति भूमि गच्छति **लाङ्गलम्** ।

तत्करो बलः ।

हलपर्यायतः करपर्यायेषु बलभद्रनामानि भवन्ति । जित्याकर । हलिकरः । हलकरः । सीरकर ।
लाङ्गलकरः । हलपाणिः । इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

रेवतीदयितो नीलवसनः केशवाग्रजः ॥ १४२ ॥

१० त्रयो बलभद्रे । रेवत्या दयितो भर्ता **रेवतीदयितः** । नील कृष्ण वर्ण वसन यस्य स
नीलवसन । केशवस्याग्रज **केशवाग्रज** । कालिन्दीकर्षण । बल । प्रलम्बघ्न ।

अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः श्वेतवार्जा कपिध्वजः ।

गाण्डीवी कामुकी मध्यमाची मध्यमपाण्डवः ॥ १४३ ॥

वृषसेनः मुनिर्मोको दैत्यारिः शक्रनन्दनः ।

१५ **कर्णशूली** **किरीटी** च शब्दभेदी धनञ्जयः ॥ १४४ ॥

ममदशार्जुने । अर्जुनं सत्रं अर्जने । अर्जति (कीर्तिम्) **अर्जुन** । “ऋकृतृवृज् यमिदार्यजिन्ध उन् ।
फल निपत्तौ । फलतीति **फाल्गुन** । “पिथुनफाल्गुनो” एतो उन्प्रत्ययान्ता निपात्येते । जयतीत्येव
शीलो **जिष्णु** । “जिषुवो स्तुक्” । श्वेता वार्जिनो यस्य स **श्वेतवार्जा** । कपिवर्नरो वज्रे यस्य स
कपिध्वज । गा जीवतीत्येवशालो **गाण्डीवी** । कामर्क वनुरस्तीत्यय **कामुकी** । मध्ये माचयतीति
२० **मध्यमाची** । मध्यमश्चासौ पाण्डवः **मध्यमपाण्डव** । युधिष्ठिरमीमयो सहदेवनकुलयोर्मन्य-
तेन मध्यमपाण्डव उच्यते । वृष सिनोति व नातीति **वृषसेन** । मुनिमुच्यते शत्रुभि **मुनिर्मोक** । दु सा-
ध्यत्वात् । दैत्यस्यारिः शत्रुर्दैत्यारिः । शक्रस्येन्द्रस्य नन्दन **शक्रनन्दनः** अर्जुन उच्यते । यस्य पुत्रो
युधिष्ठिरः । वायोर्भाम । इन्द्रस्यार्जुनः । अश्विनीकुमार्यान्कुलमहदेवो पुत्रो । अस्यमेव तत् । कर्णे शूल
विद्यते यस्यासौ **कर्णशूली** । किरीट शिखरं विद्यते यस्यासौ **किरीटी** । शब्दभेदोऽस्यस्य शब्दभेदी ।

१. का० सू० ४।२।२६ । अत्र तुर्गवृत्तिः । २. का० सू० ४।१।३० । ३. का० सू० २।४।४६ ।
४. का० उ० सू० २।६० । ५. का० उ० सू० २।६१ । ‘फल निपत्तौ’ उन्प्रत्ययो गोलान्तश्च ।
फलति कर्मसिद्धिमयते इत्यर्थः । ६. का० सू० ४।१।१८ । ७. गा जीवतीति बोध्यम् । विराट् नगरे
पाण्डवानुसन्धानाय भीष्मकर्तृकगवाक्षमणोऽर्जुनद्वाराक्षयस्य महाभारतोक्तत्वात् । वस्तुतस्तु गाञ्जीव
गाण्डीवमिति अर्जुनधनुषो नाम, तदस्यास्तीति गाञ्जीवी इति मत्वर्थीय इन् । तदुक्तं कल्पद्रुकोपे—
“गाण्डीवो गाण्डिवोऽस्त्रियाम् । गाञ्जीवो गाण्डिवोऽप्यस्त्री” इति १।५।४४ मूले गाण्डीवीशब्दस्तु गाण्डी
ग्रन्थिरस्यास्तीति गाण्डीवम् । “गाण्ड्वजगात्मज्ञायाम्” पा० सू० ५।२।२१० । इति मत्वर्थीयो वः ।
तदस्यास्तीति मत्वर्थीय इन् । ८. मध्येन वामपाणिनाऽपि सच्यते बाणान् वर्षतीति मध्यमाची ।

कैचित् शब्दवेदीति पठन्ति इत्यपि स्यात् । जि जये । धनपूर्व । धन जितवान् धनञ्जयः । “नाम्नि”
ख । “२नाम्यन्त०” गुणः । “ए^३अय्” । “ह्रस्वा^४रूपोर्मांतः ।” धनञ्जयेति कवेर्नामाभिधानमपि ज्ञातव्यम् ।
स कथम्भूत ? शब्दभेदी । अतः” पर कोऽपि नास्ति । पाण्डवनाम मिषेण स्वनाम कथितमस्ति ।

कुरुकीचकयोवैरी वायुपुत्रो वृकोदरः ।

कुरुवैरी । कीचकवैरी । कुरुगत्र । कीचकशत्रु । कुरुगुणः । कीचकरिपु । अनिलसुत । ५
पवनात्मज । इ यादीनि भीमस्य पर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । वृकोऽरण्यश्वा तद्वत् उदर यस्य स वृकोदरः ।

समवर्ती यमः कालः कृतान्तो मृत्युर्गन्तकः ॥ १४५ ॥

पङ्क्यमे । सर्वेषु सम नृत्य वर्तते समदर्शी । नान्त । रिपौ मित्रे च सम वर्तते इति वा । यम-
यति निगृह्णाति प्रजा यमः । यमलजातत्वाद्वा । कलयति जन्तून् विनाशहेतुत्वेन कालः । कृतोऽन्तो
विनाशो येन स कृतान्तः । प्रियतेऽनेनेति मृत्युः । “भुजिङो युक्त्युक्तौ” । अन्तं करोतीति अन्तकः । १०
शमन । प्रेतपति । पितृपति । कीनाशः । धवस्वत । कालिन्दीमादयः । धर्मराज । दण्डवरः । हरि ।
दक्षिणापति । आद्वेदेव ।

तदात्मजो जातरिपुः कौन्तेयो भरतान्वयः ।

कौन्तेयो राजयक्ष्माऽसौ सोमवंशो युधिष्ठिरः ॥ १४६ ॥

सम युधिष्ठिरे । तस्य धर्मस्यात्मजस्तदात्मजः । समवर्तिपुत्रः । यमोद्बहः । कृतान्तपोतः । १५
मृत्युनन्दन । अन्तकदारकः । इत्यादीनि युधिष्ठिरपर्यायनामानि ज्ञातव्यानि । जातस्य स्वगोत्रस्य रिपुः
“जातरिपुः । कुन्त्या अपत्य पुमान् कौन्तेयः । भरतोऽन्वयोऽयं भरतान्वयः । कुरोरपत्य
पुमान् कौरव्यः । राजभिर्नरेन्द्रैर्यक्ष्यते पूज्यते राजयक्ष्मा । ” सर्ववातुभ्यो मनः । राजलक्ष्मा चेति
त्रैचित्यपठन्ति । सोमो वशोऽयं सोमवंशः । युधि सश्रामे तिष्ठतीति युधिष्ठिरः ।

श्वेतार्जुनो शुचिः श्वेतो बलक्षः सितपाण्डुरम् ।

शुक्लावदात धवल पाण्डुः शुभ्रं शशिप्रभम् ॥ १४७ ॥

त्रयोदश श्वेत । प्रेतते श्वेतः । अर्जुनेऽर्जुनः । शोचतीति शुचिः । शुचः शोके ।
श्यायते श्येतः । अवलक्षयति अवलक्षः । बलक्षः । सिनोति बध्नाति (मनः) सित । पण्डते याति
मनोऽत्र पाण्डुरः । अथवा ‘नगराशुपाण्डुभ्यो र’ पाण्डुत्वमस्यास्तीति पाण्डुरः । पाण्डु । पाण्डर । शोचति
मनोऽस्मिन् शुक्लः । शुक्लः गतौ । अवदायते शोच्यते अवदातः । धवति धवलः । पण्डते याति २५

१ “नाम्नि तुमृष्टाज्जघारितपिष्टमिसहा सजायाम वा० स० ४।३।४४ । २ का० स०
३।५।१ । ३ का० स० १।२।२ । ४ का० स० ४।२ । २२ । ५ धनञ्जयापर कश्चिच्छब्दभेदेन
नास्तीत्यर्थः । ६ वृको भीमजठराग्निः स उदरे यस्येत्यपि । ७ कलयनीत्यस्य स्थाने कलयतीति
वक्तव्यम् । ८ का० उ० सू० २।३४ । ९ अन्तङ्गरेत्यन्तवति, अन्तवत्यन्तक इति यावत् ।
१० कोशान्तरप्रमाणमहाभारतादिकथाम्बादात् महाकविष्वधाराच “अजातरिपु” इतिच्छेदोऽत्र युक्तः ।
न जाता रिपवो यस्येति युधिष्ठिरस्य “अजातशत्रु” इति मन्त्राः । तदुक्तम्—“अजातशत्रु शल्यारिर्धर्मपुत्रो
युधिष्ठिरः” । अमि० चि० ३।३०८ । ११ का० उ० सू० ४।२८ । १२ “श्विता वणैः” । न्वादि० आत्म० ।
पचायच् । १३ अर्जुने सङ्ग्रह्यते जनैः । १४ शुच्युज्ज्वलवस्तूना सर्वसङ्ग्रहणीयत्वं लोकानुभवसिद्धम् ।
शोचति निर्मलीभवति शुचिः । शुचः दीप्तिः । इक् । १५ श्वैड् गतौ । श्यायते गच्छति
नीलादिवर्णविशुद्धत्वम् । “दृश्याभ्यामितन्” । वा० उ० सू० ३।९३ । इतन् । १६ अवलक्षयति अव-
लक्ष्यते वा अन्यवर्णपिच्छया उत्कृष्टत्वेनेति । वष्टि भागुरिरल्लोप इत्यल्लोपपक्षे । १७ अवदायते रम ।
दैप् शोधने । कर्मणि क्तः । १८ धुनोत्यशोभाम् इति ह्रस्वचन्द्रः । धावति मनोज्ञः । धातु गतिशुद्धयो ।
कलच्, ह्रस्वश्चेतीति रामाश्रमः ।

मनोऽस्मिन् पारङ्कु^१ । शोभते शुभ्रः । शशिन द्व प्रभा यस्य शशिप्रभम् । गौरः । हरिण ।

कृष्णं नीलासितं कालम्

चत्वार कृष्णे । वर्णान् कर्षति^२ कृष्णः । नीलति नीलम्^३ । उभयम् । न सितम् अस्मितम् ।
क सुखमालाति कालः । कालयति वा मन "काल । मेचकम् । श्यामलम् । श्याम च । पालाशम्"^४ ।
५ हरिन् । शिखिकण्ठाभ इति दुर्गः ।

धूमं धूममलिप्रभः ।

विशिष्टकृष्णे त्रय । धूनीति धूमः । 'धूमोत्थमिभवति राग धूमः । धूमलश्च । अलि-
वत्प्रभा यस्य मोल्लिप्रभ ।

तमोऽन्धकारं तिमिरं ध्वान्तं संतममं तमम् ॥ १४८ ॥

१० ताम्यति मन्दीभवति चक्षुरत्र तम । सान्तम् । क्लृप्ते । अन्य दृष्ट्युपपात करोतीति अन्ध-
कारम् । तिम्यते आच्छाद्यतेऽनेन तिमिरम् । कान्तारे ध्वन्यते ध्वान्तम्^१ । तमः सम्यक् प्रकारेण तमः
सन्तमसम् । ताम्यतीति तममित्यदन्तम् । क्लृप्ते । अवतमसम् । अन्धतमसम् । तमिस्रम् । भृङ्गाया ।
भङ्गायम् । विगम्बरम् ।

लोहितं रक्तमातम्र पाटल विशदारुणम् ।

१५ पट् रक्ते^२ । रंहति जायते शाभाऽत्र लोहितः । रज्यते रक्तम्^३ । आताम्यते कटक्षयने
रङ्गेषु आताम्र । पाटयतीति पाटलः । पाटेरुलः । विशीयते विशदः । अचच्छति रक्त-
(र्ति वाऽ) रुणः ।

पीतं गौरं हरिद्राभम्

हरिद्रारक्तवर्णे त्रय । पोयते मनोऽनेन पीतम्^४ । गान्ते गच्छति वर्णविशेषं गौरः^५ ।
२० तथा च नाममालायाम्^६ — "गौरः उवेतेऽरुणे पीते विशुद्ध चन्द्रमस्यपि । विशदे" । हरिद्रावत् आभा
लुचिर्यस्य हरिद्राभ ।

पालाशं हरितं हरित् ॥ १४९ ॥

हरितवर्णे त्रयः । पलाशस्य वर्णस्याय पालाशः । पलाश इत्याह^१ — "राक्षसे । किशुके
यणे पलाशाख्या । हरित्यपि" । हरति चित्त हरितम् । हरित् ।

१ पन्यते स्तूयते पाण्डुः । "पनेर्दीर्घः" इति डु । इति हेमचन्द्र । २ कर्षति मन इति
रामाश्रम । कृषेर्वर्ण इति नरु । ३ "शील वर्णः" । नाम्युपधेति का० सू० कः । ४ कालयति मन
इत्यन्यत्र । ५ अय पाठोऽत्र न युक्त । "पालाश हरित हरित" इति पद्यस्य टीकायामग्रे द्रष्टव्यः । ६ कृष्ण-
मिश्रितलोहिते धूमधूमलशब्दाविति वैशिष्ट्यार्थ । तदुक्तम् — "धूमधूमला कृष्णलोहिते" इत्यमरः । १।५।१६ ।
७. कान्तारप्रदेशादिषु तममोऽविच्छिन्ननिवेशात्तदाह — "कान्तारे ध्वन्यते" इति । सर्वरोगहरतया ध्वन्यते
ध्वान्तमिति हेमचन्द्र । ८ अय द्वा रक्ते, त्रयो विशदारुणे एति वक्तव्यम् । विशद च तद्रूपम्, श्वेत-
विशिष्टरक्तमित्यर्थ । तदेव पाटलम् । तदुक्तम् — "श्वेतरक्तस्तु पाटलः" इत्यमरः । ९ "इह बीजवन्मनि
प्रादुर्भावे" । "इह रश्च लो वा" । पा० उ० सू० ३।१४ । इतीतन्, लत्व च वा । १० रज्ज्जति स्म रज्यते स्म
वा रक्तमित्यन्यत्र । ११ पोयते वर्णान् पीतः । "पीट् पाने" । टि० इत्यपि । १२ गूरते उद्युङ्क्ते मनोऽस्मिन्
गौर । "गूरी उद्यमने" । अज्रेन्द्र इत्युणादिसंज्ञेण व्युत्पादित । "गूर्यते गौरः" इति हेमचन्द्र । 'गृड
मश्लेपणे । १३ अने० म० २।४५५ । १४ शा० को० ५२९ ।

हरिणी लोहिनी शोणी गौरी श्येनी पिशङ्गयपि ।

पट् रक्तवर्णं^१ । “श्येतैतद्वरितलोहितेभ्यस्तो नः”^२ अनेन ईप्रत्यये तकारस्य नकारश्च । हरिणी । तथा च हलायुधे^३—“शुकाभा हरिणी स्मृता ।” हरिता च । रोहित जायते शोभाञ्च लोहित । रलयोरुक्त्यम् । “श्येतैतद्वरितलोहितेभ्यस्तो नः” अनेन ईस्तकारस्य च नकार । लोहिनी जाता । हलायुधे^४—

“जपाकुसुमसकाशा लोहिनी परिकीर्तिता”

शोणते शोणी । गते गौरः । नदादित्वादीः । गौरी । श्यायते गच्छति श्रिय श्येनी ।^५ हलायुधे^६—“श्येनी कुमुदपत्राभा ।” श्येना च । पेशति पिशङ्ग । ईप्रत्यये पिशङ्गी ।

मारङ्गी शवरी काली कल्माषी नीलपिञ्जरी ॥१५०॥

पट् पत्र वर्णं । सारयति गमयति [बहुवर्णान्] सारङ्गः । ईप्रत्यये सारङ्गी । शवति याति वर्णान् शवरी शवलश्च । ईप्रत्यय शवरी । कालयति कालः । ईप्रत्यये काली । कलयति वर्णान् कल्माषः । ईः कल्माषी । नील गन्धं । नीलति नालम् । ईप्रत्यये नीलो । पिञ्जति पिञ्जरः ।^{१०} ईप्रत्यये पिञ्जरी ।

परागं मधु किञ्जल्क मकरन्दं च कौसुमम् ।

पत्रं कुसुमरेणो । परं प्रकर्षमयते सम्भाव्यते पुष्पेषु परागः^१ । उभयम् । मन्यते सम्भाव्यते पुष्पेषु मधु । उभयम् । किं जल्पति किञ्जल्कम्^२ । मङ्गयते मण्डयते पुष्पमनेन मकरन्दम्^३ । कुसुम-^{१५}येदं कौसुमम् ।

उपचाराद्रजः पांशुरेणुधूलीश्च योजयेत् ॥१५१॥

चत्वारो धूल्याम् । रज रागे । रजत्यनेन रजः । “उत्पिरजिभ्यो यण्वत्”^१ । नाक धाक पशि नाशने । पशयते पांशुः । “^२बहिरहितलिपशिम्य उण् ।” रीड् गतो । रीयते रेणुः । “दामागीवृन्मयो नुः”^३ । धूयते धुनोति दृष्टि वा धूलि । उपचारात् पुष्परजः । सुमनःपाशुः । पुष्परेणुः । लतान्तधूलि ।^{२०} प्रमवर्जः । प्रमनरेणुः । इत्यादीनि पुष्परजो नामानि ज्ञातव्यानि ।

कलङ्कावधमलिनं किञ्जल्कं लक्ष्म लाञ्छनम्

निबोधमध्रमं पङ्कं मलीमममपि त्यजेत् ॥१५२॥

१ अत्र षट्छीलिङ्गवाचकं तत्तद्वर्णविशिष्टे इति वक्तव्यम्, न तु रक्तवर्णं । तत्तद्वर्ण-
भेदा यथा—हरिणी शुकाभा, लोहिनी जपाकुसुमङ्काशा, शोणी कोकनदच्छवि, गौरी हरिद्राभा, श्येनी
कुमुदपत्राभा, पिशङ्गी पीतरक्ता । २ “श्येतैतद्वरितलोहितोहिताद् वर्णान्तो नः” ह० श० २।४।३६ । ३ “श्येनी
कुमुदपत्राभा शुकाभा हरिणी स्मृता । जपाकुसुमसङ्काशा रोहिणी परिकीर्तिता ।” इति पूर्णं श्लोकः ।
४ हलायु० ४।५३।४ हला० ४।५३ । ५ हला० ४।५३ । ६ अत्र षट् छीलिङ्गवाचके तत्तद्व-
वर्णविशिष्टे इति वक्तव्यम् । तद्भेदो यथा—सारङ्गीशम्बरीकल्याण्यश्चित्रवर्णा । काली नील्यावसिते ।
पिञ्जरी पीतरक्ता । ७ अत्र परागकिञ्जल्कशब्दौ पुष्परजोवाचकौ, मधुमकरन्दशब्दौ पुष्परसवाचकौ, कौसुम-
शब्दस्तदुभयवाचकः, इति विवेकः । ८ परागच्छति परमुत्कर्षमगति वेति विग्रहः सरलः ।
९ किञ्चिज्जलति, “जल अपवारणे” । बाहुलकात् । किञ्चिज्जलति जडीभवति इति द्वी० स्वा० ।
१० मकरमपि यति कामजनकत्वान्मकरन्द । “दो अवखण्डने” । कः । मकरमपि अन्दति बध्नातीति वा ।
“अदि बन्धने” । कर्मण्यण् । शकन्वादिः । इति रामाश्रम । ११ का० उ० सू० ४।५९ । १२ का० उ०
सू० १।३।१३ का० उ० सू० २।७ ।

दश कलङ्के । कल्पते लक्षणेन कलङ्कः^१ । न वद्यं समीचीनम् अवद्यम्^२ । मल्यते धार्यतेऽप्यशो-
ऽनेन मलिनम् । किं कुत्सित, जल्पति किञ्जल्कम् । लक्षयति परं नान्तम् लक्षम् । लाञ्छयतेऽनेन
लाञ्छनम् । निबुध्यते निबोधम्^३ । नञ्पूर्वो धाञ् । न दधातीत्यधमः । “धर्मसीमाग्रीष्माधमाः”^४ ।
“पञ्च्यते षङ्गम् । मलिना कदर्येण मस्यते^५ परिमाणीक्रियते मलीमसः । तं त्यजेत् सत्पुरुष ।

५

जनोदाहरणं कीर्तिं साधुवादं यशो विदुः ।

वर्णं गुणावलिं ख्यातिं

सप्त यशसि । जनानां लोकानामुदाहरणं, जनेन लोकेनोदाह्रियते वा जनोदाहरणम् । कृत
सशब्दे । कृत्—“चुरादिश्च”^७ । इन् । कृत “कारिते इर्” । कीर्तिं जात । नामिनोर्वा^८ । कीर्तिं जातम् ।
कीर्तनं कीर्तिः । “कीर्तीषोः क्तिश्च”^९ । क्तिप्रत्यय । कारितलोप । त्रिषु व्यञ्जनेषु सञ्ज्ञातेषु स्वजातीयानां मध्ये
१० एकव्यञ्जनलोपः । एकस्तकारो लुप्यते । सिः । रेफ । साधूनां सत्पुरुषाणां वादः साधुवादः ।
कुशलो योग्यो हितश्च साधुरुच्यते । यज देवपूजादिषु । इज्यते यशः । “यज शिञ्च”^{१०} अस्मादसन्
प्रत्ययो भवति स च यण्वत् । जस्य शिः । इकार उच्चारणार्थः । वर्ण्यते साधुजनेन वर्णं । गुणानामवलि
श्रेणिः गुणावलिः । ख्यायते ख्यातिः । श्लोक । अभिख्या । समाख्या ।

अवधानं तु साहसम् ॥१५३॥

१५

साहसे द्वौ । अवधीयतेऽवधानम् । अवदानं च । साह्यते^{११} साहसम् ।

प्रेष्यादेशनिदेशाज्ञानियोगाः शासनं तथा ।

षडादेशे । प्रेष्यते इति प्रेष्य । आ समन्ताद् दिशतीत्यादेशः^{१२} । निदिश्यते निदिशतीति वा
निदेशः । आजानातीत्याज्ञा^{१३} । नियुज्यन्ते नियोगाः । शास्यते प्रतिपाद्यते शासनम् । शासु
अनुशिष्टौ ।

२०

सन्देशः प्रिययोः

स्त्रीपुरुषयोः मुखवार्तायां सन्देशः । सन्दिशति^{१४} सन्देशः । अमरसिंहनाममालायाम्^{१५}—
“सन्देशवाग्वाचिक स्यात् ।”

वार्ता प्रवृत्तिः किंवदन्त्यपि ॥१५४॥

त्रयो नवीनवार्तायाम् । वृत्तिलोकवृत्त विद्यतेऽस्या वार्ता । “प्रज्ञाश्रद्धाऽर्चावृत्तिभ्यो ण”

१ क ब्रह्माणमपि लङ्कयति हीनता गमयतीत्यन्यत्र । २ न वदितु योग्यमित्यवद्य गर्हम् ।
“अवद्यपण्यवद्यागर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु” इति यत् । ३ नात्र प्रमाणान्तरमुपलब्धम् । निबुध्यते
निश्चयेन ज्ञायते कलङ्कजनोऽनेनेति करणे घञ् । कलङ्किना राजशासनचिह्नितत्वदर्शनात् । ४. का०
उ० सू० १।५३ । ५ पञ्च्यते टु लमनेन । पचि व्यक्तीकरणे विस्तारे वा । कर्मणि घञ् ।
६ “मसी समी परिमाणे” । पुंसि सञ्ज्ञाया घः । यद्वा मलोऽस्यास्तीति “ज्योस्नातमिस्ते”
त्यादिना मत्वर्थीय ईयस् प्रत्ययः । टीकोक्तविग्रहश्चिन्त्य । तत्र मलीमस इत्यापत्तेः । ७. का० सू०
३।२।११ । ८ कीर्तीषोः क्तिश्चेति निर्देशात् कृत कारिते इर् । ९ “नामिनोर्वोऽकुक्षुरोर्व्यञ्जने”
का०सू० ३।२।१४ । १० का०सू० ४।५।८६ । ११ का०उ० सू० ४।६० । १२ सहसि बले भव साहसम् ।
१३ आदेशनम् आदिश्यते वेति विग्रहः । १४ अत्रापि आज्ञायते आज्ञानं वेति विग्रहः । १५ सन्दिश्यते
इति कर्मणि घञ् न्याय्यः । १६ अम० की० १।६।१७ । १७. पा० सू० ५।२।१०१ ।

स्त्रीस्त्रीने वार्ते च । प्रवर्तते जनोऽनया प्रवृत्तिः । स्त्रियाम् । किं कुत्सितं वदत्यत्र किंवदन्ती^१ ।
वृत्तान्तः । उदन्तः ।

कठोरं कठिनं स्तब्धं कर्कशं परुषं दृढम् ।

षड् दृढे । कठति कृच्छ्रेण जीवति कठोर^२ । कठति कठिनः । स्तब्धोति स्म स्तब्धः । कर्कः
सोत्रोऽयं धातुः । कर्कति करोति निर्दयत्वं कर्कशः । परुष्यति कुप्यतीति परुषः^३ । कुप कुष रुष रोषे । ४
दृह दृहि वृद्धौ । दृहति स्म दृढः । “परिवृद्धदौ प्रभुबलवतो ।” कूरः । कम्बलद । खरः । चण्डः ।
निष्ठुरः । जरठः । मूर्तिमत् । मूर्तम् । प्रवृद्धम् । प्रौढम् । एधितम् । सर्वे त्रिषु ।

अश्लीलं काहल फल्गु

निस्सारे वचसि त्रय । न श्लीयते न श्लिष्यते सता चित्तम् अश्लीलम् । वचनम् । क
शिर आ समन्तात् हलति अशोभमान करोतीति काहलम् । लोहलज्ज । लुह सौत्रः । फल निष्पत्तौ । १०
फलति फल्गुः^१ । “रञ्जुतकुर्वल्गुफल्गुशिशुरिपुपृथुलषव ।

कोमलं मृदु पेशलम् ॥ १५५ ॥

त्रयः कोमले । कौ पृथिव्या मलते कोमलम्^२ । मृद बोदे । मृदनातीति मृदु^३ । पिशति
पेशलम्^४ । सुकुमारः । मृदुलम् ।

प्रत्यग्रं साम्प्रतं नव्यं नवं नूतनमग्रिमम् ।

१५

षड् नवीने । प्रत्यग्रगति प्रत्यग्रम्^१ । सम्प्रति भव साम्प्रतम् । नूयते नव्यम्^२ । नौति
नवम्^३ । नूयते नूतनम्^४ । अग्रे भवम् अग्रिमम्^५ । “पृथादिभ्य इमन्वा” । अभिनवम् ।

१ कोऽपि वाद । किम्पूर्वाद वदेरीणादिको भूक् प्रत्ययः । भन्त्यान्त । गौरादित्वाब्दीष ।
इति रामाश्रम । २ ‘कठिचकिभ्यामोर’ । का० उ० सू० ४।३७ । “कठ कृच्छ्रजीवने” । ३ वष्टि-
भागुरिरल्लोपमित्यपेशल्लोपो नत्वपत्सेति टीकोक्तविग्रहश्चिन्त्य । रामाश्रमस्तु—“पिपति पूरयति अल
बुद्धि करोति । “पू पालनपूरणयो” । “पूनहि” इत्यादिना उ० सू० ४।७५ । उषच् । इत्याह ।”
पृणाति पूरयति पर कोपेनेति हेमचन्द्रः । ४. का० सू० ४।६।९५ । ५ न श्रिय लातीति
अश्लोल्म । कप्रत्ययः । कपिलकादित्वालत्वम् । इति रामाश्रमः । न श्रौरस्यास्तीति सिध्मादित्वाभ-
त्वर्थो ल । ६ काहलोऽस्फुटवागिति हेमचन्द्र । ७ फलति विशीर्यते इत्यन्यत्र । ८ का० उ० सू०
१।९। इत्युप्रत्यय गश्च । ९ कौ पृथिव्या मलते धारयति श्रियम् इत्यर्थः । “मल मल्ल धारणे”
पचाद्यच् । परमेव कुमल इत्येव सिध्यति । वस्तुतस्तु ‘कोमल’ शब्दस्य सिद्धिः प्रकारान्तरेणैव साधनीया ।
कौतीति कोमल इति विग्रहोऽभिधानचिन्तामणौ । काभ्यते जनैः इत्यन्यत्र । १० मृयते इति कर्मणि कु-
प्रत्ययो न्यायः । ११ पिशत्येकदेशेन सर्वं करोतीति । श्रौणादिकांलच् । रामाश्रमस्तु—“पिश समाधौ”
पेशन पेश समाहितचित्तता, सोऽस्यास्तीति सिध्मादित्वादलच् इत्याह । पेशलशब्दस्य दत्ताथौ मुख्यः
कोमलाथौ गौणः । तदुक्तम्—“दत्ते चतुरपेशलपटवः सूत्थान उष्णश्च” इत्यमरः । २।१०।१९ ।
“दत्तस्तु पेशलः” इति अभि० चि० ३।४८ । १२ “अग्र गतो” । ड । प्रतिनवमग्रमत्येति क्षीरस्वामि-
रामाश्रमौ । प्रतिगतमग्रमनेनेति हेमचन्द्रः । १३ ‘णु स्तवने’ । अचो यत् । १४ नूयते नवम् ।
श्रद्धोदप् । एव कर्मणि विग्रहो युक्तः । १५ नवमेव नूतनम् । “नवस्य नूरादेशस्तनपूनाश्च प्रत्ययाः
वा० ५।४।३० । इति तनप् प्रत्ययो नूरादेशश्च । इत्यत्र । १६ ‘अग्रादिपश्चाडिडमच्’ वा० इति डिमच् ।
नात्र पृथादिभ्यः, इमन्, तस्य भावकर्मणोर्विधानात् पृथादौ पाठाभावाच्च । सत्यपि । अग्रिमन् इत्य-
निष्टरूपापत्ते ।

नूनश्च । सर्वे त्रिषु ।

पुराणं जठरं जीर्णं प्राक्तनं सुचिरन्तनम् ॥ १५६ ॥

पञ्च पुरातने । पुरा भवम् पुराणम् । जठ इति सौत्रोऽयं धातु । जठतीति जठरम्^१ । जीर्यते जीर्णम् । प्राक् पूर्व भवम् प्राक्तनम् । मुष्टु चिर भव सुचिरन्तनम् । प्रतनम् । प्रतनम् ।

५

भो रे हं हो हयामन्त्रे

एते शब्दा आमन्त्रणार्थे वर्तन्ते । भू सत्तायाम् । भोः^२ । रेपृ लवगतौ । रे । हनु हिसागत्योः । ह । हु दाने । हो । हि गतौ । हे ।

कश्चित् किञ्चन संशये ।

सन्देहार्थे^३ द्वौ शब्दौ वर्तन्ते । अविशेषाभिधाने चिन्धनशब्दौ अवगन्तव्यौ । तथा चोक्तम्—
१० “किम् सर्वविभवत्यन्ताच्चिन्धनौ” कश्चित् । कश्चन । कौचित् । कौचन । केचित् । केचन इत्यादि ।
स्त्रिया काचित् काचन इत्यादि । क्लृप्ते किञ्चित् । किञ्चन । इत्यादि ।

‘द्राक्क्षणेऽह्नाय’ सपदि^४

शीघ्रार्थे त्रयः शब्दा वर्तन्ते ।

निपेधे मा न खल्वलम् ॥ १५७ ॥

५१

निपेधे चत्वारः शब्दा वर्तन्ते ।

उच्चैरुच्चावचं तुङ्गमुच्चमुन्नतमुच्छ्रितम् ।

पङ् दीर्घे । उच्चैर्यते उच्चैस् । अःययः । उच्च च अवच च उच्चावचम् । तुजति दैर्घ्यमाऽन्ते तुङ्गम्^५ । उच्चैर्यते उच्चम् । उन्नमत्युन्नतम्^६ । उच्छ्रियते उच्छ्रितम्^७ । प्राशु^८ तालव्यः । उदग्रम् दीर्घम् । आयत च ।

२०

नीचं न्यगातनं कुब्जं नीचैर्ह्रस्व नयेत्परम् ॥ १५८ ॥

पङ् ह्रस्वे । नीचैर्यते नीचम्^९ । न्यस्रतीति न्यक् । आतन्यते आतनम्^{१०} । कौति व्याधि कुब्ज ।

१ यद्यपि जरठशब्दो जीर्णे प्रसिद्धो जठरशब्दस्तदरे, तथापि कश्चिजठरशब्दोऽपि जीर्णे पठितस्तदाशयेनाह—जठतीति जठरमिति । यदुक्तम्—‘जठरः कुक्षिवृद्धयो’ अने० स० ३।५५१ ।
२ गतीति भोस् । डोस्प्रत्यय । यथा—भो भार्गव । रिणातीति रे । विच् । यथा रे चेदाः । ह, हो, इति पृथक्स्त्र्योषधनद्वयमुक्तम् । परन्तु नाटकादौ ‘ह हो’ इत्यखण्ड एव सम्बोधने प्रयुज्यते । ह जुहोतीति हहो । यथा हहो तिष्ठ सखे । हिनोति हे । “हि गतो वृद्धो” । विच् । यथा हे हेरम्ब । ३ अविशेषार्थे इत्याशयः । ४ द्राति द्राक् । “द्रा कुत्साया गतौ” । बाहुलकात्कः । अकार इत् । स चासौ क्षणो द्राक्क्षण । ५ आह्वयनम् आहाय “हनुद् अपनयने” । वज् । पृषो-
दरादित्वाद वस्य यः । ६ सगृह्यते सपदि । “पद गतौ” । इन् । पृषोदरादित्वात्समोऽन्त्यलोपः । ७ तुजति दैर्घ्यं पालयतीति । वज् । कुत्वम् । ८ उन्नमति स्म उन्नतम् । ९ उद्ध्वं श्रयते उच्छ्रितम् । १० प्राश्रुते दैर्घ्यं प्राशु । “अश्रुद् व्याप्तौ” । ११ निकृष्टासौ लक्ष्मो चिनोतीति । डः । इति रामाश्रम । निम्नमञ्जति, नीचैरल्यस्य वा । अर्श आदित्वादच् । अव्ययाना भमात्रे विलोपः । १२ नात्र प्रमाण-
मुपलब्धम् । १३ कौति व्याधिविशेषं ब्रूते सूचयति । कौ पृथिव्याम् उब्जति ऋजुभवति । “उब्ज आर्जवे” ।
अच् । शक्त्वादि । कु ईषद् उब्जमार्जवमस्य चेति रामाश्रम ।

न्युञ्जश्च । निचीयते नीचैस् । हसति हस्व ।

अमा सह समं साकं माद्वं सत्रा सजूः समाः ।

अष्टौ सार्धे । अमति अमा । सह हन्ति गच्छति सह । सह मिनोति समम् । सह अकृति गच्छति साकम् । सह ऋद्धम् साद्धम् । सह त्रायने सत्रा । जुषी प्रीतिसेवनयो । जुप् सहपूर्व । सह जुषते सजूः । क्विच वेलोपः । सि । व्यञ्ज० । सिलोप । समन्ति समा । सह मान्ति वर्तन्ते ऋतवो यामा वा । स्त्रीबहुत्वे ।

सर्वदा सततं नित्यं शश्वदात्यन्तिकं सदा ॥१५६॥

पट् नित्ये । सर्वस्मिन् काले सर्वदा । “काले किं सर्वयदेकान्येभ्य एव दा” । सतन्यनेम्म सततं सन्ततम् च । नियच्छति नित्यम् । श्रमतीति शश्वत् । अत्यन्ते भवमात्यन्तिकम् । सदा इति निपात । सर्वशब्दात्परो दाप्रत्ययो भवति सर्वस्य सभावश्च । सर्वस्मिन् काले सदा । मना- १०
तन, सदातनम् । श्रुवम् । शाश्वतम् । शाश्वतिकम् । अनश्वरम् । अविनश्वरम् । सर्वे त्रिषु ।

वियोगं मदनान्नरथां विरहं पल्लकं विदुः ।

चत्वारो विरहे । वियोजन वियोग । मदनस्य वन्द्यस्यावस्था मदनान्नस्था । विरहश्च विरहः । मल मल्ल धारणे । मल्लस्थाने तेचित्पल्ल इति पठन्ति । पल्लते पल्ल । न्वायं क पल्लक ।

प्रेमाभिलापमालभ्य रागं स्नेहमतः परम् ॥१६०॥

पञ्च स्नेहे । प्रियस्य भव कर्म वा प्रेमा । प्रिय स्थिरेति प्रादेशः । अभिलष्यते अभिलापः । लप श्लेषक्रीडनयो । आलभ्यते आलभ्यम् । “सक्सिहिपवर्गान्ताच्च” । रञ्ज रागे । रञ्ज् । रञ्जन रागः । भावेऽपञ् । रञ्जेर्भावकरणयो पञ्चमलोप । अस्यो दीर्घ । चञ्जो “कगो वुट् वानु-
वन्धयोः ।” जकारगकार । प्र० सि । रेफ । अथवारज्यतेऽनेन राग । “व्यञ्जनाच्च” । करणे घट् । प्र० २०
“रञ्जेर्भावकरणयो.” पञ्चमलोप । अस्यो दीर्घ । चञ्जो. कगाविति जकारगकार । स्निह्यते स्नेहः ।

संहितं सहितं युक्तं मण्डूकं संभृतं युतम् ।

मंस्कृतं समवेत च प्रादुर्गन्वीतमन्वितम् ॥१६१॥

१ न माति सह मापिनामनेकत्वान्मेयता न गच्छति । डप्रत्यय । कप्रत्ययो वा । २ “व्यञ्जनाच्च” का० सू० २।१।४६ । ३ “ममी समी परिमाणे” । मम धातु । पचाद्यच् । सममिति मान्तमव्ययम् । महार्थकमत्रोक्तम् । तन्मित्रः समा शब्दो वर्षव चको न तु महार्थवाचक । तदुक्तम्— ‘हयनोऽस्त्री शरत्समा.’ इत्यमरः । अतोऽस्मिन्नर्थे एतस्य प्रामाण्य चिन्त्यम् । सह मान्ति ऋतवो यामामिति विग्रहोऽपि वर्षवाचकसमाशब्द एव सङ्गच्छते । तत्रैव ऋतुना सहमानात् । ४ का० सू० २।६।३४ । ५ ‘तनु विस्तारे’ । क्तः । ‘समो वा हिततयो’ इति नलोप । ६ त्वन्नेष्टुवे नित्यमिति वा० निशब्दाद्यप् । नियच्छति नियत भवतीत्यर्थः । ७ अत्र शशतीति वक्तु युक्तम् । शश लुप्तगतौ । बाहुलकाद्वत् । ८ सनातनादिशब्दानां वियोग्यनिष्ठाणां यथोक्तशश्वदादिशब्दसमानार्थतया टीककृतोक्तिर्न सङ्गच्छते । ९ मल्लकपल्लकशब्दयोर्विग्रहार्थत्वे प्रमाणान्तर नोपलब्धम् । १० पा० सू० ६।४।१५७ । इति प्रादेशः । इमनिच्प्रत्यय । पृथ्वादिभ्य इमनिच्वा इति । ११ आलभ्यशब्दस्य रागार्थे कोपान्तर-
सवादो नोपलब्ध । १२ का० सू० ४।२।११ । १३ का० सू० ४।१।६६ । १४ का० सू० ४।६।५६ । १५ का० सू० ४।५।९९ ।

दश सहिते । सहीयते संहितम्^१ । संहितम् ।

“लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुम्काममनसोरपि ।

समो वा हिततयोर्मासस्य पचि युद्धञ्चोः॥”

योजनं युक्तम्^३ । पृची सम्पक्के । पृच् । सम्पृणक्ति स्म सम्पृक्तम् । “शस्यार्थाकर्मकं^४” इति
५ कर्तरि क्तप्रत्ययः । “चजोः कगो^५”—चत्य क. । सम्भ्रियते स्म सम्भृतम् । यौतिस्म युतम् । सस्क्रियते
स्म सस्कृतम् । समवेयते स्म समवेतम् । अन्वीयते स्म अन्वीतम् । अन्वितम् ।

वर्त्माऽध्वा सरणिः पन्थाः मार्गः प्रचरसञ्चरौ ।

सप्त मार्गे । वर्तन्ते प्रतिपद्यन्ते जना येन तत् वर्त्म । नान्तम् । “सर्वघातुभ्यो मन्” । गच्छति
अतति चलति अनेन नात्तोऽध्वा^६ । सरत्यनया सरणि । दन्ततालव्यः । सतिश्चास्त्रियाम् । द्वौ ।
१० पतन्ति गच्छन्ति अनेन पन्था^७ । नान्त । इदन्तोऽपि पथिः । पथ । पथान् । पन्थ इत्यपि । एते पुंसि ।
मार्जनं मार्गयन्त्यनेन वा मार्गः^८ । पुंसि । प्रकषेण चरत्यनेनेति प्रचरः । सञ्चरत्यनेनेति सञ्चरः ।
पदतिः । एकपदी । वर्तनी । अयनम् । पदवी । पद्या । निगम ।

त्रिमार्गनामगा गङ्गा

मार्गपूर्वं त्रिशब्दे प्रयुज्यमाने गङ्गानामानि भवन्ति । त्रिमार्गा । त्र्यध्वा । त्रिसरणि । त्रिपथा ।
१५ त्रिप्रचरा । त्रिसञ्चरा ।

घोषो गोमण्डलं व्रजः ॥१६२॥

त्रयो गवा स्थाने । घोषन्ते^{१०} गावोऽत्र घोष । गवा मण्डलम् गोमण्डलम् । गावो ।
व्रजन्त्यत्र व्रजः । गोकुलम् । गोष्ठम् ।

शृङ्गो दृतिहरिर्नाथहरिस्तिर्यक्च शृङ्गिगणः ।

२० पञ्च महिषादिके । पर शृणाति हिनस्तीति शृङ्गः^{११} (मृ) । त्रिषु । हृज् । हरणे । हृ दृति-
पूर्वं । दृति चर्मप्लेखक जलमाण्ड हरति वहति दृतिहरि । “हरतेर्दृतिनाथयोः^{१२} पशौ” इत्ययम् ।
नाथ्यन्तगुणः । नाथ स्वामिन हरतीति^{१३} नाथहरि । “हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ” । तिरोऽञ्चयतीति

१ सहीयते इति विप्रहो न युक्तः । सम्पूर्वस्य हाकृत्यागार्थकत्वात्प्रस्तुतार्थाप्रतीते ।
अतः सन्धीयते स्म संहितम् । सम्पूर्वाद्वाचः क्तप्रत्यये धात्रो हिरिति ह्यादेशः । २ ६।१।१४४
का० सू० । ३ युज्यते स्म युक्तम् । ४ का० सू० ४।६।४९ । ५ का० सू० ४।६।५६ । ६ का० उ०
सू० ४।२८ । ७ अतति सन्तन गच्छति जनोऽत्र अध्वा । “अत सातत्यगमने” । “वनिस्तस्य
घः” का० उ० सू० ६।५९ । इति वनिप्रत्ययः तकारस्य धकारश्च । “अति बल पथिकानाम् । अनेर्ध
श्चेति कनिष् धश्चान्तादेशः ।” इति रामाश्रम । ८, “पत्तु पतने” । पतेत्यश्चेतीति थोऽन्तादेशश्चेति
ग्रन्थाशयः । पथन्तेऽनेन । “पथे गतौ” । पथन्तेऽनेन । “पथे गतौ” । पथिमथिभ्यामिनि । इति
रामाश्रम । ९ मृज्यते विनृणीक्रियते पादै । मृज् शुद्धौ । षज् । वृद्धि । कुत्वं च । मार्ग्यते
इति वा । “मार्ग अन्वेषणे” । १० वासन्ते शब्दायन्ते इत्यर्थः । “वास् शब्दे” । ११ “शृङ्गशृङ्गाऽङ्गानि”
का० उ० सू० १।४।४८ । “शृ हिंसायाम्” । शृङ्गप्रत्यये निपातः । शृङ्ग गवादीना विषाणमिति तत्रैव
दुर्गः । ततः शृङ्गमस्यास्तीति अर्श आदिभ्योऽञ् । एव सति महिषादिशशा सगच्छते । अजभावे विषाण-
मेवार्थं स्यात् । १२ का० सू० ४।३।२६ । १३ नाथ नासारज्जुं हरतीत्यन्यत्र ।

तयञ्चः^१ । शृणातीति शृङ्गम् । “शृङ्गभृङ्गाङ्गानि” एतेऽङ्गप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शृङ्गानि विद्यन्ते येषां ते शृङ्गिण ।

गौश्चतुष्पात्पशुः

त्रयो^२ गवि । पूजा गच्छतीति गौः । चत्वार पादा यस्यासौ चतुष्पात् । स्पश इति सौत्रो धातुः । स्पशते [वाधते] इति पशु । ^३अपष्टादयः—“अपष्टुदुष्टमुष्टुहृष्टिदुमितदुशतदुशकुधनुम- ५
युपशुदेवयुजटायुकुमारयुग्मयवः” एते शब्दा कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ।

तत्र महिषी नाम देहिका ॥१६३॥

द्वौ महिष्याम् । तत्र तस्मिन् महते^४ महिष । नदादित्वादी । महिषो । दिहते उपचीयते दुग्धेन देहिका^५ ।

कृती नदीष्णो निष्णातः कुशली निपुणः पटुः ।

१०

लुण्णः प्रवीणः प्रगल्भः कोविदश्च विशारदः ॥१६४॥

एकादश कुशले । प्रशस्त कृत कर्मास्य कृती । नद्या स्नातीति नदीष्ण । “निनदीभ्यो^६ स्नाते कौशले” इति पठ्यम् । नितरा स्नाति स्म शुचित्वमाप्नोति स्म निष्णात । कुत्सित श्यति कुशल । अथवा कुशान् लाति कुशलः । निपुणतीति निपुणः । शोभनकर्मत्वात् । पटति जानातीति पटुः । क्षुण्ति स्म क्षुरण । क्षुदिर् सम्पन्नो । प्रकृष्टा वीणास्य प्रवीणः इति मुख्यार्थे परित्यज्य १५
निपुणे रूढा । तदाह—

“निरूढा लक्षणा कैश्चित्सामर्थ्यान्निधानवत् ।

क्रियतेऽद्यतनै कैश्चित्कैश्चिन्नैव त्वशक्तिः ॥”

प्रगल्भते प्रगल्भः । गल्भ धाट्यर्थे । को वेत्ति तदभिप्रायमिति निरुक्त्या कवते कोविदः^८ । विशेषेण पाप शृणोति विशारदः^९ । क्षेत्रज्ञः । कृतहस्तः । द्रुतमुखः । कृतकर्मा । दक्षः । शिञ्जितः । २०

विदग्धश्चतुरः

द्वौ चतुरे । विदहते^{१०} विदग्धः । पुरुषार्थान् चतते याचते चतुरः ।

धूर्तश्चाटुकृत् कितवः शठः ।

१ “तिर्यञ्च” इत्यकारान्तपाठश्चिन्त्य । वप्रत्ययान्तेऽञ्चतावेव “तिरस्तित्यलोपे” इति तिर्यादेश इति चकारान्तस्यैव युक्तत्वम् । चकारान्तत्वे चाधक्षरपादे एकाक्षरोनत्वेन मूले छन्दोमङ्गलश्च । न चाकारान्तस्तित्यञ्चशब्द केनाऽयन्यकोपकारेण पञ्चम्येऽभिमतः । तदुक्तम्—“पशुस्तित्यञ्चरिः” अ० चि० ४।२।८१ । २ सामान्यविशेषार्थत्वादेष्टा पर्यायत्वाभावात्त्रयो गवीति पाठश्चिन्त्य । गोशब्द पशुविशेषे बलीवर्दादौ । चतुष्पात्पशुशब्दयोः सर्वपशुवाचकत्वात्पयायत्वमिति विवेकः । ३. का० उ० सू० १।१५ । ४ “महिङ् वृद्धौ” । महते वर्धते वा विशालकायत्वात् । औणादिकष्टिपच् । आगमशास्त्रस्थानित्यवान्न नुम् । इत्यन्यत्र । ५ नात्र कोषान्तरसवादः । ६ पा० सू० ८।३।८९ । ७ अस्य पूर्वार्धध्वन्यालोकलोचने १६ कारिकाटीकायामेवमुपलभ्यते “निरूढालक्षणाः काश्चित्सामर्थ्यान्निधानवत्” इति । उत्तरार्धस्तु न समुपगतः । ८ कौति प्रतिपादयति धर्मादि कौविदः । कुधातोर्विच् । वेत्तीति विदः । इगुपधेति कः । कोविदः । अथवा कवि वेदे विदा यस्येत रामाश्रमः । ९ विशेषेण शारदोऽवृष्टः प्रत्यग्रो वा विशारदः । इति हेमचन्द्रः । विशिष्टो विपरीतो वा शारदः इति रामा० । १० विशेषेण मैर्लचित्त दहति स्म विदग्धः ।

चत्वारो धूर्ते । धूर्तति स्म दिनस्ति स्म सदाचार धूर्तः । चाटु करोतीति चाटुः । कितवोऽस्त्यस्येति कितवः । शठयतीति शठः । दण्डाजिनक । कुहक । कापटिक । जालिक । कौस्तुभः । व्यञ्जकः । मायावी । मायी ।

कापि नागरिको ज्ञेयः

५ कापि कुत्रापि ज्ञेयः जातव्यः । नगरे भवो नागरिकः ।

गोत्रसज्ञाङ्गनाम तत् ॥१६५॥

चत्वारो नामिन् । गवा वाण्या स्वाचारेण त्रायते रक्षति पालयति गोत्रम्^३ । भजान सज्ञा^४ । अङ्ग च नाम च समाहारत्वादेकवचनम् । अङ्गयते लक्ष्यते अङ्गम्^५ । नमनम् नाम^६ ।

मुग्धो मूढो जडो नेडो मूको मूर्खश्च कद्वदः ।

१० सम मूर्खः । वर्मकार्येषु मुह्यति सशयः प्राप्नोतीति मुग्धः । मुह वैचित्ये । मुह्यति स्म मूढः । गत्यर्थत्वादिना कः । हो ट^१ । । ‘तवर्गः’ । टं टो लोपः । विः । रेफः । जडति न पुण्य गच्छति । जडः । जालमश्च । न ईड्यते न स्तूयते केनापि^२ नेडः । मूट् बन्धने । मूयते मूकः । । मूकादयः—‘मूकयूक-यर्नकपृथुकवृकृकमूकाः’ एते कप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । मुह वैचित्ये । मुह्यति कार्येषु मूर्खः । ‘मुह-’ । मूर्च्छः । कुतिसतः वदति कद्वदः । विवेकः । वालिशः । वाडिशः । वालः । । ‘वद्धरः । मलि’ ।

१५ नालीक । पणुः ।

स देवानां प्रियोऽप्राज्ञो मन्दः

त्रयो मन्दः । देवानां प्रियः^{१०} । ग्रथि (न्य)ल इत्यर्थः । न प्राज्ञः अप्राज्ञः । कार्येषु मन्दते स्वर्पित्वेति मन्दः ।

१ कुम्भ्या चरतीति कौस्तुभिक । तेन चरतीति ठक् । २ धूर्तसामान्यार्थ इत्यर्थः । ३ वचसा आचारेण च स्वस्य रुर रक्ष्यते । नामार्पि स्वानुरूपाचारवचोभ्यामान्मान प्रतिष्ठा-नयति । रामाश्रमस्तुदग्ध्यते शब्दयते उच्चार्यते इति व्युत्पत्तिमाह । “गुट् शब्दे” । ४ तदुक्तम्—‘मजा स्वाच्चेतना नाम हस्ताग्रैश्चार्थगूचना’ इति । अम० को ३।३।३३ । ५ अङ्गकृत्येऽनेनेति शेषः । नाम्ना जनोऽङ्कितो भवति । ६ नमनः नामेत्यसङ्गतम् । भावे घञि प्रणामाथक दन्त्यनामशब्दसाधु-वापत्तेः । अतः ‘ना अभ्यासे’ म्नायते उच्यते ऽभिधीयत ऽथोऽनेनेति विग्रहो न्याय्यः । नामन् सीमन् इति निपा-नितः । ७ अत्र ‘मुहादीना वा’ का० सू० २।३।४६ । इति तकारस्य धकारः । ८. “तवर्गस्य षट्त्वर्ग-द्ववर्गः” का० सू० ३।८।५ । इति घस्य दः । ९ “डं टलोपोदीर्घश्चोपधायाः” । का० सू० ३।८।६ । इति टलोपो दीर्घश्च । १० जलति तीव्रो न भवति । डलयोरैक्ये जड इति हेमचन्द्रः । ११ नेडशब्दः कोषा-न्तरे नोपलभ्यते । एडमूकशब्दोऽवडमूकशब्दो वा वाक्स्मृतिवर्जितार्थे लभ्यते । तदुक्तम्—“एडमूकस्तु वस्तु श्रोतुमशिक्षिते” इति । अम० को० ३।१।३८ । “एडमूको त्वावाक्श्रुतौ” अभि० चि० ३।१२ । अतोऽत्रापि अनेडमूक इति पाठः सम्भाव्यते । जडविशेषवाचकत्वेऽपि तस्य सामान्याभिप्रायेण जडे प्रयोगः अनेडशब्दो वा वधिरार्थः सामान्याभिप्रायेण प्रयोगः । १२. का० उ० सू० २।५८ । १३ का० उ० सू० ४।१७ । १४ नात्र प्रमाणान्तरमुपलब्धम् । १५ अत्रापि नान्यत्प्रमाणम् । १६ अत्राऽने-कार्यसङ्ग्रहः ३।५४ । प्रमाणम् । तदुक्तम्—नालीकोऽज्ञे शरे सन्धे नालीकं पञ्चानन्दने” इति । १७ ‘देवानां प्रिय इति च मूर्खः’ वा० ३।३।२१ । ‘षष्ठ्या अलुक्’ इति पा० सूत्रे ।

धीनामवर्जितः ॥ १६६ ॥

धीवर्जित । बुद्धिवर्जित । प्रतिभावर्जित । प्रज्ञावर्जित । मनीषावर्जित । विषयावर्जित ।
मतिवर्जितः । सख्यावर्जित । इत्यादीनि सूत्रनामानि भवन्ति ।

षाष्टिकः कलमः शालिर्ग्रीहिः स्तम्बकरिस्तथा ।

चत्वारः शालिभेदे । षष्टिरात्रेण पच्यन्ते षाष्टिका ^१ । षष्टिदिवसैरुपजा इत्यर्थः । ५
कलयति पुष्टिमानेन कलमः । शालते धान्येषु शालि । अथवा सहालिना भ्रमरेण युतः शालि । वर्हति
वर्धते ग्रीहिः । ^२ स्तम्बकरिः ।

वत्सः शकृत्करिर्जातः षोडन् षड्दशनः स्मृतः ॥ १६७ ॥

चत्वारो वत्से । मातरमभीक्ष्णं वदति वत्सः । शकृत् करोतीति शकृत्करिः । (इ) । “स्तम्ब-
^३शकृत्करोति” ग्रीहिवत्सयोरुपसख्यानानादिन् । षड् दन्ता यस्य स षोडन् । “समासे दन्तदशघातु १०
षष्ठ उत्व दधोर्द्धौ” षड् दशनाः यस्य स षड्दशनः ।

शौण्डीरो गर्वितः स्तब्धो मानी चाहंयुरुद्धतः ।

उद्ग्रीव उद्धरो दृप्तः

नव गर्विते । शौण्डीतीति शौण्डीर । “कृशशौण्डभ्य ईरः” । गर्वोऽहंकार संजातोऽस्य
गर्वित । तारकितादिदर्शनात्सजातेऽर्थे इतच् । स्तब्धः स्म स्तब्धः । मान पूजादिलक्ष्णो गर्वो विद्यते १५
अस्य मानी । अहम् अहंकारोऽस्त्यस्य अहयु । “ऊर्णाऽहंशुभम्यो युः” ^४ । उद्धन्यते रूपेण उद्धत ^५ । उद्
ऊर्ध्वा ग्रीवा यस्य स उद्ग्रीवः । उद्धरति गर्वेणान्यम् उद्धर । दृप्यते दृप्तः ।

नीचश्च पिशुनोऽधमः ॥ १६८ ॥

त्रयो दुर्जने । नितरा पापं चिनोति नीचः ^१ । मैत्री पिशति मैत्रीं पेशयति वा पिशुनः ^२ । तालम्ब्य ।
पिनष्टि वा पिशुनः । “पिशुनफाल्गुनौ” नञ्पूर्वो घञ् । न दधातीत्यधमः । “^३धर्मसीमाग्रीष्मा- २०
धमा” । दुर्जन । क्षुद्रः । कर्णत्रप । दोषग्राही । द्विजिह्व ।

चौरैकागारिकस्तेनास्तस्करः प्रतिरोधकः ।

निशाचरो गूढनरो हेरिकः प्रणिधिश्च सः ॥ १६९ ॥

^४ नव चौरैः । चोरयतीति चोरः । स्वार्थे ऽणि चौरश्च । एकागारं प्रयोजनमस्येत्यैकागारिकः ।

१ “षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते” पा० ५।१।९० । इति कन् प्रत्ययो रात्रशब्दलोपश्च ।
२ स्तम्ब करोतीति, स्तम्बकरि । “इः स्तम्बशकृतोः” । का० सू० ४।३।२५ । इति कृञ् इप्रत्यय । ३
का० सू० ४।३।२५ । ४ का० उ० सू० ३।४८ । ५ “ऊर्णाऽहंशुभम्यो युः” इति हे० श० ७।२।१७ । ६
उत्कण्ठ इन्ति गच्छति हिनस्ति वा० उद्धत इति हेमचन्द्रः । ७ ह्रस्वार्थे ऽयं शब्दो गतः । तत्र न्यञ्जतोति
विग्रह उक्तः । अत्र पिशुनार्थानुरोधेन विग्रहभेदः । निपूर्वकाचिनोतेर्बाहुलकाड्डः । उपसर्गदीर्घश्च ।
अन्यत्र तु निकृष्टमञ्जतोति विग्रहः । ८ पिशत्येकदेशेन सूचयति “क्षुषिपिशिमिथिभ्यः कित्” उ० सू०
३।५।५ । इत्युनन् । पिशुनयति अपिशुनति वा । “अपिशयति खण्डयतीति भोजः” इति हेमचन्द्रः ।
९ का० उ० सू० २।६१ । १० का० उ० सू० १।५६ । ११ चौरादयो निशाचरान्ताः षट् चौरैः । गूढन-
रादयः प्रणिष्यन्तास्त्रयो गुप्तचरे । इति पाठ उचितः । तदुक्तम्—“हेरिको गूढपुरुषः । प्रणिधिः”—
अभि० चि० ३।३६७ ।

स्तेनयति स्त्यायति वा स्तेनः^१ । उभयम् । तस्यति परद्रव्यं द्रव्यं नयति तस्करः । “तसेः^२ करः” । अथवा कृञ् तत्पूर्व । तत्करोतीति तस्करः^३ । तदाद्यङ् । नाम्यन्तगुणः । रुढित्वात्तस्य सकारः । प्रतिगुणदि मार्गं प्रतिरोधकः । निशा चरतीति निशाचरः । गूढश्चासौ नरः गूढनरः । हिनोति परराष्ट्रं गच्छति हेरिः । प्रकर्षेण नितरां गुप्तो धीयते ध्रियते वा प्रणिधिः । दस्युः^४ । परास्कन्दी । मलिम्लुचः ।
५ मोषक । प्रतिमोषकः ।

प्रस्तरोपलपाषाणदृषद्वातुः शिला धनः ।

प्रस्तृणात्याच्छादयति “प्रस्तरः” । काठिन्यमुपलति^५ उपलम् । उभयम् । पिनष्टि सर्वे^६ पाषाणः । पासानश्च । दृष्टाति चूर्णयति द्रियते आद्रियते वा कार्यार्थं दृषत् । ख्रियाम् । दधाति “धातु” । शिनोति तनूकरोति^७ शिला । शिनी च^{११} । ख्रियाम् । इत्यते^९ धन । अश्मन् । प्रावन् । पुलकश्च^{१३} ।

१०

तत्र जातमयो लोहम्

द्वौ लोहे । तत्र तस्मिन् पाषाणे जातम् उद्भवम् तत्रजातम् । प्रस्तरोद्भव । उपलोद्भवः । धातुद्भवः । दृषदुद्भवः । शिलोद्भवः । घनोद्भवः । इत्यादि लोहनामानि भवन्ति । अयते सर्वविकार सान्तम् अयः । लुनाति सर्वे लोहम् ।

शातकुम्भं नयेत्परम् ॥ १७० ॥

१५

तत्र पाषाणे उद्भवानि सुवर्णनामानि भवन्ति ।

क्षामं शान्तं कृशं क्षीणं हीनं जीर्णं च वैरिणाम् ।

शीर्णविसानं दूनं च

नव कृशे । क्षायति स्म क्षामम् । शाम्यति स्मशान्तम् । कृशम् । क्षीणम् । हीनम् ।

१ “स्तेन चौये” । चुरादिः । पचाद्यच् । २ का० उ० सू० ६।३ । ३ “तदाद्याद्यन्तानन्त-कारबहुवाहर्दवाविभानिशाप्रभाभाश्चित्रकतृनान्दीकिलिपिलिविलिभक्तिचेत्रजङ्घाधन्वरुःसङ्ख्यासु च” का० सू० ४।३।२३ । इति कृञ्प्रत्ययः । ४ दस्युप्रभृतयः प्रतिमोषकान्ताश्चौरपर्याया न तु गुप्तचरपर्याया । गुप्तचरपर्यायास्तु-यथार्हवर्णः । अगसर्वः । मन्त्रविद् । चरः । वार्तायनः । स्पशः । चारः । ५ “स्तृञ् आच्छादने” । पचाद्यच् । ६ अथवा पलतीति पलः । श्रोः शम्भो पलो वीपल । ७ “पिप्लु सञ्चूर्णने” । बाहुलकादानच् । पृरोदरादित्वादिकारस्याकारः । “पष बाधे ग्रन्थे च” । हलश्चेति घञ् । पषत्यनेनेति । अग्रतीत्यण् । “अण् शब्दे” । अच् । पाषश्चासावणश्चेति विग्रहोऽप्यन्यत्र द्रष्टव्यः । ८. “दृष्टाते पुग् ह्रस्वश्चे” ति साधुः । ९. “धातुस्तु गैरिकम्” अभि० वि० । “धातुर्मन-शिलाद्यद्रेगैरिकस्तु विशेषतः” अम० को० । इत्यादिकोपप्रमाणतः सामान्यप्रस्तरपर्यायेऽस्य पाठोऽयुक्तः । १०. शिनोतीति तालव्यशिधातुर्न कचिदुपलभ्यते । “शो तनूकरणे” । तस्य श्यतीति रूपम् । तनूकरोतीत्यर्थः । ततः शिलेति निपातो बाहुलकादौणादिकार्येण समायाति । रामाश्रमादिव्युत्पत्तिकारैस्तु “शिल उञ्छे” शिलतीति शिला । इगुपधेति क इत्युक्तम् । तत्रान्तरतम्यं सुधीभिर्विचारणीयम् । ११ “उदुम्बरश्चाथ शिली शिला चापि शिलि स्मृत” इति कल्पद्रुकोपवाक्यमत्रोपोद्वलकम् । १२ “मूर्तौ धनिश्च” का० सू० ४।५।५० । इन्तेरत्र घनादेशश्च । १३. तदुक्तम्-“पुलक क्रमिभेदे स्यान्मणिदोषे शिलान्तरे । गजान्नपिण्डे रोमाञ्चे गल्बर्कहरितालयोः ।” वि० को० का० व० ११६ ।

जीर्यते स्म जीर्यम् । शीर्यते स्म शीर्यम् । अवस्यते अवसानम्^१ । दूयते स्म दूनं च । हे राजेन्द्र, तव वैरिणां शत्रूणां भवतु इति प्रयोजनीयम् ।

धैर्यं शौर्यं च पौरुषे ॥१७१॥

त्रयः^२ पौरुषे । धीरस्य भावो धैर्यम् । शूरस्य भावः शौर्यम् । पुरुषस्य भावः पौरुषम् । युष्माकं भवतु इत्यध्याहार्यम् ।

५

क्षिप्राशुमङ्क्ष्वरं शीघ्रं सहसा झटिति द्रुतम् ।

तूर्णं जवः स्यदो रंहो रयो वेगस्तरो लघुः ॥१७२॥

षोडश^३ वेगे । क्षिपति^४ निरस्यति क्षिप्रम् । रक्प्रत्यय उणादौ ज्ञातव्य । अश्नुते आशु । कृपापाजीति उण् । मञ्जति महति वा मङ्क्षुः^५ । इयति मान्तमव्ययम् अरम् । अदन्त च अरम् । शेते कार्ये शीघ्रं (शिङ्घ) ति व्याप्नोति वा शीघ्रम् । सहते सहसा^६ । अव्ययम् । झटति सघातीभवति इदन्तमव्ययम् । झटिति^७ । द्रवति स्म द्रुतम् । त्वरते स्म तूर्णम् । जवनं जवः । जु गतो । स्यन्दते स्यदः । “स्यदो जवः” इति साधुः । रहयत्यनेन रहः । रयते रीणाति वाऽनेन रयः । वीय (विज्य) ते वेगः । तरत्यनेन तरः । “सर्वधातुभ्योऽसुन्” । लङ्घते भूमि लघुः । सवेगः । गतिवचनो जवो धर्मवचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थभेदः ।

१०

सदागतिप्रस्तावादाह—

१५

साधीयोऽत्यर्थमत्यन्तं नितान्तं सुष्टु वै भृशम् ।

सत भृशे । साधुभ्यो हित साधोयः^१ । इयमु । अतिक्रान्तोऽर्थं वेला मात्राम् अन्तं च अत्यर्थम् । अत्यन्तम् । अतिवेलम् । अतिमात्रं च । निताम्यति स्म नितान्तम् । सुष्ठौति सुष्टु ।

१. अत्रावसानमिमांशुः अप्रष्टावपि शब्दा विशेष्यनिष्ठास्तेन कुटुम्बमिति विशेषमध्याहार्यं हे राजेन्द्र तव वैरिणां कुटुम्बं क्षाम भवतु । एव शान्तं कृशमित्याद्यपि योज्यम् । अवसानशब्दस्य भावत्यु-
बन्तत्वात् तव वैरिणामवसानं नाशो भवत्विति विवेकः । अवस्यतेऽवसानमिति टीकोक्तविग्रहस्त्वसङ्गतः ।
अवपूर्वस्य “षोऽन्तं कर्मणि” इत्यस्य भावलटि अवसीयते इति रूपम्, नत्ववस्यते इति । कर्त्तृणि लटि दिवादी
अवस्यतीति परस्मैपदमेव । नापि कर्तृकान्तोऽवसानशब्दः । कप्रत्यये “अवसित” इति रूपस्यैव सर्वसम्मत-
त्वात् । तस्मादवसायतेऽवसायो वा अवसानमिति विग्रहो युक्तः । २. कोषान्तरप्रमाणतोऽप्यवहाराच्च
धैर्यादिशब्दानां परस्परकर्मभेदात्पर्यायानर्हत्वेऽपि बलसामान्यविवक्षया त्रयः पौरुषे इत्युक्तम् । ३. गतिव-
चनो जवो धर्मवचना आशुशीघ्रादय इत्यर्थभेदस्य वक्ष्यमाणात्वात् क्षिप्रादयस्तूर्णानां नव शीघ्राण्ये,
जवाद्यो लघ्वन्तास्सप्त वेगार्थे इति सुवचम् । “द्राक् क्षणेऽह्वाय झटिति” एतत्सहैवास्य शीघ्रार्थतया पाठे
कर्त्तव्येऽपि पृथगस्य पाठो झटितिशब्दपुनरुक्तिश्च दोषः । ४. क्षिपति विलम्बमिति शेषः । ५. “दृ मस्जो
शुद्धौ” । बाहुलकात्सु । मस्तिन्नशोरिति नुम् । स्कोरिति सलोपः । मञ्जति कालात्पत्वे मङ्क्षुः । ६. “वह
मर्षणे । असा प्रत्ययः यद्वा सहस्यति । “षोऽन्तं कर्मणि” । आमत्ययो जित् । विभक्त्यन्तप्रतिरूपकमाका-
रान्तमव्ययम् ? उदाहरणम्—“सहसा विदधीत न क्रियामित्यादि” । ७. “झट सङ्घाते” । औणादिक
इतिः । ८. का० सू० ४।१।३५। स्यन्देर्धञि नलोपो दीर्घाभावश्च । स्यन्दनं स्यद इति भावविग्रहो
न्याय्यः । ९. “ओ विजो भयचलनयोः” । १०. का० उ० सू० ४।५६ । ११. अतिशयेन साधु बाटं वा
साधीय इति । साधुभ्यो हित इति टीकोक्तविग्रहस्तु न सङ्गच्छते । अतिशयार्थे इयसो विधानात् । साधीय
इति मूलोक्तपदस्य क्लीबत्वेन हित इति पुविग्रहोऽपि तथैव ।

^१अपष्टु/दयः—अपष्टु दुष्टु सुष्टु हरिदु मितदु शतदु शङ्कु घनु इत्यादयः । वै अव्ययम् । विभर्ति भृशम्^२ ।

स्फुटं साधु खलु स्पष्टं विशदं पुष्कलामलौ ॥१७३॥

सत निर्मले । स्फुरत्यभिप्रायोऽस्मात् ^३स्फुटम् । साध्यतीति साधु । खलतीति खलु^४ । स्पश्यते स्म स्पष्टम् । विशति चित्ते विशदम् । पुष्णातीति पुष्कलम् । न मलमस्मिन् अमलम् ।
५ प्रकाशम् । प्रकटम् ।

चित्राश्चर्याद्भुतं चोद्यं विस्मयः कौतुकोऽप्यहो ।

षट् कौतुके । चित्रं चयने । चिनोतीति चित्रम्^५ । आचरतीत्याश्चर्यम्^६ । पारस्करादि-
त्वात्सुट् । भू सत्तायाम् । अद् पूर्वः । अद् विस्मितो भवत्यत्र अद्भुतः । “अदि भुवो डुत ७” । चोद्यते इति
चोद्यम् । विस्मीयते इति विस्मयः । कुतुकस्य भावः कौतुकम् । अहो लोका आश्चर्यम् इति
१० प्रयोजनीयम् ।

अभियोगोद्यमोद्योगा उत्साहो विक्रमो मतः ॥१७४॥

पञ्चोद्यमे । अभियोजनम् अभियोग । यमु उपरमे । यम् उद्पूर्वः । “चुरादेश्च^१”—इत् ।
“अस्योप० १ ०” —दीर्घः । उद्यामि इति जातम् । “मानुबन्धाना^२” ह्रस्वः । उद्यमि जातम् । उद्यमनमुद्यमः ।
भावे घञ् । “कारितस्य० १ ०” । उद्योजनम् उद्योगः । उत्सहनमुत्साहः । विक्रमण विक्रमः ।

५१

रहोऽनुरहसोपांशु रहस्यं च भिनत्ति कः ।

चत्वार एकान्ते । रहति त्यजति जनः सङ्गं यत्र सान्त रह । क्लीबे । अव्यय च । अनुगत
रह अनुरहस्यम् । “^३अन्ववतप्तेभ्यो रहस्” । उपांशुने अव्ययमुदन्तम् उपांशुः । रहसि भव रहस्यम् ।
कः पुमान् भिनत्ति विदारयति । प्रच्छन्नम् । एकान्तम् । नि शलाकम् । उपह्वरम् । विजनम् ।
बिभिक्तम् । जनान्तिकम् ।

२०

कीनाशः कृपणो लुब्धो गृध्नुर्दीनोऽभिलाषुकः ॥ १७५ ॥

षट् कृपणे । लोभेन क्लिश्यति बाध्यते ^१कीनाशः । कीं वाणीं याचकानां नाशयति विनाशय-
तीति कीनाशः । कल्पते रक्षितु न तु दातु कृपणः । लुब्धति स्म लुब्धः । गृध्नाति गृध्नुः । गृध्नु-
रित्यपि
स्यात् । लोभेन द्योतते शोभते (दीयते क्षयति) दीनः । दीङ् क्षये । क्वचित् हानः इति पठन्ति । लष
कान्तो । अभिपूर्वः । अभिलषतात्येवंशालः अभिलाषुकः । “शृकमगमहनवृषभूस्थालसपतपदामुकङ्^२” ।

१. का० उ० सू० १।१५ । इति कुप्रत्ययः । २. भृधातोः शप्रत्ययः क्तिदित्यर्थः । भृश्यतीति
भृश वा । “भृशु भृशु अघ पतने” । दिवादि । इगुपधेति कः । भृशिरत्रान्तर्भावित्यर्थः । ३ स्फुटतीति
कटुविग्रहो न्याय्यः, नत्वपादानकः तत्र घञि स्फोट इत्यापत्तेः । अत्रेगुपधेति कः । ४. “खल सङ्घर्षे” ।
बाहुलकादुः । खलुशब्दो नानार्थः । तदुक्तम्—“निषेधवाक्याऽलङ्कारे जिज्ञासाऽनुनये खलु” । अम० को०
३।३।२२५ । ५ “चित्र चित्राकरणे” । चित्रयतीति चित्रम् । पचाद्यच् । इत्यन्यत्र । ६. आ इति
चर्यते ऽभिनीयते इति विग्रहोऽन्यत्र । “आश्चर्यमनित्ये” इति सुट् । ७. का० उ० सू० ४।२५ । ८ चोद्यशब्द
आश्चर्यार्थः । तदुक्तम्—“चोद्यन्तु प्रेयं प्रश्नेऽद्भुतेपि च” अने० स० २।३६२ । ९. का० सू० ३।२।११ ।
१०. का० सू० ३।६।५ । ११ का० सू० ३।४।६५ । १२ का० सू० ३।६।४४ । इतीनो लोपः । १३. का० सू०
३।४।४१ । अत्र राजादिवृत्ति २९ । १४ “क्लिशू विवाघने” । “क्लिशोरीचोपधाया कन् लोपश्च लो नाम्
च” पा० उ० सू० ५।६६ । १५. का० सू० ४।४।३४ ।

कदर्यः । किम्पचान । मितम्पच । क्षुल्ल । क्षुल्लक । क्लीबः । क्षुद्र । वराकश्च ।

पाशनीतः सितो बद्धः सन्धानीतो नियन्त्रितः ।

नियामितः शृङ्खलितः पिनद्धः पाशितो रिपुः ॥ १७६ ॥

नव बद्धे । पाशं नीतः पाशनीतः । सीयते स्म सित । बध्यते स्म बद्धः । सन्धा प्रतिज्ञा नीतः प्रापितः सन्धानीतः । नियन्त्रं सजातमस्य नियन्त्रित । नियामो जातोऽस्य नियामितः । शृङ्खला ५ सजाताऽस्येति शृङ्खलितः । तारकितादिदर्शनादितच् । पिनह्यते स्म पिनद्धः । पाशः सजातोऽस्य पाशितः । क रिपुः शत्रुः ।

कान्तं च कमनं कम्पं कमनीयं मनोहरम् ।

अभिरामं र(रा)मणीयं रम्यं सौम्यं च सुन्दरम् ॥ १७७ ॥

दश वरिष्ठे (अतिसुन्दरे) । काम्यते कान्तम् । काम्यते कमनम् । काम्यते इत्येवशीलं १० कम्पम् । काम्यते वाञ्छ्यते कमनीयम् । “तव्यानीयौ” । मनोहरति मनोहरम् । मनोहारी । मनोरमम् । अभिरमणम् अभिरामम् । रमणस्य (णाय) हित रमणीयम्^२ । रम्यते रम्यम् । सोमस्य भावः सौम्यम्^३ । सुन्द सौत्रोऽय सुन्दति सुष्ठु नन्दयति इति निरुक्त्या सुन्दरम्^४ ।

चारु श्लक्ष्णं च रुचिरं प्रशस्तं हृद्यबन्धुरम् ।

दर्शनीयं मनोज्ञं च

१५

अष्टौ मनोज्ञे । चरन्ति नेत्राण्यत्र चारु । शिष्यते युज्यतेऽनेन श्लक्ष्णम्^५ । रोचते सर्वेभ्यो रुचिरम् । प्रशस्यते स्म प्रशस्तम् । हृदयस्य प्रियम् हृद्यम् । चित्तं बध्नाति बन्धुरम् । दृश्यते दर्शनीयम् । मनो जानातीति मनोज्ञम् ।

चित्तपर्यायहारि च ॥ १७८ ॥

चित्तहारि । मनोहारि । इत्यादीनि मनोहरनामानि ज्ञातव्यानि ।

२०

अवश्यायं तुषारं च प्रालेयं तुहिनं हिमम् ।

नीहारम्

षड् हिमे । अवश्यायते अवश्यायः । “दिहिलिहिलिषिष्वसिन्ध्यतीण्श्याऽऽता च^६” णप्रत्ययः । तुष्यन्त्यनेन तुषारः । प्रलयादागत प्रालेयम्^७ । तोहयत्यर्दयति तुहिनम् । तुहिर् अर्दने । हिनोति वर्धते जलमनेन हिमम् । निहियते नीहारः । मिहिका । धूमिका । देश्याम् ।

२५

१ का० सू० ३।७।९ । २ रमणाय हितमिति विग्रहो युक्तः । तस्मै हितमिति चतुर्थ्यन्ताच्छ्र । मूले छन्दोभङ्गदोषवारणाय रमणीयमेव रामणीयम् इति स्वार्थिकोऽणपि कार्यः । ३ सोमस्य भाव इति विग्रहोऽयुक्तः । “प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारिभूतो भावः” इति सिद्धान्तात् सौम्य इत्यस्य सोमत्वमित्यर्थोपपत्तेः । अतः सोमो देवताऽस्येति व्युत्पत्तिः, “सोमाट्ठ्यण्” । इति ट्यण् । अथवा सोम इव सोमः । ततश्चतुर्वर्णादित्वात्पठ्यण् इति रामाश्रमः । ४ सुष्ठु द्रियते आद्रियते । द्रुषातोर्प् । पृषोदरादित्वान्नुम् । सुष्ठु उनति आर्दीकरोति चित्तं वा । सुपूर्वात् “उन्दी क्लेदने” उम्दधातोर्बाहुलकादरः । शकन्ध्वादित्वात्पररूपम् । इति रामाश्रमः । ५ नेत्र मनो वेति शेषः । “श्लिष आलिङ्गने” । “श्लिषे रञ्जोपधायाः” उ० सू० ३।१९ । इति क्लः । उपधाया अकारश्च । ६ का० सू० ४।२ । ५८ । ७ प्रलीयन्ते पदार्था अत्रेति प्रलयो हिमाचलः । तस्मादागत प्रालेयम् । अण् । केकयमित्रयुपलयाणा यादेरियः पा० सू० ७।३।२ । इति यादेरियादेशः ।

तत्करं विद्धि मृगाङ्कं रोहिणीपतिम् ॥ १७६ ॥

तस्य करस्तत्करस्तम् । हिमशब्दात्करशब्दे प्रयुज्यमाने चन्द्रनामानि भवन्ति । अवश्यायकर । तुषारकरः । प्रालेयकरः । तुहिनकरः । हिमकरः । नीहारकरः । मृगाङ्कः । रोहिणीपति । अथौ नामानि विद्धि जानीहि ।

५

पुष्पागं सखरं प्राहुः

द्वौ प्रधानपुरुषे । पुमाँश्चासौ नागः श्रेष्ठः पुष्पागः । संश्चासौ नर सखरः । प्राहुः ब्रूवन्ति ।

तिलकं च विशेषकम् ।

ललाटिका ललामापि पूर्णवाहं तथा द्रुमम् ॥१८०॥

१० विशेषकः । लल्यते ललाटम् । के प्रत्यये ललाटिका । लल्यते ललामा । पूर्णं वाहयतीति पूर्णवाहः । द्रवति वृद्धिं गच्छति द्रुमः । तमालपत्रम् । चित्रकम् ।

अञ्जनं कज्जलं नागं गजपाटलमारुणम् ।

१५ षट् कज्जले । अच्यतेऽनेनेत्यञ्जनम् । कषति नेत्रवैरूप्य कज्जलम् । न शोभाम अगति गच्छति नागम् । गजति शोभया माद्यति गजम् । पाटलाया इदम् पाटलम् । अञ्जति गच्छति शोभाम् आरुणम्^३ ।

सालं परिधि वृक्षं च

त्रय प्राकारे । सरति गच्छति कालान्तर सालः । परिधीयते वेष्टयते अनेन परिधि वृणोति नगरमाच्छादयति वृक्षम्^४ ।

कुल्यां स्त्रीं सारणीं विदुः ॥१८१॥

२० त्रयः^५ पानीयनिर्गमनमार्गे । कुले गृहे साधुः कुल्या । स्तृणाति वैरूप्यमाच्छिनति स्त्री । सरत्यनया सारणी । तां विदुः कथयन्ति घनञ्जयकवयो भाष्यकर्तारोऽमरकीर्त्याचार्याश्च ।

चारोऽवसर्पः प्रणिधिर्निगूढपुरुषश्चरः ।

पञ्च^६ चारे । चरति शत्रुमण्डले चारः^७ । अवसर्पति अवसर्प । अपसर्पश्च । प्रकर्षेण

१ अत्र तिलकविशेषके टीकोक्ततमालपत्रचित्रके च ललाटकृततिलकाऽलङ्करणे । तदुक्तम्—“तिलके तमालपत्रचित्रपुण्ड्रविशेषका” । अभि० चि० ३।३१७ । ललाटिका पत्रसमूहकृतललाटभूषणम् । तदुक्तम्—“पत्रपाश्या ललाटिका” अभि० चि० ३।३१९ । ललामा तु सीमन्ताग्रे मरुमणीभिरिव धार्यमाणं रत्नादिकृतभूषणम् । तदुक्तम्—“पुरोन्यस्त ललामकम्” अभि० चि० ३।३३६ । पूर्णवाहद्रुमयोस्तु कोषान्तरे पाठो नोपलब्धः । २ षट् कज्जले । इत्यविचारसहम् । अञ्जनकज्जलौ समानार्थौ । नागगजपाटलारुणा ओष्ठकपोलादिरञ्जकलोहितरङ्गविशेषवाचका । तदुक्तम्—अनेकार्थसङ्ग्रहे—“नागो मतङ्गजे सर्पे पुननागे नागकेसरे” २।३४ । “पाटलन्तु कुसुमश्वेतरक्तयोः” ३।७०१ । “अरुणोऽनूरुसूर्ययो । सन्ध्या रागे बुधे कुण्डे निःशब्दाऽव्यक्तरागयो” ३।१९८ । ३ अरुणमेव आरुणम् । ४ वृक्षशब्दस्य सालार्थे कोषान्तरसंवादो नोपलब्धः । ५ अत्र द्वाविति वक्तव्यम् । स्त्रीशब्दोऽत्र कुल्यासारण्यो स्त्रीलिङ्गबोधकः ; तत्पर्यायः । ६ पूर्वमुक्तेऽपि सिंहावलोकनन्यायेन चारोऽयंऽन्यानपि शब्दान् समुच्चिनोति । ७ चरति शत्रुमण्डले चरः , चरेरच् । तत स्वार्थिकोऽण् । चर एव चारः ।

नितरां गुप्तो धीयते प्रणिधिः । निगूढश्चासौ पुरुषः निगूढपुरुषः । चरतीति चरः । स्पशः । 'यथार्थ-
वर्णः । मन्त्रशश्च ।

तद्वानुक्तः सहस्राक्षः

तस्मात् पूर्वोक्तशब्दात् परं धान् इति प्रयुज्यमाने सहस्राक्षनामानि भवन्ति । निगूढ-
पुरुषवान् । चरवान् इत्यादीनि ज्ञातव्यानि ।

५

सत्यार्थे सूनृतं ऋतम् ॥१८२॥

सत्यार्थे द्वौ । सु सुष्ठु ऋत सत्य सूनृतम् । पृषोदरादित्वाद्भाडागमः । ऋच्छति गच्छति जनः
प्रत्ययमत्र ऋतम् । तथा चामरकोषे—“सत्यं तथ्यमृतं सम्यक् ।”

निस्तलं वर्तुलं वृत्तम्

त्रयो वर्तुले । निर्गतं तल प्रतिष्ठाऽस्य निस्तलम् । अथवा निर्गतं तलादधोभागान्निस्तलम् । १०
भूमौ न तिष्ठति वा । वर्तते भ्रमति वर्तुलम् । वृत्त्यते स्म वृत्तम् । सर्वे त्रिषु ।

स्थपुटं विषमोन्नतम् ।

विषमोन्नते स्थपुटम् । स्थापयत्यात्मनो विषमोन्नतत्वे स्थपुटम् । प्रायः क्लोबे ।

दीर्घं प्रांशु

द्वौ दीर्घे । दृणाति दीर्घम् । प्राश्रुते व्याप्नोतीति प्रांशु ।

१५

विशालं च बहुलं पृथुलं पृथु ॥१८३॥

चत्वारो विस्तीर्णे । विस्तार विशति विशालम् । बहून् लातीति बहुलम् । प्रयते वर्धते
पृथुलम् । गुणमात्रवृत्तेर्ल । पर्थते पृथु । बृहत् । उरुः । गुरु । विस्तीर्णः ।

उल्बणं दारुणं तिग्मं घोरं तीव्रोऽग्रमुत्कटम् ।

सप्त घोरे । उल्बणस्युल्बणम् । पृषोदरादित्वात्पक्षे लः । दारयति दारुणम् । तित्तिक्षतीति २०
तिग्मम् । घुरति घोरम् । तीवति तीव्रम् । तीव्रस्यौल्ये रक् । उच्यति उग्रम् । उत्कटयते
उत्कटम् । प्रतिभयम् । भीमम् । भयानकम् । आभीलम् । भीषणम् । भीष्मम् । भैरवम् ।

शीतलं तिमिरं याथं मन्दं विद्धि विलम्बितम् ॥ १८४ ॥

१ यथार्थं यथा अर्थं प्रयाजनं वर्णो जातिः प्रसिद्धिर्वा यस्येति तदर्थः । २ अम० को०
१।७।२२। ३ वस्तुतस्तु प्राशुदीर्घयोरर्थभेदः । दीर्घविस्तृतायतशब्दा पर्याया । प्राशुस्तुल्यतः । तदुक्तम्—
‘दीर्घमायतम्’ अम० को० ३।१।७० । ४ ‘दृ विदारणे’ । बाहुलकादृषक । दृणाति ह्रस्वत्वमिति दीर्घः ।
५ प्रकृष्टा अशबोऽस्येत्यपि । ६ ‘विश प्रवेशने’ । बाहुलकादाल । रामाश्रमस्तु—‘वे शालच्छङ्कटचौ’
इति० पा० सूत्रेण विशब्दाच्छालप्रत्ययमाह । ७ उद्बणतीति उल्बणम् । पृषोदरादित्वादुदोल इति
पाठोऽत्र युक्तः । “वण शब्दे” । अच् । उल्बणशब्दो वस्तुतः स्पष्टार्थकः, न तु दारुणार्थकः । स्पष्टो
ह्युद्बेजको भवति खलानाम् । अत उद्बेजकत्वसामान्यात्तथाह । ८ तित्तिक्षतीति क्षमार्थकत्वात् न
युक्तम् । “तिज निशाने” । निशानं तिक्णीकरणम् । तेजयतीति तिग्मम् । धमकप्रत्ययः । ९ “घुर भीमा
र्यशब्दयोः” । घोरयतीति घोरम् । ण्यन्तादच् । १० उच्यति क्रुधा सम्बध्यते उग्रम् । “उच समवाये” ।
दिवादिः । “ऋज्रेन्द्र” इत्यादिना रक् गश्चांतादेशः ।

पञ्च कार्यविलम्बे (म्बिते) । शीतं लाति मन्दो भवति कार्ये शीतलम् । ताग्यति स्वकार्य-
मिच्छति तिमिरम्^१ । स्तिमित स्थिमितं वा पाठः । यथा भव याथम् । मन्द्यते मन्दम् । विलम्ब्यते
स्म विलम्बितम् । विद्धि जानीहि ।

स्वभावः प्रकृतिः शीलं निसर्गो विश्वसो निजः ।

५ पञ्च स्वभावे निजे । स्वः स्वकीयो भावः स्वभावः । प्रकरण प्रकृतिः । शील्यते शीलयति
वा शीलम् । निसृज्यते निसर्गः । विश्वसितीति विश्वस^२ । विश्वासश्च । विश्रम्भ ।

योग्या गुणनिकाऽभ्यासः

त्रयोऽभ्यासे । गुज्यते योग्या^३ । गुण्यते ऽहर्निश गुणनिका^४ । अन्यसनमभ्यासः ।

स्यादभीक्ष्णं मुहुर्महुः ॥ १८५ ॥

१० मुहुर्मुहुर्वारं वार स्यात् भवेत् । अभीक्ष्णम् । अभीक्षणम् अभीक्षणम् । अभिमुखमीक्षते
वा अभीक्ष्णम्^५ । नितराम् ।

मृषालीकं मुधा मोघम्

चत्वारोऽलीके । मृष्यते सहते नारकं दुःखमनेन मृषा । आदन्तमव्ययम् । अलति स्वस्वाङ्गा-
(स्वर्गा)न्निवारयति अलीकम् । मुञ्चति त्यजति निमित्त मुधा । आदन्तमव्ययम् । मुह्यतेऽत्र चित्त मोघम् ।

विफलं वितथं वृथा ।

१५ निष्फलवचने त्रयः । विगत फल विफलम् । विगत तथा सत्य यस्मात् वितथम् । वृथो-
त्याच्छादयति गुणान् वृथा । अव्ययम् ।

विधुरं व्यसनं कष्टं कृच्छ्रं गहनमुद्वरेत् ॥ १८६ ॥

२० पञ्च कष्टे । कष्टेन विधुनोति शरीरं विधुरम् । व्यस्यते अनेन व्यसनम् । कष्यते
(कषति) कष्टम् । कृणोति क्षिनत्ति दुःखेन कृच्छ्रम्^६ । गाह्यते गहनम् । उद्वरेत् निस्तरेत् ।

समस्तं सकलं सर्वं कृत्स्नं विश्वं तथाऽखिलम् ।

षट् समस्ते । समस्यते एकीकरोति समस्तम्^७ । सम ग्रसते समग्रम्^८ । समान कलयतीति
^९सकलम् । सरति सर्वम् । कृन्तति वेष्टयति व्याप्नोति कृत्स्नम् । विशति तिष्ठति सर्वत्र विश्वम् ।
नास्ति खिल शून्यमस्याखिलम् । निखिल च ।

१ “तिम आर्द्राभावे” । तिम्यति आर्द्राभवति तिमिरः । विलम्बशीलो जन सर्वदाऽर्द्र इव
शीतः स्फूर्तिरहितश्च भवति । २ विश्वसशब्दस्य प्रकृत्यर्थे प्रमाणान्तर नास्ति । एव विश्वासो विश्रम्भोऽपि ।
विश्वसशब्दाऽन्वाख्यानमपि व्याकरणादस्पष्टम् । अतोऽत्र त्रिष्वपि मूलटीके एव प्रमाणम् । ३ योगे
चित्तैकाग्र्ये साध्वीति योग्या “तत्र साधु”रिति यदन्यत्र । ४ गुण्यते गुणना । चुरादिणिजन्ताद् भावे
“ण्यासश्चन्येति युच् । तत्. स्वार्थे क । गुण्यते नैव गुणनिका । ५ अभीक्ष्णौति अभीक्षणम् । “क्षु तेजने” ।
बाहुलकाद्धम् । अन्येषामपीति दीर्घः । इति रामाश्रम । ६ अत्र मृषाऽलीकशब्दौ वक्ष्यमाणौ वितथ-
शब्दश्चासत्यवाचकः । मुधामोघशब्दौ विफलवृथाशब्दौ च वक्ष्यमाणौ व्यर्थवाचका इति विवेकोऽ-
न्यत्र । तदुक्तममरे—“मुषा मिथ्या च वितथे” ३।१।१५ । “अलीक त्वप्रियेऽनृते” ३।३।१२ । “मोघं
निरर्थकम्” ३।१।८१ । व्यर्थके तु वृथा मुधा” ३।४।४ । “वितथ त्वनृत वचः” १।८।२१ । इति ।
७ कर्षति कृन्तति वेति क्षी० स्वा० । ८ समस्यते स्म समस्तम् । “अमु क्षेपणे” । कर्मणि कः ।
९ सकृत्तमग्रमस्य समग्रम् । १० सह कलाभिर्वर्तते सकलम् ।

शकलं विकलं खण्डं शल्कं लेशं लवं विदुः ॥ १८७ ॥

षट् खण्डे । शक्नोति काये शकलम् । शल्कं च । विगता कला यस्मात् तद् विकलम् ।
खण्ड्यते खण्डः । लिश्यते लेशः^१ । लिश विच्छ गतौ । “अकर्तरि च कारके संजायाम्”^२ । रौति शब्दं
करोति लवः । विदुः कथयन्ति । अर्थम् । नेम । सामि । असम्पूर्णम् । दलं च ।

मर्म कोपं च

५

द्वौ मर्मणि । प्रियतेऽनेन मर्म । नान्तम् । कुण्ठते कोपम्^३ ।

कलहं परिवादं छलं नयेत् ।

करेण हन्त्यत्र कलहः । परिवदनं परिवादः । छलयती (त्यत्रे)ति छलम् ।

शोणितं लोहितं रक्तं रुधिरं क्षतजामृजम् ॥ १८८ ॥

षट् रुधिरे । शोण्यते वर्ण्यते देहोऽनेन शोणितम् । तालव्यः । रोहितं देहे जायते लोहितम् । १०
रजति रम रक्तम् । रुणद्धि रुधिरम् । क्षताद् व्रणजायते क्षतजम् । अस्यते क्षिप्यते अमृक् ।

सन्ततानारताजस्त्रान्वहं कन्यापतिर्वरः ।

त्रयः (चत्वारः) सन्तते । सन्तन्यते रम सन्ततम् । न आरतम् अनारतम् । न जम्पतीत्येवशील
मजस्त्रम् । अग्रहम् । कन्यापतिर्वरः नन्दतु इति प्रयोजनीयम् ।

उद्वाहः परिणयनं विवाहश्च निवेशनम् ॥ १८९ ॥

१५

चत्वारो विवाहः । उद्वाहनं उद्वाहः । परिणीयते परिणयनम् । विवाह्यते विवाहः ।
निवेश्यते निवेशनम् ।

शुषिरं विवरं रन्ध्रं छिद्रम्

चत्वारश्छिद्रे । शुष्यति जलमत्र शुषिरम् । उपशुषीति रः । विविधते भूमन्मनेन विवरम् ।
गच्छति वानेन रभ्यति हिनस्ति प्राणिनं वा रन्ध्रम् । छिद्यते तत् छिद्रम् । कुहरम् । विलम् । निर्व्य- २०
थनम् । रोकम् । श्वभ्रम् । वपा । शुषि ।

गर्ता च गह्वरम् ।

गर्ताया द्वौ । पतितं प्राणिनं गिरति गर्ता । गर्तः । गृह्णीति गह्वरम् ।

श्वभ्रं रस्यं च पातालं नरकं यान्त्यमेधसः ॥ १९० ॥

चत्वारो नरके । श्वयते वर्धतेऽत्रोपरि चरतो शङ्का, श्वभिन्नान्तं वा श्वभ्रम् । रसाया भव २५
रस्यम् । पतन्त्यस्मिन् पातालम् । नरा कायन्त्यत्र नरकः । नारकः । पुति । अमेधसः बुद्धिरहिता

१ “लिश अल्पीभावे” । दिवादि । ततो घञ्विधानमर्थानुरूपम् ॥ २ का० सू०
४।५।४ । ३ लूयते छिद्यते लव । ऋदोरप् । टीकोक्तविग्रहस्तु न लवनार्याऽभिधायी । ४ कोष-
शब्दः पेशीवाचकां मेदिन्या लभ्यते । पेशीना मर्मस्थानत्वमायुर्वेदे सम्मतम् । अत उपचारात् कोपोऽपि
मर्मैत्यभ्युन्नेयम् । तदुक्तम्—‘कोषोऽस्त्री कुड्मले पात्रे दिव्ये खड्गपिधानके । जातिकोपेऽर्थसङ्घाते पेश्या
शब्दादिसङ्ग्रहे’ । पा०वर्ग० ६ । ५ “तिमिरुषिमदिमन्दिचन्दिवधिरुचिशुषिभ्य किरः” का०उ० १।२३ ।
शुषिरस्यास्तीति विग्रहे तु “उपशुषिमुष्कमधो र” पा०सू० ५।२।१०७ । इति र । रपत्यवपत्ते दन्त्यादिरयम् ।
उपशुषीति पा० सत्रे दन्त्य एव पाठः । क्षीरस्वाम्यपि दन्त्यमेव पपाठ ।

सम्यक्चारित्रहिता यान्ति गच्छन्ति नरकम् । निरय । दुर्गति ।

अदभ्रं भूरि भूयिष्ठं बंहिष्ठं बहुलं बहु ।

प्रचुरं नैकमानन्त्यं प्राज्यं प्राभूतपुष्कलम् ॥ १६१ ॥

- द्वादश प्रभूते । न दभ्रमदभ्रम् । भवति प्राचुर्यमत्र भूरि, भूरिष्ठं च । अतिशयेन बहु भूयिष्ठम् ।
५ “बहो लोपो भू च बहो” “हृष्टस्य^२ यिदृचेति” भूरादेशो यिडागमश्च । अतिशयेन बहुलो बंहिष्ठः । वहति प्राचुर्यं बहुलम् । प्रचुरति^३ प्रचुरम् । न एक नैकम् । अनन्तस्य भाव आनन्त्यम् । प्राज्यते प्रकर्षेण वीर्यतेऽनेन वा प्राज्यम्^४ । प्राभवति स्म प्राभूतम् । प्रभूतं च । पुण्यति पुष्कलम् । पुष्कं च । पुञ्जम् । पुष्टम् ।

भवो भावश्च संसारः संसरणं च संसृतिः ।

तत्त्वज्ञश्चतुरो धीरस्त्यजेज्जन्माजवं जवम् ॥ १६२ ॥

- १० अष्टौ संसारे । भवतीति भवः । भवतीति भावः । “वा ज्वलादिटुनीभुवो णः” । संसरति अस्मिन् संसारः । संस्रियते अस्मिन् संसरणम् । संसरणं संसृतिः । जनयतीति जन्म । आजवतीति आजवम् । जवति चतुर्गत्या भ्रमति (अत्र) जव ।

ऊर्जस्फूर्जस्वी तरस्वी तेजस्वी च मनस्व्यपि ।

- चत्वार (पञ्च) स्तेजोयुक्तपुरुषे । ऊर्क् ऊर्जा वाऽस्त्यस्येति ऊर्जस्वी । स्फूर्जोऽस्यास्तीति
१५ स्फूर्जस्वी । तरोऽस्यास्तीति तरस्वी । तेजोऽस्यास्तीति तेजस्वी । मनोऽस्यास्तीति मनस्वी ।

भास्वरो भासुरः शूरः प्रवीरः सुभटो मतः ॥ १६३ ॥

पञ्च सुभटे । भासते इत्येवशीलो भास्वरः^५ । भासुरः । “भिदि^६ भासिमजा शुर” । शूरयति शूरः । शूर वीर विक्रान्तौ । प्रवीरयते प्रवीर । मुष्टु भटः सुभट । विक्रान्त ।

तनुत्रं वर्म कवचमावृतिर्वाणवारणम् ।

- २० पञ्च कवचे । तनु शरीर त्रायते रक्षति तनुत्रम् । वृणोत्यङ्ग वर्म । कच्यते बध्यते शरीरम् अनेन कवचम् । आवरणमावृति । वाणाना वारण निषेधन वाणवारणम् ।

कूर्पासं कञ्चुकम् ।

ढौ कञ्चुके । करोति शोभा कूर्पासम् । कर्पासं च । कञ्च्यते बध्यते कञ्चुकः ।

छत्रमातपत्रोष्णवारणम् ॥ १६४ ॥

- २५ त्रयश्छत्रे । वर्षातपां छादयतीति छत्रम् । त्रिषु । छत्र, छत्री । आतपात् त्रायते आतपत्रम् । उष्णस्य वारणम् उष्णवारणम् । नृपलक्षम् ।

केशं शिरोरुहं वालं कचं चिकुरमीहयेत् ।

पञ्च केशे । के मस्तके शेते केश । शिरसि रोहति शिरोरुहः । बल्यते सन्निवृत्ते वालः । मस्तके चीयते कचति वा कचः । चीयते यत्नेन चिद्गुरः । चिकुरश्च । मूर्धजः । शिरसिजः ।

१ पा० सू० ६।४।१५८ । २ पा० सू० ६।४।१५९ । ३ प्रचुरति प्रचुरम् । चुर स्तेये । चुरादीना णिज्वैकल्पिकः । इगुपधेति कः । प्रगत चुराया प्रचुरमिति वा रामाश्रमः । ४ प्राज्यते काम्यते “अञ्जू व्यक्त्यादौ” अञ्जेः सज्ञायामिति क्यप् । यद्वा प्रवीर्यते “अज गतिक्षेपणयोः” क्यप् । बोभावां नेति टीकाशयः । ५ का० सू० ४।२।५५ । इति ण । ६ “कपिपिसिभासीशस्याप्रमदा च” का० सू० ४।४।४७ । इति वरः । ७ का० सू० ४।४।४१ ।

वृजिन^१ । कुन्तलः ।

चूडापाशं च धम्मिन्लं कवरी केशबन्धनम् ॥ १६५ ॥

चत्वार केशबन्धने । चुद संचोदने । “चुरादेशच^२” इन् । नामिनो^३ गुण । चोदन चूडा । “ऊन^४चूदपीडमृगयतिभ्य इनन्तेभ्यः सशायाम्” अङ् प्रत्ययः । कारितलोप । निपातनात् उपधाया ह्रस्वत्वम् । दस्य डत्वम् । चूडायाः शिलायाः पाशः बन्धन चूडापाशः । धम्मिः सौत्र । धम्यन्ते केशा ५ वभ्यन्ते धम्मिह्लुः । क मस्तक वृणोति कवरो नदादित्वादी । कवरी । इदन्तोऽपि कवरिः । आबन्तो वा कवरा । केशस्य बन्धन केशबन्धनम् । वंणी । प्रवेणी । वीणा च

उररीकृतमप्युरीकृतमङ्गीकृतं तथा ।

त्रयोऽङ्गीकारे । ऊरीप्रभृतीना कृता सह ममासो वा भवति । तथाहि—ऊरी उररी अङ्गी-
करणे विस्तारे च । आश्रुतम् । प्रतिज्ञातम् । उपगतम् । १०

अस्तुङ्कारोऽभ्युपगमे

अभ्युपगमे अङ्गीकारे अस्तुङ्कार कथ्यते । अस्त करोतीति (करणम्) अस्तुङ्कार । ‘‘कर्मण्यण्’’
अण्य प्रत्यय । अस्योप० वृद्धि । व्यजनम्^७ । “‘‘सत्याशदास्तूना कारे’’ । मकारागम ।

सत्यङ्कारः पणार्पणे ॥ १६६ ॥

सत्यापणे सत्य करोतीति सत्यङ्कारः ।

१५

सौहार्दं सौहृदं हार्दं सौहृद्यं सख्यसौरभम् ।

मैत्री मैत्रेयिकाजयं सहाय्यं संगतं मतम् ॥ १६७ ॥

दश (एकादश) सख्ये । सुहृदा भावः सौहार्दम् । सौहृदम् । हार्दम् । सौहृद्यमेकमेव
वाक्यम् । सख्युभांश्च सख्यम् । सुरस्येद (मेरिद) सौरभम् । मित्रस्य भावो मैत्री । मैत्र्या नियुक्तो
मैत्रेयिक । न जीर्यते अजर्यम् । सहाजी (स्य) ते सहाय्यम् । सगमनम् सङ्गतम् । २०

क्षेमं कल्याणमुभयं श्रेयो भद्रं च मङ्गलम् ।

भावुकं भविकं भव्यं श्वोवसीयं शिवं तथा ॥ १६८ ॥

दश (एकादश) कल्याणे । क्षिणोति क्लेशान् क्षेमम् । कल्यते जायते कल्याणम् । कल्य
नीरुजत्वमनिति वा कल्याणम् । प्रकुष्ठ प्रशस्य श्रेयस् । सान्तम् । भदते ह्लादते सुखीभवत्यनेन भद्रम् ।
म पाप गालयतीति मङ्गलम् । भवनशील भावुकम् । ‘‘श्रुक्रमगमहनवृषभूस्थालपपतपदामुक्ञ्ज’’ । प्रशस्तो २५
भवोऽस्त्यास्तीति भविकम् । पुण्यकृतो भवितव्य भवति भव्यम् । श्व शोभनञ्च वसीयः श्वोवसीयः ।
श्वोवसीयश्च । ‘‘श्वसो’’ ‘‘वसीयस्’’ । शीयते तन्क्रियते दुःखमनेन शिवम् । भाष्यविधातृणां श्रीमदमर-
कोतीनां शिव भवतु ।

१ वृजिनशब्दो भङ्गुरवाची । तदुक्तम्—“वृजिन भङ्गुर भुग्रमराल जिह्ममूर्तिमत्’
अभि० चि० ३।१३ । लक्षणया भङ्गुरकेशोऽपि वृजिनशब्दप्रयोगः । २ का० सू० ३।२।११ ।
३ का० सू० ३।५।२ । ४ का० सू० ४।५।८२ । अत्र दुर्गवृत्ति “ऊनचुदपीडमृगयतिभ्य इनन्तेभ्यो या
प्राप्ते वचनम्” इत्येवरूपा । ५ अस्तुकरणमस्तुङ्कार । ६ का० सू० ४।३।१ । ७ “व्यञ्जनमस्वर परवर्णं
नयेत्” का० सू० १।१।२१ । ८ का० सू० ४।१।२३ । ९ सत्यस्य करण सत्यङ्कारः । भावे णञ् । कर्तृ-
विग्रहणीकोत्स्वयुक् । १० का० सू० ४।४।३४ । ११ का० सू० २।६।४१ । वृत्ति २७ ।

वक्ता वाचस्पतिर्यत्र श्रोता शक्रस्तथापि तौ ।

शब्दपारायणस्यान्तं न गतौ तत्र के वयम् ॥ १६६ ॥

अस्य श्लोकस्य सुगमव्याख्या ।

तथापि किञ्चित् कस्मैचित् प्रतिबोधाय सूचितम् ।

५

बोधयेत्कियदुक्तिज्ञो मार्गज्ञः सह याति किम् ॥ २०० ॥

तथापि मया धनञ्जयकविना सूचितं कथितम् कस्मैचित् प्रतिबोधाय ज्ञानाय । उक्तिज्ञो बोधयेत् ज्ञापयेत् । मार्गज्ञः किं सह याति गच्छति, अपि तु न गच्छति ।

प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।

द्विःसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥ २०१ ॥

१०

एतद्वत्तत्रयमपश्चिमं नवीनमपूर्वं वर्तते ।

कवेर्धनञ्जयस्येयं सत्कवीनां शिरोमणेः ।

प्रमाणं नाममालेति श्लोकानां हि शतद्वयम् ॥ २०२ ॥

धनञ्जयस्य कवेः सत्कवीनां शिरोमणे इति अमुना प्रकारेण इयं नाममाला श्लोकानां शतद्वयं २०० प्रमाणमस्ति ।

१५

ब्रह्माणं समुपेत्य वेदनिनदव्याजात् तुषाराचल-

स्थानस्थावरमीश्वरं सुरनदीव्याजात् तथा केशवम् ।

अप्यम्भोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोपदेशादहो

फूत्कुर्वन्ति धनञ्जयस्य च भिया शब्दाः समुत्पीडिताः ॥ २०३ ॥

अहो लोका धनञ्जयस्य च भिया कृत्वा शब्दाः समुत्पीडिताः सम्यक् प्रकारेण पीडिताः २० फूत्कुर्वन्ति । किं कृत्वा पूर्वं वेदनिनदव्याजात् मिषात् ब्रह्माणं समुपेत्य प्राप्य, ईश्वरं तुषाराचलस्थान-
स्थावरं सुरनदीव्याजात् प्राप्य, केशवं श्रीविष्णुं किं विशिष्टं अम्भोनिधिशायिनं जलनिधिध्वानोप-
देशात् समुपेत्य सुगमोऽयं श्लोकः ।

इति महापण्डितश्रीमदमरकीर्तिना त्रैविद्येन

श्रीसेन्द्रवंशोत्पन्नेन शब्दवेधसा कृताया

धनञ्जयनाममालाया प्रथमं काण्ड

व्याख्यातम्

श्रीमद्वनञ्जयकविविरचिता

अनेकार्थ नाममाला

—०—

जिनेन्द्रं पूज्यपादं च चैलाचार्यं शिवायनम् ।

अर्हन्तं शिरसा नत्वाऽनेकार्थं विष्टुणोम्यहम् ॥ १ ॥

गम्भीरं रुचिरं चित्रं विस्तीर्णार्थप्रसाधकम् ॥

शब्दं मनाक् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥ २ ॥

गम्भीरं रुचिरं मनोज्ञं चित्रं विस्तीर्णार्थप्रसाधकम् । सुगमव्याख्याऽस्ति ।

अर्हत्पिनाकिनौ शम्भू

शम्भू इति द्विवचनान्तं पदम् ।

जिनावर्हत्तथागतौ ।

जिनां कथ्येते ।

वेदसूर्यां विवस्वन्तौ

वेदश्च सूर्यश्च वेदसूर्यां विवस्वन्तौ सूर्यां कथ्येते ।

विष्णुरुद्रौ वृषार्कयो ॥ ३ ॥

विकुण्ठाविन्द्रगोविन्दौ अनन्तौ शेषशार्ङ्गिणौ ॥

शेषश्च धरणेन्द्र, शार्ङ्गौ च विष्णुः शेषशार्ङ्गिणौ ।

जीमूतौ तु करिक्रीडौ पर्जन्यौ शक्रवारिदौ ॥ ४ ॥

वनमम्भसि कान्तारे

अम्भसि कान्तारे वनम् ।

भुवनं विष्टपेऽर्णसि ।

सुगमव्याख्या ।

१. श कल्याणं भवतीति शम्भुः । वृत्प्रत्ययः । केशवब्रह्मवाची च । तदुक्तम् — ‘शम्भुः स्याद् ब्रह्मशिवयोरर्हत्यपि च केशवे, । इति वि० लो० मा० व० ९ । हेमे च — ‘शम्भुर्ब्रह्मार्हतीः शिवे’ । २१६ । इति च । २ विष्णुः, अतिवृद्धः, जित्वरः, इत्येतेष्वपि जिनः । तदुक्तम् — ‘जिनस्त्वर्हति बुद्धेऽतिवृद्धजित्वरयोज्जिषु’ वि० लो० ना० व० ८ । हैमे — ‘जिनोर्हद्बुद्धविष्णुषु’ २।२६९ । ३ ‘विवस्वान् देवसूर्ययो’ अने० स० ३।३१७ । अत्र देवशब्दपाठात्प्रस्तुतेऽपि देवशब्द एव युक्तः । ४ अग्निश्च । तदुक्तम् — ‘वृषार्कपिर्वासुदेवे शिवेऽग्ना च’ अने० स० ४।२१६ । ५ अनवधिरयनन्तार्थः । ‘अनन्तः केशवे शेषे पुमाननवधौ त्रिषु’ इति मेदिनी । ६. ‘जीमूतो वासवेऽम्बुदे । घोपकेऽद्रौ भृतिकरे’ इति० अने० स० । ७ पर्जन्यो मेघगर्जितेऽपि । तदुक्तम् — ‘पर्जन्यो मेघशब्देऽपि ध्वनदम्बुद-शक्रयो’ इति मेदिन्याम् ।

घृतं सर्पिषि पानीये विषं हालाहले जले ॥ ५ ॥
 तन्पं दारेषु शय्यायां ज्योतिश्चक्षुषि तारके ।
 घवले सुन्दरे रामो वामो वक्रे मनोहरे ॥ ६ ॥
 नक्षत्रे मन्दिरे धिष्ण्यम्

- ५ देधेष्टि शब्दं करोत्यत्र जनो धिष्ण्यम् । नपुसकम् । विष शब्दे ।
 वसने गगनेऽम्बरम् ।
 वसने गगने अम्बरं वर्तते । अम्भ शब्द राति ददातीति अम्बरम् ।
 परिधौ पादपे सालः
 परिधौ पादपे सालो वर्तते । सा लक्ष्मीं लातीति साल ।
 १० “सालः शर्जतरौ वृक्षमात्रप्राकारयोरपि” इति हेम^१ ।
 सिन्धुः स्रोतसि योषिति ॥ ७ ॥
 स्रोतसि योषिति सिन्धु । स्यन्दते सिन्धु ।
 सारसः शकुनौ धूर्ते
 मरसि तडागे भव^२ सारसः ।

- ५१ केतनं दीधितौ ध्वजे ।
 केतन्ति जानन्त्यत्र केतनम् । तथा च—
 “कृत्ये निमन्त्रणे चिह्ने मन्दिरे केतनं विदुः ।”
 मयूखः कीलके दीप्तौ
 मयते विस्तार यातीति मयूख ।
 २० पतङ्गः शलमे रवौ ॥ ८ ॥
 पततीति पतङ्गः । पन्तु गतौ ।

- अञ्जनः कज्जले नागे
 कज्जले नागे अञ्जनो वर्तते । अञ्ज व्यक्तिप्रक्षणकान्तिम् । विक्रमेण^३ अञ्जते प्रकटी-
 क्रियते अञ्जन ।
 २५ सारङ्गः पृषते गजे ।
 सरतीति सारङ्गः ।
 सरलः प्रगुणे वृक्षे
 ऋजुत्वात्सरलः ।

- पुन्नागः सन्नरे तरौ ॥ ९ ॥
 पुमोश्चासी नाग श्रेष्ठ ।

१. अने० स० २।२२७। २. धूर्तपक्षे तु अरसेन द्वेषेण सहितः सारस इति विवेकः ।
 ३. गजोऽपि विक्रमेण जायते, कज्जलोऽपि विक्रमणश्लेन म्रक्ष्यते । ४. सार दृढमङ्ग यस्येत्यपि । सरतीत्यस्य
 स्थाने सारयतीति युक्तम् । ५. “पुन्नागस्तु सितोत्पले । जातीफलं नरश्रेष्ठे पाण्डुनागे द्रुमान्तरे” इति मेदिनी

पाञ्चजन्योऽनले शङ्खे

पञ्चजने पाताले भवः पाञ्चजन्यः ।

कम्बुः^१ शङ्खे मतङ्गजे ।

कम्बुः सौत्र कम्ब्यते वर्ण्यते कम्बु । अथ वा कम्बु वर्णे उणादित्वादस्मादेव नकारागमश्च ।

कस्वरो द्युभवे द्युम्ने

५

द्युभवे स्वर्गोद्भवे द्युम्ने सुवर्णे ५० ५२ । कुत्सित स्वरति कस्वरः ।

स्यन्दनं शकटेऽम्बुनि ॥ १० ॥

स्यदन्ते स्यन्दनम्^२ ।

अद्रिर्गिरिवनस्पत्योः

गिरिश्च वनस्पतिश्च गिरिवनस्पती तयोर्गिरिवनस्पत्योः । अर्थात् आकाशमित्यद्रिः ।

१०

शिखरी तरुभूषयोः

शिखरमस्तु^३ । इति शिखरी ।

*राजा चन्द्रमहीपत्योः ।

राजने इति राजा ।

द्विजो दशनविप्रयोः ॥ ११ ॥

१५

द्विर्जातो द्विजः ।

मोचामरस्त्रियो रम्भा

ब्रह्मर्षीनपि रमयतीति रम्भा ।

कदली ध्वजमोचयोः ।

क्रेन वायुना दल्यते विदार्यते कदली ।

२०

अशोकः सुमनस्तर्वाः

न शोको यस्माद्यस्य वा अशोकः ।

सुमनाः सुरपुष्पयोः ॥ १२ ॥

सुरश्च पुष्पं च सुरपुष्पे तयोः सुरपुष्पयोः । शोभनचित्तः सुमनाः ।

मुक्तारजतयोस्तारः

२५

तीर्यते तारः ।

भूरि भूयःसुवर्णयोः ।

पुण्यवन्तु भवतीति भूरि । क्लीवे ।

पानीयदुग्धयोः क्षीरम्^४

घस्तु अदने । सौत्रोऽयम् ।

३०

१ “पाञ्चजन्यस्तु विष्णुशङ्खे द्रुमान्तरे” इति मेदिनी । २ “कम्बु पुमान् गजे । बलये शङ्ख-
शम्भुककन्धरामलके स्त्रियाम्” इति वि० लो० बा० व० २ । ३ “स्यन्दनं प्रसवे नीरे स्यन्दनस्तिनिशे रथे”
वि० लो० ना० व० १५१ । ४ राजा प्रभौ च नृपतौ क्षत्रिये रजनीपतौ । पक्षे शके च पुमि स्यात्” इति
मेदिनी । ५ घस्यतेऽद्यते क्षीरम् । “घस्तु अदने” । घसेः किञ्चेति कीरः ।

पयः सलिलदुग्धयोः ॥ १३ ॥

पीयते पयः ।

कालप्रकर्षयोः काष्ठा

कालश्च शुटयादिलक्षणः ।

५

“स्वस्थे नरे सुखासीने यावत्स्पन्देत लोचनम् ।

तस्य त्रिशत्तमो भागश्शुटिरित्यभिधीयते ॥”

अथवा—

“सर्षपस्य प्रयत्नेन क्षिप्तस्य पततोऽम्बरात् ।

द्वियव यावदध्वान कालः स (च) त्रुटिः स्मृतः ॥”

प्रकर्षश्च प्रकर्षता उत्कृष्टता वा । कालश्च प्रकर्षश्च कालप्रकर्षौ तयो कालप्रकर्षयोः काष्ठा

१० कथ्यते । काशते भासते काष्ठा । शान्तोऽयम् ।

कोटिः संख्याप्रकर्षयोः ।

कुटतीति कोटिः ।

“कियती पञ्चसहस्री कियती लक्षा च कोटिरपि कियती ।

औदार्योन्नतमनसा रत्नवती वसुमती कियती ॥”

१५

रन्ध्रसंश्लेषयोः सन्धिः

सन्धान सन्धिः ।

“सन्धिर्यानीं सुरङ्गाया नाट्येऽङ्गो श्लेषभेदयोः” इति हैमी ।

सिन्धुर्नदसमुद्रयोः ॥ १४ ॥

स्यन्दते सिन्धुः ।

२०

निषेधदुःखयोर्वाधा

बन्धन (वाधन) बाधा । बाधु प्रतिधाते ।

व्यामोहो मूर्खमौढ्ययोः ।

व्यामुह्यते व्यामोहः ।

कौपीनाकारयोर्गुह्यम्

२५

गुह्यते गुह्यम् । गुह्यं सवरणे । “गुह्यमुपस्थे रहस्ये च” इति हैमी ।

कीलाल रुधिराम्भसोः ॥ १५ ॥

कीला लातीति कीलालम् । “कीलाल रुधिरे नीले” इति हैमी ।

मूल्यसत्कारयोरर्घः

अर्घ्यं पूज्यतेऽनेनत्यर्थः । “व्यञ्जनाच्च” घञ् । होपवत्वादीर्षो न । “न्यङ्क्वादीना हश्च घ.” ।

३०

जात्यः श्रेष्ठकुलीनयोः ।

१ अने० म० २।२५७ । २ व्यामोहशब्दस्य मूर्खार्थे मूल भृग्यम् । ३ अने० स० २।३५८ ।

४ कीला ज्वालामलति वारयति । अल पर्याप्त्यादौ । इति जले विप्रद्व । रुधिरार्थे तु टीकोक्त । ५ अने०

स० ३।६८३ । ६ का० सू० ४।५।२९ । ७ का० सू० ४।६।५७ ।

भेष्टकुलीनयोर्जात्यः । जात्या भवो जात्यः ।

मेघवत्सरयोरब्दः

अवतीति अब्दः । कुन्दादयः ^१—“कुन्दकुन्दमन्दाब्दाः” । “अब्दः संवत्सरे मेघे मुस्तके गिरिभिद्यपि” ।

ताक्ष्यो हयगरुत्मतोः ॥ १६ ॥

५

तृक्षस्यात्पय ताक्ष्यः । पुंलि ।

स्तब्धतास्थूणयोः स्तम्भः

स्तम्भ इति सौत्रोऽयं वातु ।

चर्चा चिन्तावितर्कयोः ।

चर्चण चर्चा ।

१०

हरकीलकयोः स्थाणु

तिष्ठतीति स्थाणु ।

स्वैरः स्वच्छन्दमन्दयोः ॥ १७ ॥

स्वस्य ईर स्वैरः । ^३स्वस्यात ऐतमारैरिणोरपि वक्तव्यम् । तथा चालङ्कारे—

“स्वैरं विहरति स्वैरं शते स्वैरं च जल्पति ।

१५

भिक्षुरेकः सुखो लोके राजचोरभयोऽजितः ॥”

“स्वैरं मन्दं स्वतन्त्रं च” इति हैमी ^४ ।

शङ्कुः सङ्कीर्णविवरे पलालाग्नौ च कीलके ।

संख्यायाम्

श कायति कूयते वा “शङ्कु” ।

२०

काननोद्भूते वह्नौ दावो दवोऽपि च ॥ १८ ॥

काननोद्भूते वह्नौ दावो दवोऽपि च । दृनीतीति दवः । दाव । “वाः ज्वलादिदुनीभुवो णः” ।

कीनाशः कृपणे भृत्ये कृतान्ते पिशिताशिनि ।

तथा पुण्यजनान् प्राहुः सज्जनान् राक्षसानपि ॥ १९ ॥

लोभेन विलश्यते बाध्यते कीनाशः । तालव्यः ।

२५

विरोचनो रवौ चन्द्रे दनुस्वनौ हुताशने ।

विरोचते इत्येवशीलो विरोचनः ।

हंसो नारायणे ब्रध्ने यतावश्वे सितच्छदे ॥ २० ॥

हन्तीति हंसः ।

सोमश्चन्द्रोऽमृतं सोमः सोमो राजा युगादिभूः ।

३०

सोमः प्रतानिनीभेदः सोमपोऽगस्त्यदिग्नपतिः ॥ २१ ॥

१ का० उ० मू० ३।६४ इति द्रष्टव्यः । २ अने० स० २।२२६ । ३ “स्वत्येरेरिखीरिषु” का० सू० पू० ३८।४ अने० स० २।४८२ । ४ शङ्कतेऽस्मात् शङ्कु । “शकि शङ्कायाम्” । औणादिक उ० । ६ का० सू० ४।२।५। इति खप्रत्ययः “दुदु उपतापे” ।

षुञ् अभिषेवे । अनेन सर्वेषां साधनिका ज्ञातव्या ।

अजो विधिरजो विष्णुरजः शम्भुरजस्तमः ।

अजस्त्रैवार्षिको व्रीहिरजो रामपितामहः ॥ २२ ॥

न जायते नोत्पद्यते अजः ।

५

शुद्धेऽनुपहते बह्वौ ब्राह्मणे सचिवोत्तमे ।

आषाढेऽध्यात्मसंविच्चौ ब्रह्मचर्ये शुचिर्मतः ॥ २३ ॥

मतः कथितः । एतेष्वर्थेषु शुचिशब्दः । शोचति जनो देहलग्नेऽत्र शुचिः । तथा च यश-

स्तिलकचम्पूकाव्ये-

“न स्त्रीभिः सङ्गमो यस्य सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।

१०

त शुचिं सर्वदा प्राहुः मारुतं च हुताशनमिति ॥”

अर्थोऽभिधेयैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु ।

अर्थशब्दः पठ्यते । अभिधेयश्च शब्दो वाचकः, शब्दमध्ये योज्यावर्थः स वाच्यः अभि-
धेयश्च कथ्यते । रा सुवर्णम् । वस्तु—अस्थ्यादिलोहितदिवा । गैरिकान्वित (दिक् च) वस्तु । प्रयोजन
कार्यम् । निवृत्तिश्च मुक्तिः । तासु । शृ गतां । अर्थते इत्यर्थः ।

१५

भावः पदार्थचेष्टात्ममत्ताभिप्रायजन्मसु ॥ २४ ॥

एतेष्वर्थेषु भावः पठ्यते । भवतीति भावः । “वा” उवलादिदुनोभुवो ण ।”

प्रायो भूमापमातर्क्यप्रभृत्यन्ननिवृत्तिषु ।

एतेष्वर्थेषु प्रायः शब्दः ।

अन्तः पदार्थमामीप्यधर्ममत्त्वव्यतीतिषु ॥ २५ ॥

२०

एतेष्वर्थेषु अन्तः ।

अक्षो द्यूते वरूथाङ्गे नयनादौ विभीतके ।

द्यूते वरूथाङ्गे रथचक्रावयवे, नयनादौ, विभीतके पूतनायाम् अक्षो वर्तते ।

सारः श्रेण्टे बले वित्ते कोशे जलचरे स्थिरे ॥ २६ ॥

श्रेण्टे, बले, वित्ते, कोशे, कोशे वा पाठः । जलचरे, स्थिरे सारो वर्तते । सरत्थनेनेते सारः ।

२५

३ “बलमत्स्ययोश्च” इति परसूत्रेण घञ् । स्वमते “अकर्तरि च कारके सञ्ज्ञायाम्” इति घञ् । “मारो
मज्जस्थिरांशयोः, बले श्रेण्टे ‘च’ इति हैमी ।

वाचि वारि पशौ भूमौ दिशि लोम्नि रवौ दिवि ।

विशिखे दीधितौ दृष्टावेकादशसु गौर्मतः ॥ २७ ॥

पूजा गच्छतीति गौ । गमेडोः ।

३०

चन्द्रे सूर्ये यमे विष्णौ वासवे दर्दुरे ह्ये ।

मृगेन्द्रे वानरे वायौ दशस्वपि हरिः स्मृतः ॥ २८ ॥

हरतीति हरिः ।

१ का० सू० ४।२।५५ । २ प्रकृष्टमयन प्रायः । “इण गतौ” । एरच् । ३. “सर्तैः स्थिरव्याधि-
मत्स्यबले” हे० श० ५।३।१७ । ४ का० सू० ४।५।४ । ५. अने० स० २।४७८ ।

पद्मे करिकरप्रान्ते व्योम्नि खड्गफले गदे ।

वाद्यमाण्डमुखे तीर्थे जले पुष्करमष्टसु ॥ २६ ॥

पुष्पातीति पुष्करम् ।

शृङ्गारादौ कषायादौ घृतादौ च विषे जले ।

निर्यासे पारदे रागे वीर्येऽपि रस इष्यते ॥ ३० ॥

५

शृङ्गारादौ—

“शृङ्गारहास्यकरुणारौद्रवीरभयानकाः ।

बीभत्साऽद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ॥”

कषायादौ—तिकाः म्लमधुकटुकषायेषु । घृतादौ—दुग्धदधिघृततैललवणेशुरसेषु ।

विषे जले, निर्यासे वृद्धरसविशेषे, पारदे रागे, वीर्येऽपि रस इष्यते ।

१०

तीर्थं प्रवचने पात्रे लघ्वाम्नाये विदां वरे ।

पुण्यारण्ये जलोत्तारे महासत्ये महामुनौ ॥ ३१ ॥

एतेष्वर्थेषु तीर्थम्^१ ।

धातुः पञ्चसु लोहेषु शरीरस्य रसादिषु ।

पृथिव्यादिचतुष्के च स्वभावे प्रकृतावपि ॥ ३२ ॥

१५

पञ्चम् लोहेषु सुवर्णरजतताम्ररीतिकाभ्येषु । शरीरस्य रसादिषु रसासङ्गमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रेषु ।
पृथिव्यादिचतुष्के च पृथिव्यतेजावायु (वनस्पति) पु, स्वभावे, वातपित्तश्लेष्मादिषु एतेष्वर्थेषु धातुः
पठ्यते । दधातीति धातुः ।

प्रधानशृङ्गलाङ्गलभूपापुण्ड्रप्रभावना ।

ध्वजलक्ष्मणतुरङ्गेषु ललामो नवसु स्मृतः ॥ ३३ ॥

२०

एतेष्वर्थेषु ललामः । ललामन् ।

आकृतावक्षरे रूपे ब्राह्मणादिषु जातिषु ।

माल्यानुलेपने चैव वर्णः षट्सु निगद्यते ॥ ३४ ॥

आकृता, अक्षरे, रूपे, ब्राह्मणादिषु जातिषु माल्यानुलेपने च वर्णो^३ निगद्यते ।

अकारादावुदात्तादौ षड्जादौ निस्वने स्वरः ।

२५

एतेष्वर्थेषु स्वरः कथ्यते । अकारादौ—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ ए, ऐ, आ औ ।
उदात्तादौ—“उच्चैरुपलभ्यमान उदात्त,” “नीचैरनुदात्त,” “समवृत्त्या स्वरित,” । षड्जादौ—

“निपादपर्मगान्धारषड्जमध्यमश्रवताः ।

पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्निष्कण्ठोत्थिताः स्वराः ॥”

निस्वने शब्दे ।

३०

सङ्केताचारसिद्धान्तकालेषु समयः स्मृतः ॥ ३५ ॥

समयते समयः ।

१ तरति तीर्थते वाऽनेन तीर्थम् । २. “लङ् विलासे” । डलयोरभेदात् ललतीति ललामः ।
३ “वर्ण” शब्दे । वर्णयति वर्णयते वा वर्ण । घञ् कर्मणि, अञ्वा कर्तरि । ४ तारस्व० सू० २ । ५ अम०
को० १।७।१ ।

तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते सैन्ये तन्तौ परिच्छदे ।

तन्त्र्यन्ते ग्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति तन्त्रम् । अप्रत्यय ।

सत्त्वमोजसि सत्तायामुत्साहे स्थेन्नि जन्तुषु ॥ ३६ ॥

एतेष्वर्थेषु सत्त्वम् ।

५

रूपादौ तन्तुषु ज्यायामप्रधाने नये गुणः ।

गुणयतीति गुणः ।

ज्ञानचारित्रमोक्षात्मश्रुतिषु ब्रह्मवाग्वरा ॥ ३७ ॥

वरा विशिष्टा ।

अवकाशे क्षणे वस्त्रे बहिर्योगे व्यतिक्रमे ।

१०

मध्येऽन्तःकरणे रन्ध्रे विशेषे रहितेऽन्तरम् ॥ ३८ ॥

एतेष्वर्थेषु अन्तरः ।

हेतौ निदर्शने प्रश्ने श्रुतौ कण्ठसमीकृतौ ।

आनन्तर्येऽधिकारार्थे माङ्गल्ये चाथ इष्यते ॥ ३९ ॥

इष्यते कथ्यते । अथ एष्वर्थेषु ।

१५

हेतावेवंप्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दः प्रकीर्तितः ॥ ४० ॥

प्रकीर्तितः कथित इतिशब्द एतेष्वर्थेषु । इण् गतौ । इ । प्रति एवमादिकमर्थमिति ।

“इति ‘अमुर्षणि प्रभृतिभ्यो यणवत्’ इत्यनेनेतिप्रत्यय । इति जातम् । प्रथ० सि । “अन्व-
२याच्च” सिलोपः ।

२०

धर्मो धनुष्यहिसादावुत्पादादावये नये ।

द्रव्यक्रियाश्रये वित्ते जीवादौ दारुवैकृते ॥ ४१ ॥

एतेष्वर्थेषु धर्मः । धरतीति धर्मः ।

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः ।

एतेष्वर्थेषु पुद्गलः^३ ।

२५

अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणा ॥ ४२ ॥

(अकर्म पुद्गलस्कन्धः) कर्म-ज्ञानावरणादि, नोकर्म — शरीरादि । जातिगोत्रादि । एतेषु वर्गणा
वर्तते ।

ऐश्वर्यस्यासमग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।

वैराग्यस्यावबोधस्य षण्णां भग इति स्मृतः ॥ ४३ ॥

३०

भजन्त्यस्मिन्निति *भगः ।

प्राहुः कैवल्यमार्हन्त्ये विविक्ते निर्बृतावपि ।

१. कातन्त्रेऽस्य शुद्ध रूप नोपलब्धम् । २. का० सू० २।४।४ । ३. पूर्वन्ते पुनः पुनः सत्यवर्मे
इति पुरः । गलन्ति विलीयन्ते गलाः । पुरश्च ते गलाश्च, पुद्गलाः । पृषोदरादिस्वादस्य द । ४. भज्यते
सेव्यते धार्यते वा भगः ।

केवलस्य भाव कैवल्यम् ।

लब्धिः केवलबोधादाविष्टाप्तौ नियतौ श्रियाम् ॥ ४४ ॥

लग्नमन लब्धिः ।

अनेकान्ते च विद्यादौ स्यान्निपातः श्रुते क्वचित् ।

स्यात् भवेत् एतेष्वेषु निपातः ।

५

भ^०द्वारको धर्मचन्द्रस्तत्पट्टे धर्मभूषणः ।

तत्र देवेन्द्रकीर्तिः श्रीकुमुच्चन्द्रस्ततः परम् ॥ १ ॥

धर्मचन्द्रस्ततो ज्ञानसागरस्तत्पदेऽभवत् ।

तेन पुस्तकमेतद्वि दत्तं (लोकहितेच्छया) ॥ २ ॥

इति

धनञ्जयनाममाला सटीका समाप्ता

— — — — —

१ स्यात् इत्याकारको निपात एतेष्वेषु इति सम्बन्धः । २ इतः पर मुद्रितपुस्तकेष्वधिकः पाठ उपलभ्यते, तद्यथा—“दर्शनादौ मणौ रत्न भव्यः शस्त्रे प्रसेत्स्यति ॥४५॥ परमात्मा जिने सिद्धे पर-
मेष्ठ्यर्हदादिषु । सिद्धाः सिद्धनिषयायामर्हत्सिद्धभिषामपि ॥४६॥ अर्हत्सिद्धमिति द्वावप्यर्हत्सिद्धाभिधा-
यिनौ । अर्हदादीनपि श्रावुः शरणात्तममङ्गलान् ॥४७॥ इति । ३ अत्राशुदिदोपात्किञ्चित्पाठभेदः,
स च शोषित इत्यरूपः संवृतः ।

अनेकार्थ-निघण्टुः

गम्भीरान् रुचिरांश्चित्रान् विस्तीर्णार्थप्रसाधनान् । कष्टशब्दान् प्रवक्ष्यामि कवीनां हितकाम्यया ॥१॥
वाग्दग्भूरश्मिवज्रेषु पदवक्षिस्वर्गवारिषु । नवस्वर्थेषु मेधावी गोशब्दमुपलक्षयेत् ॥२॥
क प्रजापतिरुद्दिष्टो को वायुरभिधीयते । कः शब्द स्वर्गमाख्याति क इत्यात्मा मत क्वचित् ॥३॥
सलिल कमिति ज्ञेय शिर कमिति चोच्यते । देवाननिमिषानाहुर्मत्स्याननिमिषांस्तथा ॥४॥
अग्निश्च वर्हिण चैव वृक्ष कुक्कुट एव च । शिखिनोऽभिहिता शस्त्र पृथक्श्च मत शिखी ॥५॥
हंसो नारायणः प्रोक्त क्वचिद्धंसो दिवाकर । अश्वश्चापि स्मृतो हंसो हंसश्चापि विहगम् ॥६॥
सारमस्सरसिजेन्द्रो पतञ्जयपि च सारस । राजाऽपि नृपतिर्ज्ञेयो राजा चोक्तो निशाकर ॥७॥
विभावमुहुंताश स्याच्छवेतच्छत्र क्वचिद्भवेत् । हिमाराति स्मृतो वृद्धि हिमारातिश्च भास्कर ॥८॥
धनञ्जयोऽग्निर्ध्याख्यातो पार्थश्चापि धनञ्जयः । बीभत्सश्च मत पार्थो बीभत्सो विकृत स्मृत ॥९॥
अग्निविरोचन प्रोक्तो भास्करस्तु विरोचन । विरोचनश्च चन्द्र स्यात्क्वचिद्द्वयो विरोचन ॥१०॥
पाञ्चजन्य क्वचिद्वृद्धिः क्वचिच्छृङ्खो निगद्यते । कम्बुश्च गदितः शङ्ख कम्बुरिष्टश्च कुञ्जर ॥११॥
भास्करोऽग्नि समुद्दिष्टः सहस्राशुरपि क्वचित् । पतङ्गो दिनकृद् ज्ञेयः पतङ्गः शलभः स्मृत ॥१२॥
कौशिको देवराजः स्यादुलूकश्चापि कौशिक । शम्भुर्ब्रह्मा च विष्णुश्च शम्भुश्चैव महेश्वरः ॥१३॥
वृषकेतुर्मत शङ्ख शङ्खः कील इहोच्यते । जम्बुको वरुणो ज्ञेय शृगालश्चापि जम्बुकः ॥१४॥
अक इष्टस्तु मधवान् घर्माशुरक उच्यते । मन्थी राहुश्च चन्द्रश्च ग्रहो मन्थी निरुच्यते ॥१५॥
केतवो रश्मयो ज्ञेयाः केतवश्च महाध्वजाः । तमोनुद सहस्राशुरनिश्चापि प्रकीत्यते ॥१६॥
मयूखा किरणा ज्ञेया मयूखाश्चापि कीलकाः । सप्तषिरुत्सव प्रोक्तः सप्तान्ये ऋषयः क्वचित् ॥१७॥
वसव शवरा उक्ता देवाश्च वसवो मताः । नक्षत्र धिष्ण्यमित्युक्त गेह धिष्ण्य मत क्वचित् ॥१८॥
वासोऽम्बरमिति ख्यातमम्बर च नभःस्थलम् । पय सलिलमुद्दिष्ट पय क्षीर मत क्वचित् ॥१९॥
शिव पानीयमुद्दिष्ट शिव श्रेय शिव सुखम् । शिव व्योमर्षति प्राहुः शिव श्रेष्ठ प्रचक्षते ॥२०॥
क्षर जल विजानीयात्क्वचिन्मेध विदुः क्षरम् । स्यन्दन चाम्बु निर्दिष्ट स्यन्दनश्च महारथः ॥२१॥
कृष्ण तम समाख्यात कृष्णश्चाधोक्षजस्तथा । अमृत क्षीरमित्युक्त क्वचिच्छेष्ट समुद्रजम् ॥२२॥
शज च सलिल प्रोक्त मृतमाहु शव तथा । तोय घृतमिति प्रोक्त घृत सर्पि क्वचिद्भवेत् ॥२३॥
पानीय च विष प्रोक्त क्वचिद्धालाहल विषम् । हस्तिहस्त कर प्रोक्त करो हस्तः प्रचक्ष्यते ॥२४॥
कीलाल हधिर प्रोक्त नीर चैव प्रशस्यते । भुवन सलिल प्रोक्त आकाश भुवन स्मृतम् ॥२५॥
प्रवाल कोमल ज्ञेय कोमल स्पष्टवाचकम् । सदन च स्मृत तोय सदन वेदम उच्यते ॥२६॥
तोय सद्येति गदित निलय सध निगद्यते । सवर च जल प्रोक्त सवरः पर्वतो भवेत् ॥२७॥
सवरश्चाऽमुर ख्यातो यो बिभर्ति रसा प्रियाम् । स्वरवाक्क्षमास्विडा प्राहुरिडा चाम्बरदेवताम् ॥२८॥
पत्नी चन्द्रेरिडा प्राहुरिला तत्समता गता । अदिति पृथिवी ज्ञेया देवमाताऽदिति क्वचित् ॥२९॥
अध्यह्ना भार्या परित्यक्ता त्वद्भिदिश्च निगद्यते । वृषो धर्म्य क्वचिज्ज्ञेयो गवामपि पतिर्वृष ॥३०॥
वृषा कर्णश्च गदितो वृषा चोक्तः शतक्रतु । रोहिणेयो बल प्रोक्तो रोहिणेयो बुध क्वचित् ॥३१॥
बलदेवो मत शेषो नागो वा शेष उच्यते । रामस्तु लागली ज्ञेयो रामो दाशरयि क्वचित् ॥३२॥
रामश्च शुक्लो वर्णो रामश्च क्षत्रनाशनः । वराह केशवः ख्यातो वराहो जलद क्वचित् ॥३३॥
वराह शकरो ज्ञेयो विष्णुर्मधो हरिस्तथा । अजाराट्स्मरेन्दवो ज्ञेयास्त्रिनेत्रश्चाप्यजो मत ॥३४॥
अज पशुश्च विख्यातो तथाजो ब्रह्मकेशवो । शरीरजः स्मृतो रोग पुत्रश्चापि शरीरजः ॥३५॥

जय पुष्करमञ्ज च नागनासाग्रमेव च । कूल नभः समाख्यात कूल रोध प्रचक्षते ॥३६॥
 ख चानन्तमिति प्रोक्तमनन्त च बल क्वचित् । विष्णु क्वचिदनन्त स्यान्नागश्चानन्त उच्यते ॥३७॥
 प्रजापति स्मृतो राजा ब्रह्मा चापि प्रजापति । प्रजापति स्मृत क्षता क्षता च चर उच्यते ॥३८॥
 वाम पयोधरः प्रोक्तो वाम स्याद्दविण हर । वामश्च मदन प्रोक्तो वामश्च प्रतिकूलके ॥३९॥
 आगोपो गोपको ज्ञेय क्वचिदागोपको ध्वज । उरश्चाङ्गु समाख्यातः स्थानमङ्गु स्मृतस्तथा ॥४०॥
 वासरस्तु स्मृतो नागो वासरो दिवसो मतः । विभावसुर्निशा ज्ञेया गन्धर्वश्च क्वचिन्मतः ॥४१॥
 शर्वर्यो रात्रयः प्रोक्ता शर्वर्यश्च स्त्रियो मताः । सान्द्र घनमिति प्रोक्त स्निग्ध सान्द्र निगद्यते ॥४२॥
 स्वः स्वर्गस्य मत नाम स्वः सुख क्वचिदुच्यते । स्व आत्मा चैव निर्दिष्टः स्वः प्रोक्तो गृहमूषिकः ॥४३॥
 ककुब्धश्चोविशेषज्ञो मतः शास्त्रेपि ना ककुप् । ककुम्भहोहः प्रोक्तो ज्ञेयास्तु ककुभो दिशः ॥४४॥
 क्षय वेदम समुद्दिष्ट क्षय रोग प्रचक्षते । जलदस्तु प्लवो ज्ञेय प्लवो ज्ञेयस्तथोद्भुपः ॥४५॥
 प्रासादो मण्डपः प्रोक्तो विहारश्चापि कथ्यते । घन घन विजानीयाद् घन विपुलमुच्यते ॥४६॥
 प्रयुज्यते च कस्मिन्चिद् घन सङ्घातवाद्ययो । बह्व्य स्यन्दनाग्र स्याद्बह्व्य वेदम उच्यते ॥४७॥
 चमूश्च बर्म सहसा प्रवदन्ति मनीषिण । अमुराश्च मुरा ज्ञेया क्वचिद्देवाग्र्योऽमुरा ॥४८॥
 नागाश्च द्विरदा ज्ञेया पन्नाशश्च क्वचिन्मता । गन्धर्वश्च तथा वायु क्वचिन्म्याद् देवगायन ॥४९॥
 नाभ्यो हय समुद्दिष्टस्तार्क्ष्यश्चापि पनत्रिगट् । बालेपानमुगानाहुर्वल्लेयाश्च क्वचित् खरान् ॥५०॥
 नृणो वनस्पति प्रोक्ता क्वचिदाद्रिश्च कथ्यते । शिवरो वृक्ष उद्दिष्ट शिवरो पर्वतं स्मृत ॥५१॥
 द्विजो विप्रश्च दन्तश्च द्विज पक्षी निगद्यते । चौरौ मन्त्रिभ्यश्चो ज्ञेयो वातश्चापि मलिम्बुच ॥५२॥
 आन्मज रक्तमुद्दिष्ट सुत कामस्तथैव च । कीनाशो मृतको ज्ञेय कीनाशश्चापि राक्षस ॥५३॥
 कीनाशोऽग्नि कृन्धनश्च कृपणो यम एव च । कीनाश कर्षको ज्ञेय कीनाशश्च वृकोदरः ॥५४॥
 अवदात प्रधान स्यादवदात च पाण्डुरम् । ज्योतिर्लौचनमद्दिष्ट ज्योतिर्नक्षत्रमुच्यते ॥५५॥
 ज्योतिश्च गदितो वल्लि काव्येषु मुनिपुङ्गवै । प्रधान नञ्जन ज्ञेय प्रधान श्वेतमुच्यते ॥५६॥
 अदरः सवत्सरो ज्ञेयो मेघश्चापि क्वचिन्मन । बलाहका महामेघा शिवरी च बलाहक ॥५७॥
 तोयद जलद प्राहुस्तोयद कथ्यते घनम् । जीमूतश्च मतो नागो जीमूत क्वचिदम्बुद ॥५८॥
 पोलस्त्य तु मन युद्ध पोलस्त्य पोलम् विदुः । शुचिकृद्रजकश्चैव प्रोक्तो निम्न बुधै रस ॥५९॥
 पञ्चन्य जलद प्राहु पञ्चन्य तु शतकेतु । शिरीमुखः स्मृता वाणा भ्रमराश्च शिरीमुखा ॥६०॥
 लेखा सोमेति विज्ञेया लेखा घित्रकृतो मता । अम्बरीष क्वचिद्भ्राष्ट्र क्वचियुद्ध निगद्यते ॥६१॥
 पुस्त्व चापि मत युद्ध पुस्त्व पोलश्चमुच्यते । विद्यामोऽरिपवो ज्ञेया विद्यासम्भवसवो मता ॥६२॥
 मायाऽविद्येति विज्ञेया क्वचिन्माया तु सावरी । मधु द्राक्षीते विज्ञेया क्वचित्स्यानमधु माक्षिकम् ॥६३॥
 मधु चाम्बु समाख्यात सुरा च मधुसज्ञका । ख रधमिति विज्ञेय ख गृह नभ एव च ॥६४॥
 खमिन्द्रियमिति ख्यात ख च नक्षत्रमुच्यते । धार्तराष्ट्रा महाहसा धृतराष्ट्रमुता क्वचित् ॥६५॥
 प्रभाकरो मत सूर्यो वल्लिश्चापि प्रभाकर । सित शुक्लमिति ज्ञेय सित बद्ध प्रचक्षते ॥६६॥
 असित कृष्णमित्युक्त अशित भक्षित स्मृतम् । वभ्रस्तु नकुलो ज्ञेय पाण्डवो नकुलस्तथा ॥६७॥
 त्रिशङ्कुमाहुर्मार्जारमविश्चापि तथेष्टने । यमस्तु वायसो ज्ञेयो यम प्रेताधिपस्तथा ॥६८॥
 लक्ष्मण सारस विद्यात्तथा दशरथात्मजम् । लक्ष्म चन्द्रस्य काण्व्यं स्याल्लक्ष्म्य केतुः प्रकीर्तितः ॥६९॥
 केतुश्चापि मत काव्ये लक्ष्मेति मुनिपुङ्गवै । आरुणेय स्मृतो दक्षो दक्षश्चाचेतस क्वचित् ॥७०॥
 आशुकारी भवेद्दक्ष स्यादलो तोमर स्मृत । अदित्य च रवि विद्याद् वैत्यश्चाप्यदिते मुत ॥७१॥
 रोगो रजस्तथा रेणू रजो लोहितमुच्यते । स्कन्धो नितम्बसज्ञ स्यान्नितम्ब जघन तटम् ॥७२॥
 हेम वस्विति विज्ञेय वसु तेजो निगद्यते । सारङ्ग चातक प्राहुः स्वर्ण चापि सितासितो ॥७३॥
 रम्भाश्च कदली प्राहु रम्भा स्वर्गाङ्गुना मता । प्रावाणो गिरिजा प्रोक्ता मेघाश्चापि मनीषिभि ॥७४॥

..... निगद्यते । औषण रसमुद्दिष्टमृत सत्यमपि वधञ्चित् ॥७५॥
 भक्ष आत्मेति विज्ञेयः केचिदाहुर्बिभीतकम् । ज्ञेयमिन्द्रियमक्ष च शाकट कर्ष एव च ॥७६॥
 भक्ष च पाशक विद्याद्वयावहारिकमेव च । पयमिन्द्रियमित्युक्त पय तामरस विबु ॥७७॥
 चैत्यमायतन प्रोक्त नोडमायतन तथा । पुष्प लोहितमुद्दिष्ट पुष्प च कुसुम तथा ॥७८॥
 बाजी तुरङ्गमो ज्ञेयो बाजी श्येनो विहङ्गमः । विष्णवन्द्रसिंहमण्डकचन्द्रादित्यास्तु वानरान् ॥७९॥
 बभ्रुशिवानिलहृयान् हरोनिच्छन्ति कोविदाः । पुरुषध्वजलिङ्गेषु ह्यभूषणलक्ष्मण ॥८०॥
 रामशेषावनीन्द्रेषु ललाम नवसु स्मृतम् । शुक्रा स्मृताऽक्षिदोषोना लवली मञ्जरी तथा ॥८१॥
 वक्रवक्त्र शुक्रो ज्ञेय कोकिला वचनप्रिया । पुलिन जलविच्छेद पङ्कज स्यात्कुशेशयम् ॥८२॥
 रत पापमिति ज्ञेय सत्वर शीघ्रमुच्यते । पिशङ्ग रोचनाभ स्यान्मेचकस्तिलको मतः ॥८३॥
 ललाटेऽवस्थित चिह्न विद्वद्भिस्तिलक मतम् । परिचर्य च कटक निकणस्तु कषो मतः ॥८४॥
 नानारत्नरूपचिता मञ्जुष रागिणी स्मृता । दिनकृद्वाजिसिंहेषु केसरित्व विधीयते ॥८५॥
 अव्यक्तो मधुरः शब्दः कल इत्यभिधीयते । अलातमुल्मुक ज्ञेय छेदो नाम भयङ्कर ॥८६॥
 भाव शृङ्गारमाधुर्य भावोऽवस्थाप्ररूपणम् । विलासः कामजो दोषस्तदेव ललित मतम् ॥८७॥
 उत्तमाङ्ग विना देह कबन्ध चेति शस्यते । शिरसो वेष्टन यद्वै तपुष्णीष निगद्यते ॥८८॥
 आहत समदीर्घ स्यान्निविड पीडितोन्नतम् । मण्डको भेकसज्ञः स्याद्दर्षाभूचातको मतः ॥८९॥
 शिवा पिङ्गवती ज्ञेया विशाल सबल मतम् । दुश्चर्मा शिपिविष्ट स्यात्कर्षकस्तु कृषीबल ॥९०॥
 कन्याजातश्च कानीनो पण्ड वलीब इति स्मृत । उत्कृष्ट श्वसुर स्याता म्लिष्टमव्यक्तवाचकम् ॥९१॥
 रबनो हस्तिवन्त स्याद्दान कटकसज्जितम् । तोदन चाङ्कुश विद्यादालान् हस्तिवन्धनम् ॥९२॥
 घनाघन इति ख्यात शास्त्रेष्वधिकपौरुष । अपाचीन मनोज्ञ च बुद्धिर्ज्ञेया तु शोमूषी ॥९३॥
 अर्कस्तु पादपे ज्ञेयो नदी स्यात्फेनवाहिनी । अश्वारोहो मरुद्यानोऽश्वानां हृदये ध्वनि ॥९४॥
 आक्रान्त इति विज्ञेय खुराश्च शफमजिता । आममाम भवेत्कव्य पकव पिशितमुच्यते ॥९५॥
 शुष्क तु विरस ज्ञेय मृष्ट सरसमुच्यते । शङ्खज शक्तिज चैव वाराह निर्ममौक्तिकम् ॥९६॥
 वशादाशीविषान्नागाज्जीमूताच्च तथाष्टमम् । लोकज्ञो दक्षिणो ज्ञेयो दक्षिणश्च तुर स्मृत ॥९७॥
 आकूत तु मत विद्यात्कण्टक गहन मतम् । आनन चाकुले नेत्रे चिकुर चापि शस्यते ॥९८॥
 पाप श्याम इति प्रोक्तो वभ्रुस्तु कपिलो मत । स्थविष्ट स्थावरे चैव दविष्ट दूरमुच्यते ॥९९॥
 परमेष्ठी मत श्रेष्ठ प्रेम प्रियमुदाहृतम् । प्रकाश स्त्रीगृहेरक्त शैलूष इति सज्जित ॥१००॥
 पदकुचचर्मकार स्यान्नापितस्त्वजय स्मृत । लावण्यमाहुर्माधुर्य चित्र च शुभकर्मजम् ॥१०१॥
 व्याधयश्चामया प्रोक्ता पानीय तु समुच्यते । आधयस्तु स्मृता प्राज्ञैश्चित्तोत्पन्ना उपद्रवा ॥१०२॥
 रहो वेग समाख्यात सत्र सच्चरित स्मृतम् । आलवाल स्मृत सद्भिरपा वेगनिवारणम् ॥१०३॥
 चटक कलविङ्क स्यात्तुल्य सद्गममुच्यते । किलास पाण्डुर ज्ञेय दोला प्रेङ्खति शस्यते ॥१०४॥
 मन्दिर नगर ज्ञेय निलय चापि मन्दिरम् । सहस्रनयनोऽगारि प्रधान युद्धमुच्यते ॥१०५॥
 पलाशो हरितो वर्णो मेचको नीलपिञ्जर । उक्षाण वृषभ विद्याल्लुलायो महिषो मत ॥१०६॥
 उस्त्रा वध्या वसा वेहत् पृष्ठोही गर्भिणी हि या । व्याख्यातो मस्करो वेणुस्त्वचिसार परिकीर्तित ॥१०७॥
 हिल काम शप चैव रोषमाहुर्मनीषिण । कलभोऽल्पवयो नाग कलुष चाविल मतम् ॥१०८॥
 वृजिन कुटिल विद्यात्सम्राट् राजा च भूभुजौ । रत्न वज्र विजानीयात्त्रियामा क्षणवा मता ॥१०९॥
 दीर्घ प्राशु विजानीयात् ह्रस्व नीचकमुच्यते । भूरि प्रभूतमुद्दिष्टमभितः सर्ववाचकम् ॥११०॥
 पवनश्चानिलो ज्ञेय पवनश्चाश्रमो जन । प्रियवाक्यो भवेदायं स्नातश्च परिकीर्तित ॥१११॥
 आङ्गम्बरश्च पटहो व्यञ्जन बोधन मतम् । विपची वल्लकी ख्याता वीणा चैव निगद्यते ॥११२॥
 मालती सुमना ज्ञेया सुमना मुदितो जन । वल्लरी मञ्जरी ख्याता प्रपाऽशाला प्रकीर्तिता ॥११३॥

आयुर्निवृत्त्यते तोयं तेन जीवति पद्मकम् । तस्य पत्राक्षिमानेन रामो राजीवलोचनः ॥११४॥
 उत्कृष्ट कवच वेहादसृग्दध ज यत्पुरा । इन्द्राय वत्तवान्कर्णस्तेन वैकर्तनं स्मृत ॥११५॥
 तीक्ष्णदन्तं प्रचण्डश्च वृको नामानलो मतः । स पाण्डवस्य उदरे तेन भीमो वृकोदरः ॥११६॥
 यस्य श्रुतिमुखा वाणी पुण्य-श्लोक स उच्यते । य खेदो चानिवर्त्ती न युद्धशौण्डः स उच्यते ॥११७॥
 महासर्गसङ्घात महेष्वास प्रचक्षते । स्वविक्रमस्तापयेच्च पर . .यूथ तापयेत् ॥११८॥
 यूथ तापयेद्यस्त विज्ञेयश्च स यूथपः । तस्मादपि च यो वयं स तु यूथपयूथपः ॥११९॥
 सिहान्नितान्तसौवीर स नृसिंह इति स्मृतः । ये हि स्पष्टप्रवक्तारो मतास्ते व्यक्तवादिनः ॥१२०॥
 यो यमित्य च नाम्नाति स कीनाश इति स्मृतः । योऽप्रबुद्धोऽल्पबुद्धिश्च स तु मन्व इति स्मृतः ॥१२१॥
 उपकार तु यो हन्ति स कृतघ्न इति स्मृतः । हर्षं गर्वं सुखं खेदं वृद्धौ च प्रतिभासते ॥१२२॥
 स्नेहभाग्यक्षये चैव मन्दशब्दो निगद्यते । नातीत्य वर्तते यत्र तदध्यात्म प्रचक्षते ॥१२३॥
 चेतसश्च समाधान समाधिरिति गद्यते । सर्वक्लेशविनिर्मुक्तो स हि दान्त इति स्मृतः ॥१२४॥
 निमंमो निरहङ्कारो विज्ञेय छिन्नसंशयः । प्रदाता देशकालज्ञ समाधिस्थः स उच्यते ॥१२५॥
 सुखरोऽल्पमतिर्यस्तु सक्रोधश्चैव कीटकः । वृत्तिर्यत्र तु गृहघाना परोक्षे बहिः तत्क्रिया ॥१२६॥
 आहारव्यवहारेषु सा प्रीतिर्निरुपस्करा । परस्पर स्वदारेषु सता येषा प्रवर्तते ॥१२७॥
 विश्रम्भात्प्रणयाद्वापि सा प्रीतिर्निरुपद्रवा । यश स्यातिरिति प्रोक्तं तद्योगात्प्राहुरुच्यते ॥१२८॥
 कीर्तिख्यातिपशोयोगाद् भगवन्निति चोच्यते । प्रियदानेषु य शुद्ध स उदार इति स्मृतः ॥१२९॥
 रजस्वला तु या नारी सा चोदक्या प्रकीर्तिता । प्रीतिर्भावक्रिये स्वच्छरक्षालिगतनु विपुम् ॥१३०॥
 तेजो रेतसि दीप्तौ तपो हि स्याद् वषाथकः । योऽन्यजातो हनो जीव स शरारू इति स्मृतः ॥१३१॥
 मिथ्यादृष्टिरहमानी नास्तिक स प्रकीर्तितः । कामः क्रोधश्च वं पूर्वं लोभोऽस्त्य च मध्यमे ॥१३२॥
 अन्ते मोहो विषादश्च यस्य ज्ञेयः स षड्वदः । अमृतं जारज कुण्डो मृते भर्तारि गोलकः ॥१३३॥
 अनयोर्योऽन्नमश्नानि स कुण्डाशो निगद्यते । भ्रूणस्त्री गर्भिणी बाला ब्राह्मणी बह्वर्जा जीविनी ॥१३४॥
 परचित्ते यदोयान् यो ज्येष्ठपत्नी परामृशन् । यः पश्चिमश्च ज्येष्ठोऽपि परचित्त स उच्यते ॥१३५॥
 पुण्यज क्षेमज चर्मकोशज भर्मज तथा । गुणज च समुद्दिष्ट तद्भेदा वस्त्रजातिषु ॥१३६॥
 बिम्बारक्तधरा या स्त्री बिम्बोष्ठी ता विनिर्दिशेत् । या स्यात् सक्रीडनपरा ललना ता विनिर्दिशेत् ॥१३७॥
 दूर्वाकाण्डप्रतीकाश कुभौ यस्यास्तनू कुबौ । सर्वरूपविविक्ताङ्गी सा भवेद्भरवाण्णनी ॥१३८॥
 लावण्ययुक्ता या नारी ललिता ता विनिर्दिशेत् । या मत्ता मत्तवज्ज्योतिः सा ज्ञेया मत्तकाशिनी ॥१३९॥
 भूरिश्च भूरिमुद्दिष्ट अन्न श्रव इति स्मृतम् । भूरि श्रवो ददातोह तस्माद् भूरिश्रवो हि स ॥१४०॥
 चतुष्पाद्विंशतिभुजो लोहितग्रीव एव च । निसर्गाद्वाक्यात्कूराद्रवणाद् रावण स्मृतः ॥१४१॥
 रोषणा या भवेन्नारी भामिनी ता विनिर्दिशेत् । न्यग्रोधलक्षण विद्यादधाना परिमण्डलम् ॥१४२॥
 ताभ्यामुपेता वनिता न्यग्रोधपरिमण्डला । तत्तुल्ये चाक्षिणी यस्या सा स्त्री राजीवलोचना ॥१४३॥
 वर्णप्रमाणनिर्धोषोऽच्छिन्नसपद्भिरन्वितः । राजीवमग्नये शसन्ति स्निग्धवर्ण सितसितम् ॥१४४॥*
 किञ्चिदुत्तरतद्योगात्सोता राजीवलोचना । बलिभिर्योस्त्रिभिर्युक्ता शङ्खकण्ठी उदाहृता ॥१४५॥
 जराकराकार स्यन्दनाग्रमिवाग्रतः । वस्त्वेति तज्ज्ञेय तस्यैवाग्र ॥१४६॥
 त मर्मसंयुक्त तत्तथालिनमुच्यते । ग्रहणे धारणे सामे बाहने धर्मसंयुता ॥१४७॥
 रमणे क्रीडने सङ्गे भार्या नाम प्रवर्तते । मूढतायां सविद्याया सप्तादवस्त्वशुमालिनी ॥१४८॥
 विषमाक्षदरा एते ज्ञेयास्तं विसंस्थिताः । कोटरस्था इति ज्ञेया सप्यकीटखगादयः ॥१४९॥
 आताम्रपल्लवो यस्तु वृक्षाणामचिरोद्गमः । ॥१५०॥
 सौकुमार्य किसलय कोमलत्व च तस्मृतम् । शतानां च चतुर्हस्त नृव तद्विहसन्निभम् ॥१५१॥

* नोट—मूल प्रतिमे १४४ मे १४८ तकके पद्योपर उनके सम्बन्ध नदी पड़े हैं ।

कुम्भो बाह प्रस्य सम नत्व इति विधीयते । विपिन शून्यमित्युक्त विपिन गृहमेव च ॥१५२॥
 एकम वण्णं च वाम च दर्शनीयार्थवाचक । सर्वार्थश्चाप्युवण्णश्च पानीय शीतमुच्यते ॥१५३॥
 नोहार शीतमित्युक्त प्रदोषान्तो निशीथक । ॥

इति महाकविश्रीधनञ्जयकृते निघण्टुसमये शब्दसंकीर्णं अनेकार्थप्ररूपणो द्वितीयपरिच्छेद ॥२॥

एकाक्षरी-कोषः

विश्वाभिधानकोशानि प्रविलोक्य प्रभाष्यते । अमरेण कवीन्द्रेणैकाक्षरनाममालिका ॥१॥
 अ कृष्ण आ स्वयभूरि काम ई श्रीहरीश्वर । ऊ रक्षण ऋ ऋ जेयौ देवदानवमातरो ॥२॥
 लृवैवसृलृर्वाराही भवेर्देवणुरं शिव । ओवंधा औरनत स्याद ब्रह्म परम्भ शिव ॥३॥
 को ब्रह्मात्मप्रकाशार्कं क स्याद्वायुयमाग्निषु । क शीर्षे सुमुखे कुस्तु भूमौ शब्दे च कि पुन ॥४॥
 स्यात्क्षेपनिन्दयो प्रश्ने वितर्कं च खमिन्द्रिये । स्वर्गो व्योम्नि मुखे शून्ये मुखे सविदि खो रवौ ॥५॥
 गस्तु गातरि गधव्वं गा गोतौ गो विनायके । स्वर्गे दिशि पशौ वज्रं भूमाविन्दौ जले गिरि ॥६॥
 घस्तु सुघटीशे घा किक्किण्या च घृध्वनौ । ड मञ्जने डो वृष भेजिने च चन्द्रचौरयो ॥७॥
 च सूर्ये कच्छपे छ तु निर्मले जस्तु जेतरी । विजये तेजसि वाचि पिशाच्या जि जवेऽपि च ॥८॥
 झो नष्टे रवे वायौ जो गायने घर्घरध्वनौ । ट पृथिव्या करटे च ठो ध्वनौ ठो महेश्वरे ॥९॥
 शून्ये बृहद्भवनौ चद्रमडले ड शिवे ध्वनौ । ढो भये निर्गुणे शब्दे ढक्काया णस्तु निश्चये ॥१०॥
 ज्ञाने तस्तस्करे कोडपुच्छयोस्ता पुनर्दया । थो भीत्राणे महीध्रे द पत्न्या दा दातृदानयो ॥११॥
 बन्धे च घा गृह्ये केशे धातरि धीमंतौ । धूर्भारकर्पाचितासु नो नरे बन्धुबुद्धयो ॥१२॥
 निस्तु नेतरि नु स्तुत्या नौ सूर्ये पस्तु पातरि । पावने जलयाने च फो शशाजलफेनयो ॥१३॥
 भाः कातौ भूर्भुव स्थाने भीर्भये म शिवे विधौ । चद्रे शिरसि मा माने श्रीमात्रीर्वारणेऽव्ययम् ॥१४॥
 मु पु सिबं धने यस्तु मातरिश्वनि य यश । यास्तु यातरि खट्वागे याने लक्ष्म्या च रो धृतौ ॥१५॥
 तोत्रे वंशवानरे कामे रा स्वर्णे जलदे ध्वनौ । रो भ्रमे रभये सूर्ये ल इद्रे चलनेपि च ॥१६॥
 ल तेले ली पुन श्लेषे ली भये वो महेश्वरे । व पश्चिमदिशास्वामी व इवार्थे स्मरेऽप्ययम् ॥१७॥
 श शुभे शा तु शोभार्यां शी शयने शु निशाकरे । ष श्लिष्टे पुनर्गर्भे विमोक्षे ष परोक्षे ॥१८॥
 सा लक्ष्म्या हो निपाते च हुस्ते दाहणि शूलिनि । क्ष क्षेत्ररक्षसौत्युक्ता माला प्राक्सूरिसम्मता ॥१९॥

इति एकाक्षरी नाममाला समाप्ता ॥छ॥

धनञ्जय-नाममालागतशब्दानु क्रमणिका

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
	अ		अन्तर्य	८३	१७३	अन्तक	७१	१४५
अशु	२३	४५	अदभ्र	९०	१९१	अन्तरिक्ष	२८	५३
अशुक	५९	११७	अदिनिमुत्त	३०	५६	अन्त्य	६३	१२४
अस	५०	१०१	अद्भुत	८४	१७४	अन्त्यकाश्यप	५८	११५
अहम्	६६	१३०	अट्टि	४	८	अन्नेवासिन्	३	४
अह्निप	५	११	अधम	(७३	१५४	अन्वकार	७२	१४८
अकूपार	१२	२५	(८१	१६८	अन्वय	६३	१२४	
अक्ष	{ ६१	१२२	अधर	५०	१००	अन्ववाय	"	"
	{ ६५	१३०	अधिप	५	१०	अन्वह	७९	१८९
अक्षि	४९	९९	अधोक्षज	३७	७५	अन्विन	७७	१६१
अक्षाहिणी	४३	८६	अध्वन्	७८	१६२	अन्वीन	"	"
अग्निल	८८	१८७	अनन्तर	६९	१४१	अह्नाय	७६	१५७
अग	५	११	अनन्तान्मन्	३६	७३	अप्	७	१५
अग्नि	३३	६४	अनन्यज	३९	७७	अपघन	१९	३८
अग्निगून्	३४	६६	अनभ्राट	८	१८	अपन्य	१९	३९
अग्रज	{ २१	४३	अनल	३३	६५	अपाङ्ग	४९	९९
	{ ५७	११४	अनारग्न	८९	१८९	अपाङ्गार	१३	२५
आश्रम	७५	१५६	अनालम्ब	६७	१३५	अप्राज	८०	१६६
अज	६६	१३०	अनिमिष	}	८	असरोनाथ	३०	५९
अङ्ग	८०	१६५	अनिमेष			अबला	१५	३१
अङ्ग	१९	३८	अनिल	३२	६२	अवज	२७	५१
अङ्गना	१४	३०	अनीक	४३	८६	अव्वि	१२	२५
अङ्गराग	६०	११९	अनुकम्पा	५४	११०	अभय	९१	२००
अङ्गाकुल	९१	१९७	अनक्रोश		"	अभियोग	८४	१७४
अटिष्ठ	५१	१०३	अनुग	१४	७९	अभिराम	८५	१७५
अटिष्ठप	५	११	अनुचर		"	अभिरूप	५५	१११
अचल	४	८	अनुज	२१	४२	अभिलाप	७७	१६०
अज	३६	७२	अनुजा	२१	४३	अभिलाषुक्	८४	१७५
अजय	९१	१९७	अनुजीविन्	१४	२९	अभिमारिका	१७	३५
अजय	८९	१८९	अनुरहम्	८४	१७५	अभीष्टण	८८	१८५
अजानरिपु	७१	१४६	अनेकप	४५	८८	अभ्यण	६९	१४१
अञ्जनान्मज	३३	६३	अनेहम	६२	१३२	अभ्यास	{ ६९	१४१
अटनी	४०	७९	अनोकह	५	११		{ ८६	१८५
अटवी	६	१३	अन्त	५	९	अभ्र	{ ८	१८
अत्यन्त	८३	१७३	अन्त करण	४१	८१		{ २८	५३
						अमर	३०	५६

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अमर्ष	५४	१०९	अवग्ज	२१	४२	आत्यन्तिक	७७	१६१
अमल	८४	१७३	अवलम्ब	८७	१११	आदेश	७४	१५५
अमा	७७	१५०	अवमथ	६६	१३३	आनन	४९	९८
अमित्र	२२	४४	अवसान	८२	१७१	आनन्द्य	९०	१९१
अमृत	६२	१२२	अवमर्ष	८६	१८२	आनन्द	५४	१०९
अमृतोद्भव	१५	२५	अवश्याय	८५	१७९	आपगा	१२	२४
अम्बर	{ २८ ५९	{ ५३ ११७	अविह्व	६९	१४२	आभरण	६०	११९
अम्बु	७	१५	अशक्ति	०	१९	आद्य	५७	११४
अम्बुजानन	६८	१३७	अश्लील	७२	१०५	आम्नाय	६३	१२४
अम्बुधि	८	१६	अश्व	२०	५२	आयुव	४२	८३
अम्भम्	७	१५	अष्टमान्	४६	९०	आर्या	१७	३४
अयस्	८२	१७२	अष्टापद	{ ४६ ४७	{ ९० ९३	आलम्ब्यमुख	८७	१३५
अग्रण्य	६	१३	अमि	४३	८५	आलय	६६	१३२
अग्र्यानीचर	७	१४	अमिन	७२	१४८	आलम्ब्य	८७	१६०
अग्रम्	८३	१७२	अमुपति	१८	३७	आली	२०	४१
अरविन्द	११	२१	अमृज	८९	१८८	आवलि	१३	६०
अराति	२२	४४	अमृत्कार	११	१०६	आवाम	६६	१३३
अग्नि	२२	४४	अम्ब	४२	८३	आवृति	९०	१९४
अरुण	७२	१५०	अभ्यु	८१	१६८	आशय	५१	११०
अर्क	२६	४९	अभृन्	२६	५०	आशा	२२	६१
अर्चि	२३	४५	अहस्ताकि	५८	११०	आशु	८३	१७७
	४७	९३	अहि	६४	१२८	आशुशक्ति	३३	८६
अर्जुन	{ ७० ७१	{ १४३ १४७	अहि	२२	४४	आश्विन	८८	१७४
अर्णव	१५	२६	अहि	८४	१७६	आमन	{ १५६ १६७	{ ११३ १३५
अर्णस्	७	१५	आ			आमन्दी	५६	११३
अय	४७	९५	आकालिकी	०	१९	आमन्न	६९	१४१
अर्भक	२०	४०	आकाश	२८	५३	आमत्र	६१	१२१
अयमन्	२६	४९	आकृत	४१	८१	आम्बानाविपति	५६	११२
अर्वन्	२७	५२	आखण्डित	३०	५७	आम्पद	६६	१३३
अर्हन्	५८	११६	आगम	३	४	आम्ब	४९	९८
अलकानिलय	४८	९६	आगार	६६	१३३	आम्ब	४९	९८
अग्नि	४२	८२	आचार्य	५५	१११	आम्बनि	४१	८१
अलिप्रभ	५२	१४८	आजि	४४	८७			
अलीक	८८	१८६	आज्ञा	७४	१५४			
अवदान	७१	१४७	आज्य	६१	१२२			
अवद्य	७३	१५२	आनन	७६	१५८			
अवधि	१३	२६	आतपत्र	९०	१९४			
अवनि	३	५	आताम्र	७२	१४९			
			आत्मज	१९	३९			
			आत्मभू	३६	७३			

इ

{

५

२६

३८

११

२३

३५

१०

५०

७६

२१, २२

४६

६९

अब्दानुक्रमणिका

१०६

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
इन्द्र	{ ५ ३०	१० ५७	उद्याग	८४	१७४	ऐधवाकु	५७	११४
इन्द्रजित्	२५	१२८	उद्गाह	१९	१८९	ओ		
इन्द्रिय	६५	१२९	उन्नत	८	१५८	ओष	{ ६३ ६९	१२५ १४०
इभ	४५	८८	उपकण्ठ	१३	२६	ओष्ठ	५०	११०
इग	६१	१२०	उपन्यका	८	९	ओषधीश्वर	२४	४५
इला	३	६	उपमा	६७	१३६	क		
इषु	३९	७८	उमान	६८	१३७	क	{ ७ ३६ १२	१५ ७३ १०४
इष्ट	१८	३७	उपश्र	८२	१७०	ककुत्	३२	६१
इष्टा	१६	३३	उपाग	८४	१७५	कक्ष	६	१३
ईगित	५०	१०४	उपेन्द्र	३७	७४	कक्षा	६७	१३६
ईशा	५	१०	उभय	८	८	कक्ष	९०	१०५
ईगित	५	१०	उमापति	३५	८०	कञ्चुक	९०	१९४
ईश्वर	५	१०	उरग	२४	१२८	कटाक्ष	८९	९९
ईशामृग	५५	१२७	उरगीकृत	११	१९६	कटि (कटी)	५१	१०३
उ			उरम्	५०	१००	कटिमूत्र		
उग्र	{ ३५ ८७	७० १८४	उर्वरा	३	६	कटीमूत्र	{ ६०	१२०
उच्च	७६	१५८	उर्वी	३	६	कठिन	५	१५५
उच्चावच	,	१५८	उरवा	९	१९	कठोर	,	,
उच्चैर्म	,	१५८	उवण	८७	१८४	कण	३०	७८
उच्छिन्न	,	१५८	उत्	८८	९१	कण्ठ	५०	१००
उत्	२५	४८	उत्पवाण	,	१९४	कण्ठीश्वर	८५	९०
उत्कट	८७	१८४	उत्त	८८	९	कदन	४४	८७
उत्कलिवा	१०	२७	ऊ			कदम्बक	६०	१३९
उत्तमान	५०	१०४	ऊरीकृत	९१	१९८	कट्टद	८०	१६६
उत्तराशापति	८८	९६	ऊर्जम्	७३	८६	कनक	४७	९३
उत्तानशय	२०	८०	ऊर्जम्बिन	९०	१९३	कनीयम्	२१	४३
उत्पल	११	२२	ऊ			कन्दर्प	८२	८३
उत्प्रेक्षा	६८	१३८	ऊ			कर्पदित्	३५	७०
उत्सव	५४	१०९	ऊ			कपालित्	३५	७०
उत्साह	८४	१७४	ऊ			कपि	६	१२
उदन्वत्	१३	७७	ऊ			कपिध्वज	७०	१४३
उदर	५१	१०२	ऊ			कवरी	९१	१९५
उदशिवत्	६२	१२३	ऊ			कमन	८५	१७७
उद्गम	४०	८०	ऊ			कमनीय	८५	१०१
उद्ग्रीव	८१	१६८	ऊ			कमल	१०	२०
उद्गत	८१	१६८	ऊ			कम्र	८५	१७७
उद्धर	८१	१६८	ऊ			ऊ	{ २३ ५०	४५ १०१
उद्यम	८८	१७४	ऊ			ऊ	६५	१२९

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
करभ	४६	९१	कामिन्	१८	३७	कुमुद	११	२२
करवालक	४३	८५	कामिनी	१४	३०	कुमुदप्रिय	२४	४७
कराडगुलि	५०	१०१	कामुक	१८	३७	कुमुदविप्रिय	२७	५१
करिन्	४५	८८	कामुकी	{ १५	३१	कुम्भिन्	४५	८८
करुण	५४	११०	{ १७	३६	कुम्भिनी	३	६	
करेण	४५	८९	काय	१९	३८	कुम्भगन्	८४	१४५
कर्कश	७५	१५४	कार्तस्वर	४७	९४	कुल	६३	१२४
कर्ण	४९	९८	कार्तिकेय	३४	६७	कुलटा	१७	३५
कर्णशूलिन्	७०	१४४	कार्मुक	४०	७९	कुल्या	१६	३२
कर्दम	१०	२०	कार्मुकिन्	७०	१४३	कुवलय	११	२२
कर्पूर	५९	११८	काल	{ ७१	१४५	कुश	७	१५
कलङ्क	७३	१५२	{ ७२	१४८	कुशलिन्	७९	१६४	
कलत्र	१६	३२	कालशेय	६२	१२३	कुसुम	४०	८०
कलधौत	४७	९४	काली	७३	१५०	कृपा	१२	२५
कलभ	५२	१०५	काश्यप	५८	११५	कृपास	९०	१९४
कलम	८१	१६७	काहल	७५	१५५	कृच्छ्र	८८	१८३
कलह	{ ४४	८७	काष्ठा	३२	६१	कृतान्त	{ ३	४
{ ८९	१८८	काष्ठापाल	३२	६१	कृतिन्	{ ७१	१४५	
कलापिन्	६३	१२६	काष्ठाम्बर	३२	६१	कृत्स्न	७९	१६४
कलाभृत्	२४	४७	किवदन्ती	७४	१५४	कृपण	८४	१८७
कलिल	६६	१३१	किकर	१४	२९	कृपा	५४	११०
कलेवर	१९	३९	किचन	७६	१५७	कृपाण	४३	८५
कल्माषी	७३	१५०	किजक	{ ७३	१५१	कृष	८०	१७१
कल्याण	९१	१९८	{ ७३	१५२	कृगान्	३३	६५	
कल्लोल	१३	२७	किन्त्र	७९	१६१	कृष्ण	{ ३९	७८
कवच	९०	१९४	किरण	२३	४५	{ ७२	१८८	
कष्ट	८८	१८६	किरात	७	१४	केकर	४९	९०
कस्तूरी	५९	११७	किरीटिन	७०	१४४	केकिन्	६३	१२५
कस्वर	४७	९५	किन्विष	६६	१३१	केतु	४३	८४
काञ्चन	४७	९३	कीचकगन्	७१	१४५	केवलिन्	५८	११६
काञ्ची	६०	११९	कीर्ति	७४	१५३	केश	९०	१९५
काण्ड	३९	७८	कीनाश	८४	१७५	केशवन्वन	९१	११
कादम्बरी	६१	१२०	कु	३	६	केशरिन्	८५	९०
कानन	६	१३	कुक्कुर	४६	९२	केशव	३७	७४
कानीनजनक	२७	५१	कुक्षि	५१	१०२	केशवाग्रज	७०	१४२
कान्त	{ १८	३७	कुकुम	१९	११७	केशिन्	३६	७५
{ ८५	१७७	कुच	५१	१०२	केरव	११	२२	
कान्ता	१६	३३	कुबेर	४८	९५	कोक	६४	१२७
कान्तार	६	१३	कुब्ज	७६	१५८	कोकनद	१०	२१
कान्तिमत्	२४	४७	कुमार	३४	६७			
काम	३९	७७						

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
कोटि	४०	७९	खग	३९	७८	गुरुस्थान	६८	१३७
कोदण्डक	४०	७९	खङ्ग	४३	८५	गुलिका	४७	९४
कोप	५४	१०९	खण्ड	८९	१८७	गुह	३४	६७
कोमल	७५	१५५	खन्कृत	५३	१०६	गूढचर	८१	१६९
कोविद	७९	१६४	खरदण्ड	१०	२१	गृध्र	८४	१५५
कोप	८९	१८८	खल	२२	४४	गृह	{ १६	३२
कोशेयक	४३	८५	खला	१७	३५		{ ६६	१३२
कोतुक	८४	१७४	खलु	{ ७६	१५९	गेह	६६	१३२
कोन्नेय	७१	१४६		{ ८४	१७३	गेहिनी	१६	३२
कौमुदी	२४	४७	खान	६७	१३४		{ ३	६
कौग्य	७१	१४६	खेचर	२८	५४	गो	{ २३	४५
कौलेयक	४६	९२	खेद	५४	१०९		{ ७९	१६३
कौशिक	३०	६०	खेय	६७	१३४	गोत्र	८०	१६५
कौमुम	७३	१५१	रयानि	७४	१५३	गात्रगत्र	३०	५८
कनु	५६	११२		ग		गोधा	१३	२८
क्रेकृत	५३	१०७	गगन	२८	५३	गोपुर	६७	१२४
क्रोड	४६	९१	गङ्गा	{ ३६	७१	गोमण्डल	७८	१६२
क्रोत्र	५४	१०९	गज	{ ७८	१६२	गोमिनी	३८	७६
क्रौंच	५३	१०७	गणिका	४५	८८	गोलाङ्गूल	६	१२
क्रौंचभेदिन्	३४	६७	गन्धवाह	१७	३६	गोविन्द	३७	७६
क्षणे	७६	१५७	गभस्मि	३२	६२	गीतम	५७	११४
क्षणदा	२५	४८	गरुड	२३	४५	गीर	७२	१४०
क्षगर्चि	९	१९	गरुड	६५	१२८	गीरी	७३	१५०
क्षतज	८९	१८८	गरुत्मन्	६५		ग्रन्थ	३	४
क्षपाकर	२६	४८	गर्ज	५२	१०५	ग्रहाधिप	२६	४९
क्षमा	३	५	गर्ता	८९	१९०	ग्रामशाङ्कल	४६	९२
क्षाम	८२	१७१	गवित	८१	१६८	ग्रीवा	५०	१००
क्षिति	३	६	गल	५०	१००	ग		
क्षिपा	२५	४८	गव्या	४१	८२	घन	{ ८	१८
क्षिप्र	८३	१७२	गहन	{ ६	१३		{ ८२	१७०
क्षीर	६२	१२२	गहर	{ ८८	१८३	घनसार	५९	११८
क्षीण	८२	१७४	गह्वरी	८९	१९०	घनाघन	८	१८
क्षुण्ण	७९	१६४	गाण्डीविन्	३	५	घृष्टि	४६	९१
क्षुरप्र	३९	७८	गिर	७०	१४३	घोर	८७	१८४
क्षेम	९१	१९८	गिरि	५२	१०४	घोष	७८	१६२
क्षोणी	३	६	गिरि	४	८	घ्राण	५०	१०२
क्षमा	३	"	गिरीश	३५	६९	च		
			गीर्वाणेश	३०	५८	चक्रधर	३८	७६
			गुण	{ ४१	८२	चक्रवाक	२७	५१
				{ ६०	११९	चक्राङ्ग	६३	१२५
ख	{ २८	५३	गुणनिका	८८	११९	चण्डी	१६	३३
	{ ६५	१२१	गुणावलि	७४	१५३	चतुर	७९	१६५
			गुरु	६२	१२३			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
चतुर्मुख	३६	७२	जननी	१८	३८	तट	{ ४	९
चतुष्पात्	७९	१६३	जनपद	४८	९७	{ १३	२६	
चन्द्र	२४	४७	जनान्	४८	१	तटी	४	९
चन्द्रमम्	२४	॥	जनि	१६	३२	तटोच्छ्वाम	१३	२७
चमू	४३	८६	जनोदाहरण	८४	१५३	तडिन्	९	१८
चमूर	४६	९०	जल	५१	१०३	तदिद्वन्वा	३०	५६
चर	८६	१८२	जल	५	१५	तनि	६९	१४०
चरण	५१	१०३	जलद	५३	१०५	तनय	२०	४०
चरथ	३२	६३	जय	८५	१०२	तन्	१९	३८
चलन	५१	१०३	जवन	३०	६३	तन्त्र	९०	१९४
चला	११	३५	जङ्गल	२९	५०	तनूदरी	१५	३१
चाटुकुत्	७९	१६५	जान	८१	१६७	तनूनपात	३३	६४
चाप	४०	७०	जानरूप	८७	९३	तपन	२६	४९
चार	८६	१८२	जानवेदग	३३	६४	तपनीय	४७	९४
चार	८५	१७८	जानु	५१	१०३	तपस्विन	२	३
चिकुर	००	१९५	जाया	१६	३२	तम	७२	१४८
चिन्	४१	८१	जाह्नवी	३६	७१	तमम्	७०	
चित्र	८४	१७४	जिन्या	७०	१४०	तमागि	२६	५०
चिह्न	४३	८४	जिन	५७	११२	तर	८३	१७२
चिराय	५५	१८२	जिष्णु	७०	१४२	तरग	१३	२७
चीकृत	५३	१०६	जिह्वा	४६	९०	तरगिणी	१०	२४
चौर	५९	११७	जिह्वा	४६	९०	तरणि	२६	४९
चूड़ापाश	९१	१९९	जामून	८	१८	तरबागि	४२	८५
चेतम्	४१	८१	जाण	{ ७६	१५६	तरस्विन्	९०	१९३
चेत्	५०	११७		{ ८२	१०१	तर	५	११
चाय	८४	१७३	जीवन	७	१५	तरकर	८१	१६९
चौर	८१	१७९	जीवा	४४	८२	तापन	२	३
छ			च्या	४०	८२	तामरम्	१०	२०
छत्र	९०	१९४	ज्यायम्	५७	११४	तारा	२५	४८
छद्मन्	६८	१३८	ज्येष्ठ	२१	४३	तारुण्य	६२	१२४
छिद्र	८९	१९०	ज्योति	२३	४६	तार्य	६५	१२८
छल	{ ६८	१३८	ज्वलन	३३	६५	निम्न	{ २६	४९
	{ ८९	१८८				{ ८७	१८४	
ज			झ			निमि	८	१७
जगन्	५७	११३	झटिति	८३	१७२	निमिग	{ ७२	१४८
जगती	३	६	झप	८	१७	{ ८७	१८४	
जघन	५१	१०३	झषकेतु	४३	८४	निमिरागि	२६	५०
जठर	{ ५१	१०२	झषध्वज	४३	१	तीर	१३	२६
	{ ७६	१५६	झड् कृत	५३	१०१	तीर्थ	५८	११५
जट	८०	१६६	त			तीर्थकर	५८	११६
जनक	१८	३८	तक्र	६२	१२३	तीर्थकृत्	५८	॥

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
तीर्थ क	५८	११६	दशमीस्थ	५४	१०८	दृष्टि	४९	९९
तीव्र	८७	१८४	दशा	६२	१२४	देव	३०	५६
तुक्	१८	३९	दम्यु	७	१४	देवानाप्रिय	८०	१६६
तुङ्ग	७६	१५८	दहन	३३	६५	देह	१९	३८
तुग्य	२७	५२	दामोदर	३७	७४	देहिका	७९	१६३
तुलगम	२७		दारक	२०	४०	दैत्याणि	७०	१४४
तुगमाह	३०	६०	दारा	१६	३२	दोम्	५०	१०१
तुला	६७	१३६	दारिका	१७	३६	दोष	{ २५	५०
तुलाकोटि	५३	१०७	दारुण	८७	१८४	द्युति	{ ५०	१०१
तुल्य	६७	१३६	दामी	१७	३६	द्युति	२३	४५
तुपाय	८५	१७९	दिक्-दिग्	३२	६१	द्युमणि	२६	४९
तुहिन	८५	१७९	दिक्पाल	३२	६१	द्युधुनी	३६	७१
तूर्ण	८३	१७२	दिगम्बर	३२	६१	द्युम्	{ २८	५३
तंजम्	२३	४५	दिग्गज	३२	६१	द्युत	{ ३६	७१
तंजम्बिन्	९०	१९३	दिन	२६	५०	द्युत	६१	१२२
नोक	१९	३९	दिव्-दिव	{ २८	५३	द्यौ	{ २८	५३
नोम	३९	७८	दिवस	{ ३०	५६	द्यौ	{ ३०	५६
नाम	७	१५	दिवा	२६	५०	द्रविण	४७	९५
नोष	५४	१०९	दिव्यवाक्पति	५८	११६	द्रव्य	४७	"
त्रिककुत्	४	८	दीक्षित	३	४	द्राक्	७६	१५७
त्रिदश	३०	५६	दीविति	२३	४५	द्रुत	८३	१७२
त्रिनेत्र	३५	६९	दीन	८४	१७५	द्रुम	५	११
त्रिपथगा	३६	७१	दीप्ति	२३	४६	द्रुहिण	३६	७१
त्रिपुरारि	३५	६९	दीर्घ	८७	१८३	द्रुद्ध	२	२
त्रिमार्गगा	७८	१६२	दुग्ध	६२	१२२	द्रुय	२	"
त्र्यम्बक	३५	६८	दुग्नि	६६	१३१	द्रिनय	२	"
द			दुर्ग	६	१३	द्रिप	४५	८९
दण्डिन्	४६	९१	दुर्जन	२२	४४	द्रिग्द	४५	८८
दशवत्या	३२	६१	दुष्कृत	६६	१३१	द्रिग्फ	{ १२	८४
दण्ड	४३	८६	दुष्ट	२२	४४	द्रिग्फ	{ ४२	८२
दन्त	४	९	दुहितृ	२०	४०	द्रिष	२२	४४
दन्तवाम	५०	१००	दूती	१७	३५	द्रिषत्	२२	"
दन्तिन्	४५	८८	दून	८२	१७१	द्वेष	५१	१०९
दया	५४	११०	दुह	७५	१५५	द्वेषिन्	२२	४४
दयित	१८	३७	दृतिहरि	७८	१६३	द्वैत	२	२
दयिता	१६	३३	दृप्त	८१	१६८	घ		
दरीभृत्	४	८	दृश	४९	९९	घन	४७	९५
दर्शनीय	८५	१७८	दृषत्	८२	१७०	घनजय	७०	१४४
दर्शनच्छद	५०	१००	दृष्ट	५४	१०८	घनद	४८	९६
						घनदाय	४८	"
						घनुष	४०	७९
						घन्वन्	४०	७९
						घमनीघम	५०	१००

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
धम्मिल्ल	९१	१९५	ननादू	२१	४३	नित्य	७७	१५९
घरणी	३	६	नन्दन	२०	४०	निदेश	७४	१५४
धरा	३	५	नभम्	२८	५३	निपुण	७९	१६४
धरित्री	३	६	नभस्वत्	३२	६३	निबोध	७३	१५२
धर्म	१०	७९	नभ्राट्	८	१८	निभ	६८	१३८
धर्मचक्रभृत्	५८	११६	नमुचिशत्रु	३०	५८	निम्नगा	१२	२४
धर्मात्मज	७१	१४६	नयन	४९	९९	नियन्त्रित	८५	१७६
धव	१८	२८	नर	१३	२८	नियामित	८५	१७६
धवल	७१	१४७	नरक	८९	१९०	नियोग	७४	१५४
धानु	८२	१७०	नलिन	१०	२०	निर्घात	९	१९
धात्री	३	५	नव	७५	१५६	निर्व्यूह	६७	१३५
धानुष्क	७	१४	नव्य	१	१	निलय	६६	१३३
धामन्	{ २३ ६६	{ ४६ १३३	नाक	३०	५६	निवसन	५९	११७
विषणा	५५	११०	नाग	{ ४५ ६४	{ ८९ १२८	निवृत्त	६६	१३२
धिष्ण्य	६६	१३२	नागरिक	८०	१६५	निवेशन	८९	१८९
धी	५५	११०	नागारि	४५	९०	निशा	२५	४८
धुनी	१२	२४	नाथ	५	१०	निशाचर	८१	१६९
धुर्य	२७	५२	नाथहरि	७८	१६३	निशान्त	६६	१३२
धूम	७२	१४८	नाथान्वय	५८	११५	निपाद	७	१४
धूर्जटि	३५	६८	नाभिज	५७	११४	निपादित्	४५	८९
धूर्त	७९	१६५	नाम	८०	१६५	निष्णान	७९	१६४
धूलि	७३	१५१	नागद	३७	७३	निमग	८८	१८५
धूलिकुट्टिम	६७	१३४	नागच	३९	७८	निम्नल	८७	१८३
धेनु	५२	१०५	नारायण	३७	७४	निर्गत्रय	४३	८५
धैर्य	१३	१७१	नारी	१८	३०	नीच	{ ७६ ८१	{ १५८ १६८
ध्वजा	४३	८४	नासा	५०	१०२	नीचम्	७६	१५८
ध्वजिनी	४३	८६	निकट	६९	१४१	नीर	७	१५
ध्वान्ताग्नि	२६	५०	निकर	६९	१३९	नील	७२	१४८
न			निकाय	{ ६६ ६९	{ १३३ १४०	नीलकण्ठ	६२	१२६
न	७६	१५७	निकुरम्ब	६९		नीलपिञ्जरी	७३	१५०
नक्तम्	२५	४८	निकेतन	६६	१३२	नीललोहित	३५	६९
नक्षत्र	२५	११	निगूढपुरष	८६	१८२	नीलवसन	७०	१४२
नग	५	११	निचय	६९	१४०	नीलाम्बुजन्मन्	११	२२
नगरी	४८	९७	निज	८८	१८५	नीहार	८५	१७९
नद	१२	२४	नितम्ब	{ ४ ५१	{ ९ १०३	नूतन	७५	१५६
नदी	१२		नितम्बिनी	१५	३१	नूपुर	५३	१०७
नदीश्वरी-नदीश्वर	३६	७१	निमान्त	८३	१७३	नृ	१३	२८
नदीष्ण	७९	१६४				नृप	{ ४ १४	{ ७ २८

शब्दानुक्रमिका

११५

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
नपक्रन्तु	५६	११२	परामु	५४	१०८	पाशित	८५	१७८
नेड	८०	१६६	परिखा	६७	१३४	पाशनीन	८५	१७६
नत्र	४९	९९	परिचित	५८	१०८	पाषाण	८२	१७०
नेक	६०	१६१	परिणयन	८९	१८९	पितामह	३६	७२
नैयायिक	५५	१११	परिधि	६७	१३४	पितृ	१८	३८
न्यच्	७६	१५८	परिवाद	८६	१८१	पितृद्व	८५	१७६
	प			८६	१८८	पिनाकिन	३५	६८
पक्षिन्	२९	५४	परिवृद्ध	५	१०	पिशित	२९	५५
पङ्क	{ १०	२०	परिषत्	१०	२०	पिशुन	८१	१६८
	{ ७३	१५२	परुप	७५	१५५	पिशगी	७३	१५०
पक्वि	६१	१४०	पर्जन्य	८	१८	पीठ	५६	११३
पटु	७९	१६४	पर्वत	४	८	पीत	७०	१४९
पट्टन	८८	९७	पल	२९	५५	पुश्चर्त्ता	१७	३५
पण्डित	५५	१११	पल्लव	७७	१६०	पुष्टभेदन	४८	९७
पण्यम्त्री	१७	३६	पवन	३२	६२	पुण्य	६५	१२९
	{ २६	४६	पवनपुत्र	३३	६३	पुण्डरीक	१०	२१
पनङ्ग	{ २६	५४	पवमान	३२	६२	पुत्र	१९	३९
	{ २६	५४	पवनमख	३३	६४	पुनर्भू	१७	३५
पनत्रिन्	२९	५४	पशु	७९	१६३	पुमस्	१३	२८
पनाका	४३	८४	पासु	७३	१५१	पुर्	४८	९७
पति	५	१०	पाकशत्रु	३०	५८	पुर्	८८	"
पतिवल्ली	१७	३४	पाटल	८	१९	पुर्	८८	"
पतिव्रता	१७	३४	पाटीन	८	१७	पुर्न्दर	३०	५८
पन्नन	४८	९७	पाणि	५०	१०१	पुर्न्द्री-पुर्न्धि	१६	३१
पत्ति	१४	२९	पाण्डु	७१	१४७	पुर्गण	७६	१५६
पत्नी	१६	३२	पाण्डुर	७१	१४७	पुर्ी	४८	९७
पत्रिन	२६	५४	पाताल	८९	१९०	पुरु	५७	११४
पथिन	७८	१६१	पाथस्	७	१५	पुरुष	१३	२८
	{ ५१	१०३	पाद	{ २३	४५	पुरुषोत्तम	३७	७४
पद	{ ६६	१३३		{ ५१	१०३	पुरुहुत	३०	६०
	{ ६८	१३८	पादप	५	११	पुरोगति	४६	९२
पदग	१४	२९	पाप	६६	१३१	पूर्ण	६२	१२३
पदानि	१४	"	पाप्मन्	६६	"	पुलिन्द	७	१४
पद्म	१०	२०	पाग	१३	२६	पुलोमागि	३०	६०
पद्मनाभ	३७	७५	पारावार	१२	२५	पुष्कर	११	२१
पन्नग	६४	१२८	पारिषद्य	५६	११८	पुष्करिन्	४५	८९
	{ ७	१५	पार्श्व	४	९	पुष्कल	{ ८६	१७३
पयम्	{ ६२	१२२	पालाश	७२	१८९		{ ९०	१९४
पयोधर	५१	१०२	पाली	१३	२७	पुष्प	४०	८०
पराग	७३	१५१	पावक	३३	६४			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
पुष्पहेति	४२	८३	प्रवृत्ति	७४	१५४	फुल्ल	४०	८०
पूग	६९	१३९	प्रशस्त	८६	१७८	व		
पूषन्	२६	४९	प्रसन्ना	६१	१२१	वढ	८५	१७६
पूतना	४३	८६	प्रसव	४०	८०	बन्धकी	१७	३५
पृथिवी	३	५	प्रसाधन	६०	११८	बन्धु	२१	४२
पृथुरोमन्	८	१७	प्रसून	४०	८०	बन्धु	८५	१७८
पृथुल	८७	१८३	प्रस्तर	८२	१७०	बल	{ ४३ ७०	८६ १४२
पृथु	८७	"	प्रस्थ	४	९	बलशत्रु	३०	५८
पृथ्वी	३	५	प्रसन्ना	१६	१२१	बलाहक	८	१८
पृषत	६४	१२७	प्रागु	८७	१८३	बलिमुदन	३७	७५
पेशल	७५	१५५	प्राकार	६७	१३४	बलिष्ठ	९०	१९१
पेशिन्	२९	५५	प्राक्नन	७६	१५६	बहु	९०	१९५
पोत	२०	४०	प्राचीनबहि	३०	५७	बहुल	{ ८७ ९०	१८३ १९७
पोत्रिन्	४६	९१	प्राज्य	९०	१९१	बाण (बाण)	३९	७८
पौष्प	८३	१७१	प्राज	५५	१११	बाणवारण	९०	१९४
प्रकर	६९	१४०	प्राभन	९०	१९१	बाणमुदन	३७	७५
प्रकृति	८८	१८५	प्रायम्	६२	१२३	बाणी (बाणी)	५४	१०४
प्रगल्भ	७९	१६४	प्रारभ्य	५२	१०४	बाल	९०	१९५
प्रचर	७८	१६०	प्रालेय	८५	१७९	बाला	१५	३१
प्रचुर	९०	१९१	प्रावृषिक	६३	१२६	बाहु	५०	१०१
प्रजा	१९	३९	प्रामाद	६७	१३५	बाहुशिखम्	५०	"
प्रजापति	{ ३७ ५७	७४ ११४	प्रिय	{ १८ ७४	३७ १५४	बिमिनी	११	२३
प्रज्ञा	५५	११०	प्रिया	१६	३३	बध	५६	११२
प्रणयिनी	१६	३३	प्रियाम्बिका	२२	४३	ब्रध्न	२६	४९
प्रणिधि	{ ८१ ८६	१६९ १८२	प्रीत	१८	३७	ब्रह्मन्	७३	११६
प्रतिरोधक	८१	१६९	प्रेमन्	७७	१६०	बीहि	८१	१६७
प्रतीत	५४	१०८	प्रेयम्	१८	३७	भ		
प्रतोली	६७	१३४	प्रेयसी	१६	३३	भ	२५	४८
प्रत्यग्र	७५	१५६	प्रेरित	५२	१०४	भग	१३	२७
प्रमञ्जन	३२	६३	प्रेष्ठा	१६	३३	भट	{ १४ ५३	२९ १०६
प्रभा	२३	४५	प्रेष्य	७४	१५४	भद्र	९१	१९८
प्रभु	५	१०	प्लवग	६	१२	भर्तु	५	१०
प्रमथाधिप	३५	६८	फ			भर्तु स्वसा	२१	४३
प्रमद	५४	१०९	फणिन्	६४	१२८	भर्मन्	४७	९३
प्रमदा	१६	३३	फलित्	५	११			
प्रमोद	५४	१०९	फलेग्राहिन्	५	११			
प्रवीण	७९	१६४	फल्गु	७५	१५५			
प्रवीर	९०	१९३	फाल्गुन	७०	१४३			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
भरतान्वय	७१	१४८	आनुजानी	२१	४३	मन्यु	५४	१०९
भव	{ ३५ ९०	७० १९२	आनुव्य	२२	४४	मन्त्रपूतान्मन्	६५	१२९
भवन	६६	१३२	म			मय	४६	९१
भविक	९१	१९८	मकरवज	३९	७७	मयखवन्	२८	५२
भव्य	९१	१९८	मकरन्द	७३	१५१	मयूर	६३	१२६
भागधेय	६५	१३०	मधु	८३	१७२	मगल	६३	१२५
भागीरथी	३६	७१	मगल	९१	१९८	मरीचि	२३	४५
भाग्य	६५	१३०	मद्यवन्	३०	६०	मरुत	३०	५९
भानु	{ २३ २६	४५ ८९	मजीग्ग	५३	१०७	मरुन्	{ ४ ३२	८ ६२
भामा	१५	३१	मटल	६६	९२	मरुत्वन्	३०	५९
भामिनी	१४	३०	मडलाग्र	४३	८५	मरुपुत्र	३३	६३
भागती	५२	१०४	मणिन	५३	१०६	मरुत्मन्	{ ३० ३३	६० ६४
भार्या	१६	३२	मनगज	४४	८८	मकंट	६	१२
भाव	९०	१९२	मनारम्ब	६७	१३५	मर्त्य	१३	२८
भावक	९१	१९८	मन्थ	८	१६	मर्म	८९	१८८
भास्	२३	४५	मत्तवाग्ण	६७	१३५	मलिन	७३	१५२
भासुर	९०	१९३	मथित	६२	१२३	मल्लिका	५९	११३
भास्कर	२३	४६	मदन	३९	७७	मलीमम	७३	१५२
भास्वर	९०	१०३	मदिग	६१	१२०	महनि	५८	११५
भिक्षु	२	३	मद्य	६१	१२०	महम्	२३	६६
भीरु	१४	३०	मद्यप	६१	१२१	महावीर	५८	११५
भज	५०	१०१	मधु	७३	१५१	महाहव	४४	८७
भजगम	६४	१२८	मधुवाग	६१	१२१	महिला	१६	३२
भवन	५७	११३	मधुव्रत	४२	८२	महिषी	७९	१६३
भू	३	५	मधुसूदन	३७	७५	मही	३	५
भूमि	{ ३ ३८	५ ७६	मध्यमपाण्डव	७०	१४३	महेश्वर	३५	६८
भूमिधर	३८	७६	मनम्	४१	८१	महोत्पल	१०	२१
भूयिष्ठ	९०	१९१	मनस्विन्	९०	१९३	माम	२९	५५
भूरि	९०	१९१	मनस्विनी	१७	३४	मा	७६	१५९
भूषण	६०	११९	मनीषा	५५	११०	मातग	६५	८९
भृग	४२	८२	मनुज	१३	२८	मार्तरश्चवन्	३२	६३
भृतक	१४	२९	मनुष्य	१३	"	मातुलानी	२२	४३
भृत्य	१४	२९	मनोक्त	८५	१७८	मातृ	१८	३८
भृशम्	८३	१७३	मनोहर	८५	१७७	मानव	१३	२८
भो	७६	१५७	मद	{ ८० ८७	१६६ १८४	मानिन्	८१	१६८
भ्रमर	४२	८२	मन्दाकिनी	३६	७१	मानिनी	१६	३२
			मन्दिर	६६	१३०	मानुष	१३	२८
			मन्मथ	३९	७७	मार	६१	८१०

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
मार्ग	७८	१६२	मैत्री	९१	१९७	रक्षस्	२९	५५
मार्गण	३९	७८	मैत्रेयिक	९१	१९७	रजत	४७	९४
मार्तण्ड	२६	४९	मैरेय	६१	१२०	रजनी	२५	४८
माला	६०	११९	मोघ	८८	१८६	रजम्	७३	१५१
मान्य	६०	"	मोण्ड्य	३	४	रण	४४	८७
मितगम	४५	८८	माकितक	४७	९४	रत्नाकर	१२	२५
मित्र	२०	४१	मौर्वी	४१	८२	रथ्य	२७	५२
मित्रयुक्	२०	"	य	५		रन्त्र	८९	१९०
मिहिर	८	१८	यज्ञाग्नि	३५	६९	रमण	१८	३७
मीन	८	१७	यनि	२	३	रमणी	१६	३३
मीनाकर	१२	२५	यन्तृ	४५	८०	रमणीय	८५	१७७
मुख	४९	९८	यम	{ २ ७१	{ २ १४५	रम्य	८५	"
मुग्ध	८०	१६६	यमजनक	२७	५१	रय	८३	१७२
मुग्धा	१४	३०	यमल	२	२	रवि	२६	४९
मुक्ता	१७	३५	यमुनाजनक	२७	५१	रश्मि	२३	४६
मुद्	५४	१०९	यगम्	७८	१५३	रमना	६०	११०
मुधा	८८	१८६	यानुधान	२९	५५	रम्य	८१	१९०
मुनि	२	३	यातृ	४५	८०	रहम्	८४	१७५
मुरमुदन	३७	७५	याय	८७	१८४	रहम्य	८४	१७५
मुहुमुहुः	८८	१८५	यादम्	८	१७	राग	७७	१६०
मृक	८०	१६६	यवन	७७	१६१	राजन्	५	१०
मूर्ख	"	"	युग	२	२	राजयक्ष्मन्	७१	१४६
मूढ	"	"	युगल	२	२	राजगज	४८	९६
मृति	१९	३९	युग्म	२	२	राजमय	५६	११२
मूर्द्धन्	५२	१०४	युन	७७	१६१	रात्रिचक्र	२९	५५
मृग	६४	१२७	युद्ध	४४	८७	रात्रिजागर	४६	९२
मृगनाभिजा	५९	११७	युधिष्ठिर	७१	१४६	रामा	१५	३१
मृगाक	८६	१७९	युवति	१५	६१	राष्ट्र	४८	९७
मृगेन्द्र	४५	९०	योगिन्	२	३	रिपु	२०	४४
मृत	५४	१०८	योग्या	८५	१८५	रुचिर	८४	१७८
मृत्यु	७१	१४५	योषा	१४	३०	रुचि	२३	८५
मृदु	७५	१५५	योषित्	१८	३०	रुच्य	६०	११९
मृषा	८८	१८६	योवन	६२	१२४	रुद्र	३५	६९
मखला	{ ४ ६०	{ ९ ११९	योवनिक	६२	१२३	रुचि	{ ५९ ८९	{ ११८ १८८
मेष	८	१८	रहम्	८३	१७२	रुष्	५४	१०९
मेषपथ	२८	५३	रक्त	{ ५९ ७२ ८१	{ ११८ १४९ १८८	रूपाजीवा	१७	३६
मेदिनी	३	५				रूप्य	४७	९४
मेधावी	५५	१११				रे	७६	१५७

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
रेणु	७३	१५१	वत्स	८१	१६७	वस्त्य	६६	१३३
रेवनीदयित	७०	१४२	वदन	४९	९८	वम्त्र	५९	११७
रै	४७	९५	वधू	१४	३०	वाग्मिन्	५५	१११
रोधम्	१३	२६	वन	{ ६	१३	वाच्	५२	१०४
रोपण	३९	७८		{ ७	१५	वाचस्पति	९२	१९९
रोहिणीपति	८६	१७९	वनस्पर्ति	५	११	वाजिन्	२७	५२
रोहिताश्व	३३	६५	वनिना	१४	३०	वात	३२	६२
	ल		वनेचर	६	१३	वातायन	६७	१३५
लक्ष्मन्	७२	१५२	वह्नि	३३	६४	वानर	६	१२
लक्ष्मी	३८	७६	वपुस्	१९	३८	वाण (वाण)	३९	७८
लक्ष्मीपति	३८	"	वप्र	६७	१३४	वाणवाग्ण	९०	१९४
लघु	८३	१७२	वयम्	{ २९	५४	वाणमूदन	३७	७५
लज्जिका	१७	३६		{ ६२	१२४	वाणी (वाणी)	५२	१०४
लता	११	२३	वयम्या	२०	४१	वामलोचना	१५	३१
लतान्त	४०	८०	वर	{ १८	३७	वायु	३२	६२
लपन	४९	९८		{ ८९	१८९	वायुपय	२८	५३
लब्ध	५४	१०८	वरटा	६४	११७	वायुपुत्र	७१	१४५
ललना	१४	३०	वराह	४६	९१	वार्	७	१५
लव	८९	१९७	वह्निनी	४३	८६	वार्ता	७४	१५४
लागल	७०	१४२	वर्ग	६३	१२५	वाग्ण	४५	८८
लाच्छन	७३	१५२	वर्ण	७४	१५३	वाग्ली	६८	१२७
लुब्ध	८४	१७५	वर्णन्	२	३	वाग्नि	७	१५
लुब्धक	७	१४	वर्तुल	८७	१८३	वाग्नि	१२	२३
लेलिहान	६४	१२८	वर्त्मन्	७८	१६२	वारिगाशि	१२	२६
लेश	८६	१८७	वद्धमान	५७	११५	वारुणी	६१	१२१
लाक	५७	११३	वमन्	९०	१९४	वार्त्तिन	६३	१२४
लोह	८२	१७०	वर्षीयम्	५७	११४	वासर	२६	५०
लोहित	{ ७२	१४९	वर्हिण (वर्हिण)	६३	१२६	वामव	३०	५९
	{ ८९	१८८	वलक्ष	७१	१४७	वामम्	५९	११७
लोहिनी	७३	१५०	वलिमुख (वलीमुख)	३	१२	वामुदेव	३७	७६
	व		वल्लभ	१८	३७	वाह	२७	५२
वक्ता	९२	१६९	वल्लभा	१६	३३	नाहिनी	४३	८६
वक्त्र	४१	९८	वल्लरी	११	२३	वि	२९	५४
वक्षम्	५१	१०२	वल्लो	११	२३	विकल	८९	१८७
वक्षोज	५१	१०२	वसति	६६	१३३	विक्रम	८४	१७४
वचन	५२	१०४	वसु	४७	९५	विवक्षण	५५	१११
वनम्	५२	१०४	वमुधा	३	६	विट	१८	३७
वज्र	९	१९	वसुन्वरा	३	६	विटपिन्	५	११
वज्रिन्	३०	५७	वसुमती	३	५	विडोजम्	३०	५९
			वस्तु	४७	९५			

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
विनय	८८	१८६	विरवरूप	३५	७०	वंशारिण	८	१७
वित्त	४७	०५	विरवस	८८	१८५	वंश्रवण	४८	९६
विदग्ध	७९	१६६	विश्वम्भरा	३	५	वंशवानर	३३	६५
विद्यमान	८६	१३७	विष	७	१५	वश	६३	१२४
विद्युत्	९	१९	विषक्षय	६५	१२८	व्यतिकर	६८	१३८
विद्वत्	५५	१११	विषधर	६४	१२७	व्यपदेश	६८	१३८
विद्यात्	३६	७२	विषय	४८	९७	व्यसन	८८	१८६
विधि	३६	७२	विफिकर	२९	५४	व्याघ्र	४६	९०
विधिपुत्र	३७	७३	विष्टप	५७	११३	व्याज	६८	१३७
विधु	२४	४७	विष्टर	५६	११३	व्याघ्र	७	१४
विधुर	८८	१८६	विष्णु	३७	७४	व्यह	६९	१३९
विनतात्मज	६५	१२७	विष्मय	८४	१७४	व्रज	६९	१३९
विन्मान्य	६८	१३७	विहायम्	२८	५३		६९	१४०
विपिन	६	१३	वीचि	१३	२७		७८	१६२
विफल	८८	१८६	वीतगग	५८	११६	व्रतनी (व्रतति)	११	२३
विभावसु	२३	४६	वीर	५८	११५	व्रतिन्	२	३
	३३	६५	वृक	६४	१२७	व्रान	६९	१३९
विभु	५	१०	वृकोदर	७१	१४५	व्योमन्	२८	५३
विभ्रम	{ १३	२७	वृक्ष	४	७	श		
	{ ४९	१०	वृजिन	६६	१३९	शकल	८९	१८७
वियन्	३८	५३	वृत्त	८७	१८३	शकुनि	२९	५४
वियोग	७७	१६०	वृत्तान्त	६८	१३८	शकुनीश्वर	६५	१२८
विरचिन्	३६	७२	वृत्रहन्	३०	५८	शकुन्ति	२९	५४
विरह	७७	१६०	वृथा	८८	१८६	शङ्कृत्कारि	८१	१६७
विष्पाक्ष	३५	७०	वृषन्	३०	५९	शक्तिमन्	३४	६७
विरोचन	२६	५०	वृषभ	५७	१४४	शत्र	{ ३०	५७
विलम्बित	८७	१८४	वृषभध्वज	३५	६९		{ ९२	१९९
विशेषन	६०	११८	वृषभेश्वर	५९	११७	शक्रनन्दन	७०	१४४
विश्रोचन	४९	९९	वृषभेय	७०	१४४	शक्र	३५	६८
विवर	८९	१९०	वृषभेय	७०	१४४	शपा	९	१८
विवाह	८०	१८९	वृषाकपि	३३	६६	शभ	३५	६८
विशद	{ ७२	१४८	वृ हित	५२	१०५	शभविघ्नकर	४३	८४
	{ ८४	१७३	वेग	८३	१७२	शट	७९	१६५
विशाख	३४	६७	वेधस्	३६	७२	शतक्रतु	३०	५७
विशारद	७९	१५६	वेला	१३	२७	शनपत्र	११	२१
विशारिन्	८	१७	वेश्मन	६६	१३२	शनमन्यु	३०	६०
विशाल	८७	१८४	वेश्या	१७	३६	शत्रु	२२	४४
विशालाक्ष	३५	६९	वैजयन्ती	४३	८४	शकटी	८	१७
विशिख	४१	८१	वैनतेय	६२	१०९	शबरी	७३	१५१
विश्व	८८	१८६	वैरिन्	२२	४४	शब्दभेदिन्	७०	१४४

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
शर	{ ७ ३९	१५ ७८	शिव	{ ३५ ९१	६८ १९०	श्रीद	४८	९६
शरणा	६६	१३३	शिष्य	३	४	श्रुति	४९	९८
शरभ	४६	९०	शीघ्र	८३	१७६	श्रेयस्	९१	१९८
शरवणोद्भव	३४	६७	शीघ्रगामुक	४६	९१	श्रोणि(श्रोणी)	५१	१०३
शरीर	१९	३९	शीतल	८८	१८४	श्रोणीबिम्ब	६०	१२०
शर्व	३५	६७	शीघु	६१	१२०	श्रोतस्	६३	१२९
शर्वरी	६४	१२६	शीर्ण	८२	१७१	श्रोता	९२	१९९
शर्वरीकर	६४	१२७	शील	८८	१८५	श्रोत्र	४९	९८
शल्क	८९	१८७	शुक्तिज	४७	९४	श्रद्धा	८५	१७८
शव	७	१४	शुक्ल	७१	१४७	श्वन्	४६	९२
शशिन्	२३	४७	शुचि	७१	१४७	श्वभ्र	८९	१९०
शशिप्रभ	७१	१४७	शुडा-शुड	६१	१२१	श्वसन्	३२	६२
शश्वन्	७७	१५९	शुडाल	४५	८९	श्वेत	७१	१४७
शम्भ	४२	८३	शुनासीर	३०	५७	श्वेतवाजिन्	७०	१४३
शम्भजीविन्	१४	२९	शुभ्र	७१	१४७	श्वोवमीय	९१	१९८
शाखिन्	५	११	शुषिर	८९	१९०	ष		
शानकुम्भ	८२	१७२	शूकर	४६	९	पटपद	४२	८२
शान्त	८२	१७१	शूर	९०	१९३	षड्दशन	८१	१६७
शारंगी-सारंगी	७३	१५०	शूलिन्	३५	७०	षडक्षीण	८	१७
शार्ङ्गिन्	३७	७४	शृखलिक	४६	९१	पणमुख	३४	६७
शार्ङ्गल	४६	९०	शृखलित	८४	१७६	षाष्टिक	८१	१६७
शालि	८१	१६७	शृगिन्	{ ४ ७८	८ १६३	पोडन्	८१	१६७
शासन	७४	१५४	शेमुषी	५०	११०	स		
शाम्भ	२	४	शैल	{ ४ ३८	७ ७६	संयत	४४	८७
शिवार्गिन्	४	८	शैलधर	३८	७६	सयमिन्	२	३
शिविन्	{ ३३ ६३	६४ १२६	शोणित	८९	१८८	सयुग	४४	८७
शिविवाहन	३४	६६	शोणी	७३	१५०	मशिन	२	३
शिवडिन्	६३	१२६	शोड	६१	१२०	ससरण	९०	१९२
शिपिविष्ट	३५	७०	शोडीर	८१	१६८	ससार	९०	१
शिरस्	५०	१०४	शौरि	३७	७५	समृति	९०	१
शिरोधर	५०	१००	शौर्य	८३	१७१	सस्कृत	७०	१६१
शिरोरुह	९०	१९५	श्यामा	२५	४८	सस्तुन	५४	१०८
शिला	८२	१७०	श्येत	७१	१४८	सस्थित	५८	१०८
शिलीमुख	{ ३९ ४२	७८ ८२	श्येनी	७३	१५०	सहनन	१९	३८
शिलीमुखासन	४०	७९	श्रव	४९	९८	सहित	७७	१६१
शिलोन्वय	४	८	श्रवण	४९	९८	सकल	८८	१८७
शिलोद्भव	४७	९४	श्री	३८	७६	सक्त	६१	१२२
						सखी	२०	४१
						सख्य	९०	१९७

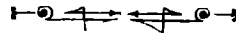
शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
सगोत्र	२१	८२	सप्ताचिप्	३३	६४	सलिल	७	१५
मक्रन्दन	३०	६०	सप्ति	२७	५२	सवयम्	२०	४१
सगत	९१	१९७	सभोचित	५६	११२	सवर्ण	६७	१३६
सग्राम	४४	८७	सभ्य	५६	११२	सवितृ	{ १८	३८
सघ	६९	१४०	सम	{ ६७	१३६	{ २७	५१	
सघात	६९	१४०		{ ७७	१६९	सवित्री	१८	३८
सजाति	६७	१३६	समज	६९	१४०	सव्यमाचिन्	७०	१४३
सजुप्	७७	१५९	समर	४४	८७	सह	७७	१५९
सचर	७८	१६२	समवर्तिन्	७१	१४५	सहकारिन्	२१	४२
सज्ञा	८०	१६५	समवायिक	२१	४२	सहकृत्वन्	२१	४२
सतत	८९	१८९	समवेत	७७	१६१	सहचरी	२०	४१
सतत	७७	१५७	समम्न	८८	१८७	सहमा	८३	१७२
सती	१७	३४	समाज	६६	१३९	सहाय	२१	४२
सत्कृत	६५	१२९	समालम्भ	६०	११८	सहस्रपात्	३६	७३
सत्य	८७	१८२	समिति	६९	१४०	सहस्राक्ष	३०	५८
सत्यकार	९१	१९७	समीगर्भ	३३	६६	सहित	७७	१६१
सत्रा	७७	१६०	समीप	६९	१४१	साकम्	७७	१६०
मदन	६६	१३२	समीग्ण	३२	६२	सागर	१२	२६
सदुचित	५६	११२	समुदय	६९	१४०	साधन	४३	८६
सदा	७७	१५९	समुद्र	१२	२६	साधीयम्	८३	१७२
सदागति	३२	६२	समुह	६९	१३९	साधु	{ २	३
सदुचित	५६	११२	सम्पराय	४४	८७	{ ८०	१७०	
सदृक्ष	६७	१३६	सम्पृक्त	७७	१६१	साधुवाद	७४	१५३
सदृश	६७	१३५	सम्फली	१७	३५	साध्वी	१७	३४
सदृश	६७	१३६	सम्भूत	७७	१६१	मानु	४	९
सद्मन्	६६	१३२	सम्बन्ध	२०	४१	मानुमन्	४	८
सधर्म	६७	१३६	सरणि	७८	१६२	मामज	४५	८९
सधृची	२०	८१	सर्गसीरुह	१०	२०	साम्प्रतम्	७५	१५६
मनातन	६३	१२५	सर्गस्वत्	१२	२६	साग्मेय	४६	९२
मनाभि	२१	४२	सर्गस्वती	५२	१०४	मादृ	७७	१५९
सन्तति	{ ६३	१२४	सर्गित्	१२	२४	माल	{ ६७	१३५
	{ ६९	१३९	सरूप	६७	१३६	{ ८६	१८१	
सन्तमस	७२	१८८	सरोज	१०	२०	साहस	७४	१५३
सन्तान	६३	१२५	सर्प	६४	१२८	गाहाय्य	६२	१९७
सन्देश	७४	१५४	सर्पिष्	६१	१२२	सित	{ ७१	१४९
सन्धानीत	८५	१७६	सर्व	८८	१८७	{ ८५	१७६	
सन्धिधि	६९	१४१	सर्वज्ञ	५८	११६	सिद्धान्त	३	४
सन्मति	५८	११५	सर्वज्ञ	५८	११६	सिन्धु	१२	२४
सपत्न	२२	४४	सर्वदा	७७	१५९	सिन्धुर	४५	८९
सर्पदि	७६	१५७	सर्ववलयभा	१७	३६	सिंह	५२	१०५

शब्दानुक्रमणिका

१२३

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
सीकृत	५३	१०६	सौहृद	९१	१९७	स्वाहापति	३३	६५
सीमन्	१३	२६	सौहृद्य	९१	१९७	स्वैरिणी	१७	३५
सीमन्तिनी	१४	३०	स्कन्द	३४	६६	ह		
सीर	७०	१४२	स्तन	५१	१०२	हस	६३	१२५
मुकृत	६५	१२१	स्तनधय	२०	४०	हसवाह	६३	१२५
मुचिरनन	७६	१५६	स्तनिन	५३	१०५	हसी	६४	१२७
मुन	१९	३९	स्तब्ध	{ ७५	१५६	हहो	७६	१५७
मुधासूति	२४	४७		{ ८१	१६८	हन्तोक्ति	५४	११०
मुनाशीर	३०	५७	स्तम्बकगि	८१	१६७	हय	२७	५२
मुनिमौक	७०	१४४	स्तम्बेगम	४५	८८	हर	३५	७०
मुन्दर	८५	१७७	स्तेन	८१	१६९	हरि	{ ६	१२
मुन्दरी	१५	३१	स्त्री	१४	३०		{ २७	५२
मुपणं	६५	१२९	स्थपुट	८७	१८३		{ ३०	५७
मुभट	९०	१९६	स्थविर	६३	१२४		{ ३७	७४
मुमन	४०	८०	स्थाणु	३५	६८		{ ४५	९०
मुग	३०	५६	स्थान	६६	१३३	हरिण	६४	१२७
मुग	६१	१२१	स्नेह	७७	१६०	हरिणी	७३	१५०
मुवर्ण	४७	९३	स्पर्शा	१७	३५	हरित्	{ ३२	६१
मुष्ठु	८३	१७३	स्पष्ट	८४	१७३		{ ७२	१४९
मुहन्	२०	४१	स्फीकृत	५२	१०५	हरित	७२	१४९
सूत्रामन्	३०	५७	स्फुट	८४	१७३	हरिद्राभ	७२	१४९
सूनु	१९	३९	स्मर	४०	८०	हरिवाहन	३०	५९
सूनुत	८७	१८२	स्मृत	५४	१०८	हर्म्य	६७	१०५
सूगि	५५	१११	स्यद	८३	१७२	हर्ष	५४	१०९
सूय	२६	५०	स्यन्दन	५३	१०६	हल	७०	१४२
सूफागि	३९	७७	सज्	६०	११९	हलि	७०	"
सेना	४३	८६	सष्ट	३६	७३	हव्यवाह	३३	६६
सेनानी	३४	६६	सवन्ती	१२	२४	हस्त	५०	१०१
सनानीपितृ	३५	६८	स्रोतस्विनी	१२	२४	हस्तशाखा	५०	१०१
सेन्द्र	३०	५६	स्रोतस्विनीपति	१२	२५	हस्तिन्	४५	८८
सेन्य	४३	८६	स्व	४७	९५	हाटक	४७	९२
सोदय	२१	४२	स्वभाव	८८	१८५	हार्द	९१	१९७
सोमवश	७१	१४६	स्वर्	३०	५६	हाला	६१	१२१
सौबामिनी	९	१८	स्वर्ग	३०	५६	हिम	{ ५९	११८
साध	६७	१३५	स्वर्ण	४७	९३		{ ८५	१७९
साम्य	८७	१७७	स्वर्ण	४७	९३	हिमवत्सुता	३६	७१
सोरभ	९१	१९७	स्वम्	२१	४३	हिरण्य	४७	९३
सौरि	३८	७५	स्वान्त	४१	८१	हिरण्यकशिपुसूदन	३७	७५
सोहाद	९१	१९७	स्वामिन्	{ ५	१०	हिरण्यगर्भ	३६	७३
				{ ३४	६७	हिरण्यप्रेतम्	३३	६४

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
हीन	८२	१७१	हृद्य	८५	१७८	हेमन्	४७	९३
हुताश	३३	६५	हृषीक	६५	१२९	हेरिक	८१	१६९
हुताशन	३३	६६	हृषीकेश	३७	७४	हेषा	५२	१०५
हृकृत	५३	१०५	हे	७६	१५६	हैयगवीन	६१	१२२
हृदय	४१	८१	हेति	४२	८३	हृम्ब	७३	१५८



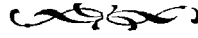
अनेकार्थनाममालास्थशब्दानुक्रमणिका

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
अ			कैवल्य	१००	४८	दाव	९७	१८
अक्ष	९८	२६	कोटि	९६	१५	द्रव्य	१००	४१
अज	९८	२१	क्षीर	९५	१३	द्विज	९५	११
अञ्जन	९४	९	ग			ध		
अथ	१००	३९	गुण	१००	३७	धर्म	१००	४१
अद्रि	९५	११	गुह्य	९६	१५	धातु	९९	३२
अनन्त	९३	४	गो	९८	२७	धिष्य	९४	७
अन्त	९८	२५	घ			प		
अन्तर	१००	३८	घृत	९३	५	पतग	९४	८
अब्द	९७	१७	च			पयम्	९६	१३
अम्बर	९४	७	चर्चा	९७	१७	पर्जन्य	९३	४
अर्घ	९६	१६	ज			पाञ्चजन्य	९५	१०
अर्थ	९८	२४	जात्य	९६	१६	पुद्गल	१००	४२
अशोक	९५	१२	जिन	९३	३	पुन्नाग	९४	९
इ			जीमूत	९३	४	पुष्कर	९९	२९
इति	१००	४०	ज्योतिष्	९४	६	प्राय-प्रायस्	९८	२४
क			त			बाधा	९६	१५
कदली	९५	१२	तत्र	१००	३६	ब्रह्म वाच	१००	३७
कम्बु	९५	१०	तल्प	९४	६	भ		
कम्बर	९५	१०	तार	९५	१३	भग	१००	४३
काष्ठा	९६	१४	ताक्ष्य	९७	१६	भाव	९८	२४
कीनाश	९७	१९	तीर्थ	९९	३१	भुवन	९३	५
कीलाल	९६	१५	द			भूरि	९५	१३
केतन	९४	७	दव	९७	१८			

भाष्यस्थशब्दानुक्रमणिका

१२५

शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक	शब्द	पृष्ठ	श्लोक
म			विवम्बत्	९३	३	सारग	९४	९
मयूख	९४	८	विष	९४	५	सारम	९४	८
र			वृषाकपि	९३	३	साल	९४	७
रम्भा	९५	११	वैकुण्ठ	९३	४	सिन्धु	{ ९४	७
रस	९९	३०	व्यामोह	९६	१४	{ ९६	१४	
राजन्	९५	११	श			सुमनस्	९५	१२
राम	९५	६	शङ्ख	९७	१८	सोम	९७	२१
ल			शम्भु	९३	३	स्तभ	९७	१७
लब्धि	१०१	८८	शिखरिन्	९५	११	स्याणु	९७	१७
ललाम	९९	३३	शुचि	२८	२३	स्यन्दन	९५	११
व			म			स्यान्	१०१	४५
वन	९३	५	सत्त्व	१००	३६	स्वर	९९	३५
वर्गणा	१००	८२	मन्त्रि	९६	१४	म्वेग	९७	१७
वर्ण	९९	३४	समय	९९	३५	ह		
वाम	९८	६	सगल	०४	९	हम	०७	२०
विरोचन	९७	२०	मार	०४	८	हग्नि	९८	२८



नाममालाभाष्यस्थशब्दानामकारादिसूची

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
अ			अचिराशु	९	२०	अन्धकरिपु	३६	४
अशु	२६	२१	अच्युत	३८	१५	अन्धनमस	७२	१२
अशुमान्	२६	२१	अण्डज	८	२८	अपथी	२३	२
अशुमाली	२६	२०	अतिमात्र	८३	१८	अपसर्प	८६	२३
अक्ष	४९	२३	अतिबेल	८३	१८	अपापित	३४	१६
अग	६	६	अत्रिनेत्रप्रसूत	२४	२५	अफल	६	२४
अग्निभू	३५	३	अधिष्ठान	४९	८	अब्ज	२४	२५
अग्रधन्वन्	३१	२६	अनन्त	२८	१५	अब्द	९	१२
अग्रिय	२१	१८	अनन्ता	४	६	अब्धिजा	३८	२२
अङ्गज	३९	१२	अनद्वय	७७	११	अभिक	१८	२०
अङ्गुर	५०	२४	अनिमिष	३०	१४	अभिख्या	७४	१३
अङ्गुरी	५०	२४	अनीक	४५	२	अभिजन	६३	८
अचला	४	६	अनोकिनी	४४	२०	अभिनव	७५	१७

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
अभिमन्थी	२३	३	आ			उदधि	१३	२
अभियाति	२३	१	आ	३८	२२	उदन्त	{ ६८ ७५	२० २
अभिसारिका	१७	१७	आच्छादन	५९	१०	उदन्व न्	१३	२
अभीक	१८	१९	आत्मीय	२१	१०	उद्धव	५४	२४
अभीशु	२३	१८	आदित्य	{ २६ ३०	१९ १२	उधस्य	६२	१३
अभ्यग्र	७०	१	आधार	६०	७	उपकण्ठ	६९	२३
अभ्यागम	४५	२	आनर्त	८	७	उपगत	९१	१०
अमुक	१८	२०	आप्त	२१	१०	उपधृति	२३	१०
अमृत	८	४	आप्तरूप	५६	८	उपमा	६८	८
अमृतनिर्गम	२५	२	आभील	८७	२०	उपलब्धि	५५	८
अमृताशन	३०	१४	आमिष	२०	२१	उपहृर	८४	१८
अम्बा	१८	२३	आयत	७६	१८	उपाधि	६८	१८
अम्बुभृत्	९	१३	आयोधन	४५	१	उरमिज	५१	२३
अयन	७८	१२	आरात्	६०	२३	उरु	८७	१८
अरण्यश्रवा	६४	१४	आरोह	७१	०	उपबृंथ	३४	१५
अरण्यानी	६	२३	आशीविष	६५	१	ऊ		
अरिष्ट	६२	१८	आशुग	३३	८	ऊभि	१३	१७
अचिष्मान्	३४	१५	आश्रयाश	३४	१६	ऊ		
अर्दनि	२७	२५	आश्रुत	७१	१०	कृक्य	४८	७
अध	८९	४	आमन्न	७०	१	कृक्षेग	२४	२५
अर्भक	२०	२	आमव	६१	१५	कृभु	३०	१३
अलकार	६०	११	आम्कन्दन	४५	१	कृग्य	६४	१७
अवनमम	७२	१२	आहाय	४	२०	कृगिन्	४३	२३
अवदान	७४	१५	इ			कृष्ण	६४	१७
अवयव	१०	१६	इक्षूद	१३	३	ए		
अत्रितग्वर	७७	११	इचिकिल	१०	१०	एकपदी	७८	१२
अविनीता	१७	१७	इन्वरी	१७	१७	एकान्त	८४	१८
अव्यय	८८	१६	इन्दिन्दिर	४०	९	एण	६४	१७
अशुभ	६६	१०	इन्दु	२४	२४	ऐ		
अश्मन्	८२	९	इन्द्रावरज	३८	१५	ऐरावती	०	३१
अशीवान्	५१	२२	इ			क		
असती	१७	१७	ई	२८	२२	ककुद्मती	५१	१९
असम्पूर्ण	८०	८	ईगान	३६	८	कङ्कपत्र	३०	२०
असहन	२०	८	उ			कच्छ	१३	९
अमुहृत	२३	८	उत्कर्ष	५४	२४	कञ्चुकी	६५	३
अस्रप	२९	२८	उदक	८	४	कटिमूत्र	६०	१०
अम्बपन	३०	१३	उदग्र	७६	१८	कटीर	५१	१९
अहर्पति	२६	२२						

भाष्यस्थशब्दानुक्रमणिका

१२७

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
कडत्र	५१	१३	कालिन्दीमोदर	७१	११	कौतव	२८	१८
कदम्ब	{ ३९ ६३	२१ १२	काश्यपनन्दन	६५	१६	कौवविप्रिय	३७	८
कदर्य	८५	१	काश्यपी	८	७	कोल	४६	१५
कनिष्ठ	२१	१५	किण्व	६६	१०	कोविद	५६	२
कन्धग	५०	११	किम्पचान	८५	१	कौणप	२९	२८
कन्याङ्ग	५२	०	किर्	४६	१६	कौमृतिक	८०	२
कपट	६८	१८	किरि	४६	१५	त्रतुपुरुष	३७	१४
कबन्ध	८	८	किर्मि	११	२७	क्रव्याद	२९	२८
कमल	८	८	कानाश	{ २० ७१	२८ ११	क्काव	८५	१
कमला	३८	२१	कीलाल	८	८	क्षणिक्का	९	२०
कमिता	१८	१०	कीश	६	१५	क्षितिघर	८	३०
कम्बल	६५	२१	कुज	६	७	क्षीर	८	८
कर्णजप	८१	२१	कुट	६	५	क्षीरोद	१३	२
कर्दमज	१०	१२	कुण्डली	६५	१	क्षारोदतनया	३८	२१
कर्पट	५९	१२	कुध्र	४	३०	क्षुद्र	{ ८१ ८५	२१ १
कर्तुः	{ २९ ४७	२८ १५	कुन्तल	०१	१	क्षुल्ल	८५	१
कर्मसाक्षी	२६	२२	कुमुदविवल्लभ	२७	७	क्षुल्लक	८५	१
कर्ष	१२	११	कुम्भीनम	८५	३	क्षेत्र	{ १६ १९	१५ १६
कलत्र	५१	१८	कुरग	६४	१७	क्षेत्रज	७९	२०
कलम्ब	३९	२०	कुरगम	६८	१७			
कलाधौत	८७	१९	कुल	६७	०			
कलाप	{ ५३ ६०	१४ १९	कुल्या	१२	११	खग	२६	२१
कल्क	६६	९	कुहक	८०	२	खरु	३९	२१
कामप	६६	१०	कुहर	८९	२१	खर्जर	८७	१९
कन्य	६१	१६	कूच	५१	१०			
कन्याण	४७	१५	कूट	६८	१८	ग		
कवि	५६	२	कल	१३	०	गन्धदारिका	१८	६
कदय	६१	१६	कूटङ्कषा	१२	१०	गन्धर्व	२७	२४
काकोदर	६५	२	कृतकर्मा	७०	२०	गन्धोत्तमा	६१	१५
काञ्चीपद	५१	१८	कृतमुग्न	७०	२०	गन्धिल	६०	१७
कान्ता	१६	१	कृतहस्त	७९	२०	गर्भपोत	२०	२
कापिशायन	६१	१६	कृती	५६	२	गाङ्गेय	{ ३५ ४७	४ १५
कामध्वमी	३६	४	कृतिवासा	३६	५	गार्हपत्य	३९	२१
कार्पटिक	८०	२	कृपीटयोनि	३४	१५	गिरिक	४७	१५
कालसार	६४	१७	कृष्टि	५६	२	गिरिश	३६	३
कालिङ्ग	४५	१६	कृष्णवर्मा	३४	१६	गीर्वाण	३०	१३
कालिन्दीकर्षण	७०	११	कृष्णसार	६४	१७	गुडिका	४७	१९
			केतु	२३	१९	गुरु	८७	१८

शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति	शब्द	पृष्ठ	पंक्ति
गुल्मिनी	११	२७	चन्द्रहाम	४३	३६	जैवातृक	२५	२
गूढ	४४	२०	चपला	{ १	२०	ज्ञ	५६	२
गूढपात्	६५	१	चय	१७	१७	ज्ञानि	२१	१०
गुहा	१६	१५	चय	६३	१२	ज्योति	४९	२३
गोकर्ण	६५	३	चला	३८	२२			
गोकुल	७८	१८	चामीक	४७	१५	ड		
			चिह्न	९०	२०	डिम्भ	२०	२
गोत्र	{ ८	{ ३०	चिकित्स	१०	१०	त		
	{ १९	{ १६	चित्रक	८६	११	तटिनी	१२	१०
	{ ६३	{ ८	चित्रकाय	८६	७	तटी	१३	१
गोत्रभिद्	३१	२६	चित्रपुङ्ख	३९	२०	तडित्कान्	०	१३
गोपति	{ २६	२०	चित्रभान्	{ २६	२१	तनया	२०	१४
	{ ३१	२६	चीवर	{ ३१	१५	तन्त्र	८४	२०
गोष्ट	७८	१८		५०	११	तपकी	६०	११
गौर	७२	१	ज			तमाल	६६	०
गौरीपुत्र	३५	३	जगच्चक्षु	२६	२०	तमस्विनी	२५	२५
ग्रावन्	८७	९	जगत्कर्ता	३७	१०	तमालपत्र	८३	११
ग्रावा	८	३०	जगन्प्राण	३३	७	तमिस्र	७७	१०
ग्रीवी	८६	१९	जघन	५१	१०	तमिस्रा	२५	२१
			जङ्घा	५१	२०	तमी	२५	२५
घ			जनान्तिक	८४	१८	तमोघ्न	२१	१०
घन	१९	१६	जन्य	८५	१	तरक्षु	८६	८
घनरस	८	३	जम्बा	१०	१०	तरम	२१	२०
घम	२६	२८	जम्बूनद	८७	१५	ता	३८	२०
घृणि	२३	१९	जयन्त	८७	१०	तार	८७	१०
घृत	६७	७	जयन्ती	४३	१०	तारका	८०	२३
घृतोद	१३	३	जरट	६३	४	तारकारि	३५	३
घोटक	२७	२५	जरन्	६३	४	तागपथ	२८	१४
घोणा	५१	२	जलचर	८	२०	ताक्ष्य	२७	२५
च			जलमुच्	०	१३	तिग्माशु	२६	१
चक्र	४४	२०	जलराशि	१३	०	तिमिररिपु	२६	२०
चक्रवाल	६३	१२	जलशयन	३८	१०	तीर	१३	१०
चक्राङ्गवाह	६७	२५	जाल	{ ६३	१३	तुण्ड	८०	१८
चक्री	६५	१		{ ६७	२३	तुन्द	५१	१०
चक्षुध्रवा	६५	२	जालक	६७	२३	तोयनिधि	१३	२
चञ्चरीक	४२	९	जालिक	८०	२	त्रयीतनु	२६	२०
चञ्चला	९	२१	जिघामु	२३	२	त्रिक	५१	१०
चटुला	०	२१	जित	३८	१५	त्रिकस्थानक	५१	१०
चन्द्रकी	६४	३	जिष्णु	३१	२५	त्रिदश	३०	१०
चन्द्रवसु	८७	१५	जिह्वा	६५	०			
चन्द्रसज	६०	७	जीर्ण	६३	४			

त्रिदशदीर्घिका	३६	११
त्रिदिव	२८	१५
त्रिपथा	७८	१५
त्रिपुरान्तक	३६	३
त्रिप्रचरा	७८	१५
त्रियामा	२५	२६
त्रिवर्त्मा	२७	१५
त्रिविष्टपगद्	३०	१३
त्रिमचरा	७८	१५
त्रिमरणि	७८	१४
त्रियोत्ता	३६	११
त्र्यध्वा	७८	१४

द

दक	८	४
दक्ष	७९	२०
दक्षाध्वरध्वसक	३६	४
दक्षिणापति	७१	१२
दण्डधर	७१	११
दण्डाहत	६२	१८
दध्युद	१३	३
दन्तावल	४५	१६
दन्दशूक	६५	२
दमुना	३४	१६
दमूना	३८	१७
दयिता	१६	१
दर्वाकिर	६५	२
दल	८९	४
दशमीस्थ	६३	४
दस्यु	{ २३ ८२	{ ३ ४
दाक्षायणीरमण	२५	२
दाण्डाजिनक	८०	२
दाव	६	२३
दाशार्ह	३८	१४
दामेरक	४६	१९
दिगम्बर	७२	१३
दिनकर	२६	२०
दिनमणि	२६	१९
दिवम्पति	३१	२७

दीर्घ	७६	१८
दीर्घजङ्घ	४६	१९
दीर्घपृष्ठ	६५	२
दुर्गति	९०	१
दुर्जन	८१	२१
दुर्वर्ण	४७	१०
दुर्हत्	२३	३
दुश्च्यवन	३१	२५
दृक्श्रुति	६५	३
देवता	३०	१२
देवन	३०	१४
दोषग्राही	८१	२१
दोषज्ञ	५६	२
द्यु	२६	२८
द्युम्न	४८	६
द्रज्ज	४९	८
द्रु	६	५
द्रुणा	४२	१
द्वन्द्व	४५	२
द्वादशान्मा	२६	२२
द्विजगज	२५	१
द्विजिह्व	८१	२१
द्विरसन	६५	२
द्वीपवती	१२	११
द्वीपी	४६	७
द्वेषण	२३	२

ध

धनञ्जय	३४	१६
धरणिधर	३८	१४
धर्मराज	७१	११
धर्पणी	१७	१७
धव	१८	१९
धाम	२३	१९
धाराधर	९	१२
धीर	५६	१
धूपक	४६	१९
धूमध्वज	३४	१५
धूमयोनि	९	१३
धूमल	७२	७

धूमिका	८५	२५
धृष्णि	२३	१९
ध्रुव	७७	११

न

नक्तमुखा	२५	२५
नखरायुध	४६	४
नलिनी	११	२२
नाक	२८	१५
नागान्तक	६५	१६
नालीक	८०	१५
नासिका	५१	२
निशत्रक	८८	१८
निकाय	६३	११
निकुम्भ	६३	१२
निखिल	८८	२४
निगम	{ ४९ ७८	{ ८ १२
निताराम्	८८	११
निगय	९०	१
निर्जर	३०	१२
निर्झरिणी	१२	१०
निर्व्ययन	८९	२१
निवह	६३	११
निशीथिनी	२५	२६
निशीथिनीनाथ	२५	१
निषद्वर	१०	१०
नूतन	७६	१७
नूपलक्ष्म	९०	२६
नेम	८९	८
नेस्ता	५१	१
नैकपेय	२९	२८
नैकमेय	२९	२८
नैर्ऋत	२९	२८
न्यङ्कु	६४	१७

प

पङ्क	६६	१०
पङ्कज	१०	१२
पञ्चशाख	५०	१९
पञ्चानन	४६	४

पञ्चेषु	३९	१२	पिण्ड	१९	१६	प्रच्छन्न	८४	१८
पट	५९	१३	पितृपति	७१	११	प्रतन	७६	४
पटी	५९	१३	पोतवासा	३८	१३	प्रतानिनी	११	२७
पट्टसूत्र	६१	१	पोति	२७	१५	प्रतिकिट्ट	६६	१०
पताकिनी	४४	२०	पीयूष	६२	१३	प्रतिज्ञात	९१	१०
पति	१८	१९	पीयूषरुचि	२५	१	प्रतिपक्ष	२३	२
पदजेय	१४	३०	पीलु	४५	१६	प्रतिभय	८७	२२
पदवी	७८	१२	पुञ्ज	६३	१७	प्रतिभा	५५	१७
पदाङ्गद	५३	१४	पुटकिनी	११	२२	प्रतिम	६८	८
पदिक	१४	३०	पुण्डरीक	४६	७	प्रतिमोषक	८२	५
पद्म	१४	३०	पुत्री	२०	१४	प्रतीक	१९	१६
पद्धति	७८	१२	पुद्गल	१९	१६	प्रतीपदर्शिनी	१६	१
पद्मशासन	६५	१६	पुर	{ १९	१६	प्रत्न	७६	४
पद्मवासा	३८	२१		{ ६७	२	प्रत्यनीक	२३	२
पद्मा	३८	२१	पुग्न्ध्री	१५	२८	प्रदह	३९	११
पद्मी	४५	१६	पुग्ज	९०	७	प्रद्युम्न	३९	११
पद्या	७८	१२	पुलक	८२	९	प्रद्योत	२३	१९
पयूष	६२	१३	पुलप	१४	९	प्रद्योतन	२६	१९
पयोधर	९	१२	पुष्क	९०	७	प्रधन	८५	१
पग	२३	२	पुष्कर	{ ८	३	प्रपान	१३	१०
परमेश्वर	३६	३		{ २८	१४	प्रबुद्ध	५६	२
परमेष्ठी	३७	१०	पुष्ट	९०	७	प्रभाकर	२६	२१
परास्कन्दी	८२	४	पुष्पलिट्	४२	९	प्रमदा	१५	२८
परिपन्थी	२३	२	प्रग	६३	१२	प्रलम्बधन	७०	११
परिप्लुता	६१	१५	पूर्वज	२१	१८	प्रवया	६३	४
परिषज्ज	१०	१२	पूर्वदिग्पति	३१	२६	प्रविदारण	४५	१
परिष्कार	६०	११	पृथुक	२०	२	प्रवृत्ति	६८	२०
पर्जन्य	३१	२६	पृदाकु	२५	१	प्रवेणी	९१	७
पर्यवस्थाता	२३	२	पृश्नि	२३	१९	प्राशु	७६	१८
पलाशी	६	५	पृषदश्च	३३	८	प्राणाधिनाथ	१८	२०
पल्ल	७७	१४	पृषन्क	३९	२१	प्राणेशाशु	२५	१
पवनाशन	६५	३	पोत	५९	१३	प्रावर	५९	१३
पशु	८०	१५	प्रकट	८४	५	प्रावार	५९	१३
पशुपति	३६	३	प्रकार	६८	८	प्रीति	५४	२३
पाशुला	१७	१७	प्रकाश	{ ६८	८	प्रेक्षा	५५	७
पाक	२०	२		{ ८४	५	प्रेतपति	७१	११
पाकशामन	३१	२७	प्रकोष्ठ	५०	१६	प्लवङ्गम	६	१५
पानीय	८	४	प्रम्य	६८	८			
पार्वतीनन्दन	३५	४	प्रग्रह	२३	१९	फल	६	२३
पिचण्ड	५१	१०	प्रचलाकी	६४	३	फलक	५१	१९

ब	भुवन	म	माधव
बद्धभूमिक ६७ ७	भूच्छाय ७२ १३	माधव ६१ १६	
बद्ध ८० १४	भूतधात्री ४ ६	माधवक ६१ १५	
बभ्रु ३८ १५	भूनेश ३६ ३	माध्वीक ६१ १७	
बल ७० ११	भैरव ८७ २२	मानसौकम् ६३ २३	
बलमूदन ३१ २५	भोक्ता १८ १९	माया ३८ २२	
बहिर्योनि ३४ १५	भोगी ६५ २	मायावी ८० ३	
बहुल ३८ १४	भ्रूण २० ३	मायी ८० ३	
बाडिश ८० १४	म	मितम्पच ८५ १	
बाणामन ४२ १	मञ्जुकेश ३८ १३	मिश्र २६ ११	
बाल { २० २	मण्डन ६० ११	मिष्ट ६८ १८	
बाळ { ८० १४	मण्डल ६३ १२	मिहिका ८५ २५	
बाळिश ८० १४	मति ५५ ८	मिहिर २६ २०	
बाहुल्य ३५ ४	मतिमान् ५६ ३	मुकुन्द ३८ १४	
प्रक्कग ४७ २	मन्मथ ८ २८	मुदि ९ १३	
बुद्धि ५५ ८	मधु ६१ १५	मूर्तिज १९ २०	
बृहत् ८७ १८	मधुकर ४२ ८	मूर्धज ९० २९	
बृहद्मान् ३४ १६	मधुमख ३९ १२	मृगदश ४७ २	
ब्रह्मचारी ३५ ४	मनमिज ३९ ११	मृगरिपु ४६ ४	
ब्राह्मी ५२ २०	मनीमी ५६ २	मृगाङ्ग २५ २	
भ	मन्त्रज ८७ २	मृगारि ४६ ७	
भग २६ २०	मन्या ५० ११	मृणालिनी ११ २२	
भयानक ८७ २२	मयूख २३ १९	मृदुल ७५ १४	
भर्ग ३६ ४	मरालवाह ६३ २५	मृद्य ४५ १	
भर्ता १८ १९	मरुत् ३० १३	मृद्वीक ६१ १७	
भर्तृ ३८ २२	मरुद्वर्मन् २८ १४	मेघपुष्प ८ ४	
भल्ल ३९ २१	मल ६६ १०	मेधा ५५ ८	
भल्लि ३९ २१	मल्लिलुच ८२ ४	मोषक ८२ ५	
भषण ४७ २	मस्तक ५२ ९	य	
भमल ४२ ९	महातेजम् ३५ ४	यथार्थवर्ण ८७ १	
भानमान् २६ २१	महाबल ३३ ८	ययु २७ २५	
भाम्कर २६ १९	महाबिल २८ १५	याज्य ६२ ७	
भाम्बान् २६ २०	गहारजत ४७ १५	यानयाम ६३ ४	
भीम { ३६ ८	महासेन ३५ ४	यामिनी २५ २६	
{ ८७ २२	महिला १६ १	यथ ६३ १२	
भीषण ८७ २२	महीरुह ६ ५	युनी १५ २३	
भीष्म ८७ २२	महेला १६ १	र	
भीष्मसू ३६ ११	मा { २५ २	रजनीकर २५ १	
भुजङ्गभुक् ६५ ३	{ ३८ २२	रत्नगर्भा ४ ६	
	माणवक २० ३	रत्नवती ४ ६	

रथाङ्गपाणि	३८	१४	वरयिता	१८	१९	विल	८९	२१
रमणी	१५	२८	वरला	६४	११	विलेशय	६५	२
रमा	३८	२२	वराक	८५	१	विवसन	५९	१०
रवण	४६	१९	वरिष्ठ	२१	१८	विवस्वान्	२६	२०
रश्मि	२३	१९	वर्णिनी	१५	२८	विविक्त	८४	१८
रसा	४	६	वर्तनी	७८	१२	विशारद	५६	३
राक्षस	२९	२७	वर्षीयान	२१	१८	विशिख	३९	२०
रागसूत्र	६१	१	वर्ण	१९	१६	विशम्भ	८८	६
राजसर्प	६५	३	वर्हण	५२	२८	विश्वरूप	३८	१३
राजा	२४	२४	वशा	१६	१	विश्वाम	८८	६
रात्रि	२५	२६	वमति	२५	२६	विष्टर	६	६
राशि	६३	१२	वमु	{ २३	१९	विष्टरश्रवा	३८	१५
रिश्य	६४	१७		{ ३४	१५	विष्णुपद	२८	१५
रुक्म	४७	१५	वम्त्र	५९	१२	विष्णुपदी	३६	११
रुग्म	४७	१५	वस्न	५९	१०	विष्णुग्य	६५	१६
रुचि	२३	१९	वह्निरेता	३६	४	विष्वक्मोन	३८	१३
रुच्य	२९	२२	वातप्रमी	६४	१७	त्रिमग	६३	११
रुक्	६४	१७	वामदेव	३६	४	विमार	८	२९
रुक्	८९	२२	वामनेत्रा	१५	२८	विम्नीर्ण	८७	१८
रोचि	२३	१८	वाग्द	९	१३	वीचिमाली	१३	२
रोधोवक्रा	१२	११	वाना	६८	२०	वीणा	९१	७
रोप	३९	२१	वामनेयी	२५	२६	वीनहोत्र	३४	१६
रोलम्ब	४२	९	वामिता	१५	२८	वीनि	२७	२५
रोहिणीवत्सल	२४	२५	वाम्नीर्णपति	३१	२६	वीरुन्	११	२७
ल			विकर	६३	११	वृक्ष	६	५
लक्ष्य	६८	१८	विकि	२९	१७	वृजिन	९१	१
लब्धवर्ण	५६	१	विकर्तन	२६	२०	वृत्तान्त	७५	०
लवणोद	१३	२	विक्रान्त	९०	१८	वृत्तारि	३१	२५
लहरी	१३	१७	विग्रह	{ १९	१५	वृद्ध	{ ५६	२
लेख	३०	१३		{ ४५	२		{ ६३	४
लेङ्गवह	४७	२	विजन	८४	१८	वृद्धश्रवा	३१	२५
व			विधा	६८	८	वृन्दागक	३०	१३
वधोरह	५१	१४	विधेय	८०	११	वृषाकपि	३८	१५
वज्रधर	३१	२६	विपश्चित्	५६	२	वृषाङ्क	३६	५
वट्ट	२०	३	विपुला	४	६	वृषी	९१	७
वनमाली	३८	१५	विबुध	३०	१३	वैकुण्ठ	३८	१४
वनीकस्	६	१५	विभव	४८	७	वैजयन्त	४३	१०
वपा	८९	२२	विभा	२३	१९	वैवम्बन	७१	११
वयसी	२०	१६	विभावरी	२५	२५	व्यक्त	५६	३
			विरोक	२३	१९	व्यञ्जक	८०	३

व्याल	६५	१	शुक्लापाङ्ग	६४	३	सदेश	६९	२३
व्यूह	६३	१३	शुचि	३४	१५	सन्	४६	२
व्योमकोश	३६	३	शुण्डा	६१	१५	सनातन	{ ३८ ७७	{ १५ १०
व्रज	६३	११	शुपि	८९	२२	सनाभेय	२१	१०
व्रान	११	२७	शृंग	२६	२०	सनीड	६९	२३
श			शोक	०३	२०	सन्निकट	७०	१
शकली	८	२८	शेवल्लिनी	१०	११	सन्निभ	६८	८
शक्तिपाणि	३५	३	शैल	४	३०	सपिण्ड	२१	१०
शतयुति	३७	१०	श्यामकण्ठ	६४	३	सन्तादव	२६	२१
शतहृदा	९	२०	श्राद्धदेव	७१	११	सभामद	५६	७
शतानन्द	३७	१०	श्रीकण्ठ	३६	३	सभाम्नाग	५६	७
शबल	६४	१७	श्रीनन्दन	३९	११	समय	३	१६
शम	५०	१९	श्रोपति	३८	१३	समर्थदि	६९	२३
शमन	७१	११	श्रीवत्साङ्क	३८	१३	समवाय	६३	१२
शम्बर	६४	१७	श्लाक	७४	१३	समाग्या	७८	१३
शम्भु	{ ३६	३	श्वभ्र	८९	२२	समानोदर	०१	१०
	{ ३८	१५	श्वेत	४७	१९	समानोदर्य	०१	१०
शय	५०	१०	श्वेतच्छद	६३	२३	समिति	४५	०
शवरी	२५	२५	श्वेतगोचि	२५	१	समीक	४५	१
शक्ती	८	२९	प			समीर	३३	८
शशंवज	१३	२	पञ्चरण	४२	५	समुदय	६३	१२
शशाङ्क	२५	१	पडिन्ध्र	४२	९	गमुदाय	{ ४५ ६३	{ २ १२
शशिखर	३६	३	म			समुद्रकान्ता	१२	१२
शाखामृग	६	१५	मय	१५	१	समुद्रनवनीत	०७	२
शानकुम्भ	८७	१५	मग्रा	५५	८	समूह	६३	११
शात्रव	२३	२	मग्रावान्	५६	३	सम्मर्द	४५	३
शाद	१०	१०	सगर	४५	३	सम्मिन्	०५	२
शार्ङ्गा	११	२७	सविति	५५	८	सम्भर्ता	१२	११
शाल	६	५	सवेग	८३	१३	सगिह्वरा	३६	११
शालावृक	४७	२	गयान	५९	१३	सगिमुप	६५	१
शाव	२०	३	गम्याय	६७	२	सपिणित	६४	३
शाश्वत	७७	११	सम्पाट	४५	२	सर्व सहा	४	७
शाश्वतिक	७१	११	सखा	२१	२	सर्वज	३६	३
शिक्षित	७९	२०	सगर्भ	०१	१०	सर्वतोमुख	८	८
शिखावल	६४	३	सङ्कल्पजन्मा	३९	११	सलि	८०	१०
शिञ्जिनी	{ ५३	१३	सञ्चय	६३	११	सविता	०६	१९
	{ ६०	१९	सत्र	६	०३	सहचरा	१६	१५
शिरमिज	९०	२९	सदानत	७७	११	सहचरी	१६	१५
शिशु	२०	२				सहधर्मचारिणी	१६	१५
शीर्ष	५२	९						

सहस्रकिरण	२६	१९	सुरवर्त्म	२८	१५	स्वादूद	१३	३
सहाय	१४	३०	सुरसरित्	३६	१०	स्वापनेय	४८	६
सागराम्बरा	४	६	गुरोद	१३	३	स्वैरिणी	१७	१७
सामाजिक	५६	७	सूर	२६	१०	ह		
सामि	८९	४	सेवता	१८	२०	हम	२६	२१
सायक	३९	२१	सेवक	१८	३०	हमक	५३	१४
सार	४८	६	सैरिन्धी	१८	१८	हरि	२६	२०
सारङ्ग	६८	१७	सोदर	२१	१०	हरि	३३	८
सारसन	६०	१९	स्कन्ध	५०	२१	हरि	७१	११
साथ	६३	१२	स्तनयितु	९	१२	हरिण	७०	९
मिह	४६	४	स्तन्य	६२	१३	हरिदश्व	२६	२१
मिड्धनी	५१	२	स्तोम	६३	१३	हरिप्रिया	३८	२१
मिचय	५९	१२	स्थविर	३७	१०	हरिमान्	३१	२७
मिन	४७	१९	स्थायीय	४९	८	हरिद्वय	३१	२६
सिताश्र	६०	५	स्थिरा	४	७	हर्यक्ष	४६	४
सिनेतरगति	३४	१५	स्निग्ध	२१	२	हवि	६२	७
सीता	३८	२२	स्पशन	३३	८	हव्य	६	२३
मुकुमार	७५	१४	स्पश	८७	१	हाहूर	६१	१६
मुचरिता	१७	९	स्पृह्य	६२	७	हिमवाला	६०	५
मुधामूर्ति	२५	२	स्रष्टा	३६	४	हिगण्य	४८	७
मुधी	५६	२	श्रोतम्	१२	११	हल्लय	३९	१२
मुपर्णकेतु	३८	१४	स्वजन	२१	१०	हेपण	५२	२६
मुपर्वा	३०	१८	स्वयम्भू	३७	१०	हेषा	५२	२६
मुमनम्	३०	१२	स्वराट्	३१	२६	हादिनी	१	२०
मुग्ज्येष्ट	३७	१०	स्वर्गौकम्	३०	१२	हादिनी	१२	११
मुग्निमनगा	३६	११	स्वादुसा	६१	१५	होपा	५२	२६

यौगिकशब्दानुक्रमणिका

अग्निपर्यायमूत्र सेनानी ६६	जित्यापर्यायकर बल १४२	मनुष्यपर्यायपति नृप १४
अघपर्यायजयी जिन १३१	अपाद्यादि ध्वजाद्यन्त स्मर ८४	मयूरपर्यायपति गुह १२६
अदितिशब्दान्तरं सुतपर्याय-	तामरसपर्यायवती विमिनी २३	मेघपर्यायपथ आकाश ५३
प्रयोगे देवनामानि ५६	दिनपर्यायकर सूर्य ५०	रात्रिपर्यायचर राक्षस ५५
आकाशपर्यायिग खग ५४	देवपर्यायपति उन्द्र ५७	लक्ष्मीपर्यायपति हरि ७६
आकाशपर्यायचर खेचर ५४	देहपर्यायभव मुत ३९	वायुपर्यायपथ आकाश ५३
उडुपर्यायपति चन्द्र ८८	द्युपर्यायधुनी गगा ७१	वार्ययाप्रचर मत्स्य १६
काष्ठादिनामत पर पालप्रयोगे	धनपर्यायदायक कुबेर ९६	वार्ययायत्रि अम्बुधि १६
गजप्रयोगे अम्बरप्रयोगे च	धीनामवर्जित मूख १६६	वार्ययायोद्भव पद्मम् १६
दिग्पाल नामानि ६१	नागपर्यायारि मृगेन्द्र ९०	वित्तपर्यायपति कुबेर १६
कायपर्यायगति मन्मथ ७७	निशापर्यायकर चन्द्र ४८	विधिपर्यायपुत्र नारद ५३
वार्मुकपर्यायक्रांति अटनी ७९	पद्मगपर्यायवैरी गरुड १२८	विपिनपर्यायचर वनेचर १३
किरणवाचिभ्य पूर्व शीतशब्द-	परिपत्पयायज कमलम् २०	विष्टपर्यायपति जिन ११३
प्रयोगे चन्द्रनामानि, यथा-	पवनपर्यायपुत्र भीम ६६	ग्रम्पापर्यायपति अम्बुद १९
शीतकिरण ४६	पवनपर्यायपुत्र हनुमान् ६३	शैलभग्नादिधर हरि ७६
किरणशब्देभ्य पूर्वम् उष्णशब्द-	पवनवाचिमुखवाग्नि ६४	सेनानीपर्यायपिता शङ्करः ६८
प्रयोगे सूर्यनामानि, यथा-	पुष्पपर्यायशर ममर ८०	श्रोतस्विनीपर्यायपति.-
उष्णकिरण ४६	पुष्पपर्यायाम्त्र ममर ८०	अग्नि २४
कृष्णपर्यायपुत्र मन्मथ ७७	प्रमथपर्यायवान् गिरि ९	स्वर्गपर्यायपति उन्द्रः ५७
गङ्गानदीश्वर मिन्धु ७१	भूमिपर्यायधर शैल ७	स्वर्गपर्यायवाम त्रिदशः ५७
चित्रापर्यायहारि मनोहरम् १७८	भूमिपर्यायपति नृप ७	स्वान्तपर्यायोद्भव मातरः ८१
जाङ्गलपर्यायप्रिय राक्षस ५५	भूमिपर्यायरुह वृक्ष ७	हिमपर्यायकर चन्द्र १७९

अनेकार्थनिघण्टुगतशब्दानामकरादिसूची

अक्ष	१०४	७६, ७७	इडा	१०२	२९	केसरित्	१०४	८५
अगाग्नि	१०४	१०५	उ			कोकिला	१०४	८२
अङ्क	१०३	४०	उक्षन्	१०४	१०६	कोटरस्थ	१०५	१४९
अज	१०२	३४, ३५	उदक्प्रा	१०५	१३०	कोमल	१०२	२६
अदिनि	१०२	२९	उदार	१०५	१२९	कौशिक	१०२	१३
अध्यात्म	१०५	१२३	उष्णीष	१०४	८८	क्रव्य	१०४	९५
अध्यूहा	१०२	३०	उत्सा	१०४	१०७	क्षत्ता	१०३	३८
अनन्त	१०२	३७	ऋ			क्षय	१०३	४५
अनिमिष	१०२	४	ऋत	१०४	७५	क्षर	१०२	२१
अपाचोन	१०४	९३	ओ			ख		
अव्द	१०३	५७	ओषण	१०८	७५	ख	१०३	६४, ६५
अमृत	१०२	२२	क			ग		
अम्बर	१०२	१९	क	१०२	३४	गो	१०२	२
अम्बरीष	१०३	६१	ककुप्	१०३	४४	गोलक	१०५	१३३
अर्क	{ १०२	१५	कबन्ध	१०४	८८	ग्रावाग	१०३	७८
	{ १०४	९४	कम्बु	१०२	११	घ		
अलान	१०४	८६	कर	१०२	२४	घन	१०३	४६, ४७
अवदान	१०३	५५	वर्षक	१०४	९०	घनाघन	१०४	९३
अश्वारोह	१०४	९४	कल	१०४	८६	घृत	१०२	२३
असित	१०३	६७	कलभ	१०४	१०८	च		
असुर	१०३	४८	कलुष	१०४	१०८	चटक	१०४	१०४
आ			कानीन	१०४	९०	चम्	१०३	४८
आकृत	१०४	९८	किलास	१०८	१०४	छ		
आक्रन्द	१०४	९५	कीटक	१०५	१२६	छेद	१०४	८६
आगोष	१०३	४०	कीनाग	{ १०३	५३, ५४	ज		
आडम्बर	१०४	११२		{ १०५	१२१	जम्बुक	१०२	१४
आत्मज	१०३	५३	कीलाल	१०२	२५	जीमूत	१०३	५८
आदिन्य	१०३	७१	कुण्ड	१०५	१३३	ज्योति	१०३	५५, ५६
आर्ध	१०४	१०२	कुण्डाशी	१०५	१३८	त		
आगतन	१०४	७८	कूल	१०३	३६	तपस्	१०५	१३१
आर्य	१०४	१११	कृतघ्न	१०५	१२३	तमोनुद	१०२	१६
आलबाल	१०४	१०३	कृष्ण	१०२	२२	ताक्ष्य	१०३	५०
आलान	१०४	९२	केतु	१०२	१६			
आहत	१०४	८९						

निलक	१०८	८४
तुल्य	१०८	१०४
तृणी	१०३	५१
नेजम्	१०५	१३१
तोदन	१०८	९२
तोयद	१०३	५८
त्रियामा	१०४	१०९
त्रिशङ्कु	१०३	६८

द

दक्ष	१०३	७०-७१
दक्षिण	१०४	९७
दविण	१०४	९९
दान	१०८	९२
दान्त	१०५	१२४
दीघ	१०४	११०
दुस्वर्मन्	१०४	९०
दोला	१०८	१०४
डिज	१०३	५२

घ

धनञ्जय	१०२	९
धार्तराष्ट्र	१०३	६५
घिण्य	१०२	१८

न

नकुल	१०३	६७
नत्व	१०५	१५१, १५२
नाग	१०३	४९
नापित	१०४	१०१
नास्तिक	१०५	१३२
निकष	१०८	८४
नितम्ब	१०३	७२
निरुपद्रवा	१०५	१२८
निरुपस्करा	१०५	१२७
निविड	१०४	८९
नृसिंह	१०५	१२०
न्यग्रोधपरिमण्डला	१०५	१४३

प

पङ्कज	१०४	८१
-------	-----	----

पण्ड	१०४	९१
पतङ्ग	१०२	१२
पदकृन्	१०८	१०१
पद्म	१०४	७७
पय	१०२	१९
परचित	१०५	१३५
परमेष्ठी	१०८	१००
परिचर्य	१०८	८८
पर्जन्य	१०३	६०
पलाय	१०४	१०६
पवन	१०४	१११
पानीय	१०८	१०२
पाप	१०८	९२
पाञ्चजन्य	१०२	११
पिशङ्ग	१०८	८३
पिहित	१०८	९५
पुण्यश्लोक	१०५	११७
पुलिन	१०८	८२
पुष्कर	१०३	३६
पुष्प	१०८	७८
पु स्त्व	१०३	६२
पृष्ठीही	१०४	१०७
पौलस्त्य	१०३	५९
प्रजापति	१०३	३८
प्रधान	(१०३)	५६
	(१०८)	१०५
प्रगा	१०४	११३
प्रभाकर	१०३	६६
प्रासाद	१०३	४६
प्लव	१०३	४५
फ		
फेनवाहिनी	१०३	९४
ब		
बभ्रु	१०४	९९
बीभत्स	१०२	९
भ		
भगवन्	१०५	१२९
भामिनी	१०५	१४२

भार्ग	१०५	१८८
भाव	१०४	८७
भास्कर	१०२	१२
भुवन	१०२	२५
भृगुश्रव	१०५	१४०

म

मञ्जूषा	१०८	८५
मण्डूक	१०८	८९
मनवायिनी	१०५	१३९
मधु	१०३	६३, ६४
मन्थिन्	१०२	१५
मन्द	१०५	१२१, १२३
मन्दिर	१०८	१०५
मयूख	१०२	१७
मलिम्लुन्	१०३	५२
मम्का	१०४	१०७
महेष्वास	१०५	११८
माया	१०३	६३
मूष्ट	१०८	९६
मेचक	१०४	८३, १०६
मिल्लट	१०४	९१

य

यम	१०३	६८
युद्धशोण्ड	१०५	११७
यूथप	१०५	११९
यूथपयूथप	१०५	११९

र

रहम्	१०४	१०३
रजम्	१०३	७२
रत्न	१०४	८३
रत्न	१०४	१०९
रदन	१०४	९२
रम्भा	१०३	७४
राजन्	१०२	७
राजीवलोचन	१०५	११४
राजीवलोचना	१०५	१४३
राम	१०२	३२, ३३

रावण	१०५	१४१	विभावसु	{ १०२	८	शुक	१०४	९६
रोहिण्य	१०२	३१		{ १०३	४१	शेमुषी	१०४	९३
ल			विम्बोष्ठी	१०५	१३७	शेष	१०२	३२
लक्ष्म	१०३	६९, ७०	विरोचन	१०२	१०	शैलूष	१०४	१००
लक्ष्मण	१०३	६९	विलास	१०४	८७	ष		
ललना	१०५	१३७	विशाल	१०४	९०	पङ्कद	१०५	१३३
ललाम	१०४	८१	विप	१०२	२४	स		
ललिता	१०५	१३९	वृकोदर	१०५	११६	सवर	१०२	२७, २८
लवली	१०४	८१	वृजिन	१०४	१०९	सत्र	१०४	१०३
लावण्य	१०४	१०१	वृष	१०२	३०	सन्वर	१०४	८३
लुलाय	१०४	१०६	वृषा	१०२	३१	मदन	१०२	२६
लेखा	१०३	६१	वेहन्	१०४	१०७	सदम	१०२	२७
व			वैकर्तन	१०५	११५	सप्तपि	१००	१७
वक्रवक्त्र	१०४	८२	व्यक्तिनादिन्	१०५	१२०	सप्ताश्व	१०५	१४८
वन्ध्या	१०४	१०७	व्यञ्जन	१०४	११२	समाधि	१०५	१२४
वरवणिनी	१०५	१३८	व्याधि	१०४	१०२	समाधिस्थ	१०५	१२५
वराह	१०२	३३, ३८	श			सम्राट्	१०४	१०९
वरूथ	१०३	४७	शङ्कु	१०२	१४	सान्द्र	१०३	४२
वर्षाभू	१०४	८९	शङ्खकण्ठी	१०५	१४५	सारग	१०३	७३
वलाहक	१०३	५७	शम्भु	१०२	१३	साम्म	१०२	७
वल्लरी	१०४	११३	शरारु	१०५	१३१	सित	१०३	६६
वमा	१०४	१०७	शरीरज	१०२	३५	मुमना	१०४	११३
वमु	{ १०२	१८	शर्वरी	१०३	४२	स्थविष्ठ	१०४	९९
	{ १०३	७३	शत्रु	१०२	२३	स्थन्दन	१०२	२१
वाजी	१०४	७९	शिखरिन्	१०३	५१	स्वर	१०३	४३
वाम	१०३	३९	शिखिन्	१०२	५	ह		
वालेय	१०३	५०	शिव	१०२	२०	हम	१०२	६
वासर	१०३	४१	शिवा	१०४	९०	हरि	१०४	८०
विद्वान्	१०३	६३	शिलीमुख	१०३	६०	हिमाराति	१०२	८
विपञ्ची	१०४	११२	शीत	१०६	१५३	हिल	१०४	१०८
विपिन	१०६	१५२	शुक्रा	१०४	८१	हम्ब	१०४	११०
			शुचिकृन्	१०३	५९			

उद्धृतवाक्यानामकारादिसूची

अङ्कनाच्च तदेक्षुणा	५७	णमो अरहंताण	१	भर्ता सगर एव मृत्यु वसति	१५
अतिप्रलापभावेन	६१	तत्तु हैयङ्गधीन यद्	६१	मान्यत्वादाप्नविद्याना	२
अनशानावमौदर्यवृत्ति-	२	तत्सदेहे गते ताभ्या	५८	मुदन्ति मिश्रीभवन्ति	१२
अमूययागय निशाम्य या	३३	दुज्जण सुहियउ होउ	२२	य पापपाशनाशाय	२
आत्मनि मोक्षे ज्ञाने	५२, ५८	दुर्जनाना विनोदाय	६३	य उत्पन्न पुनाति वश	१९
आपो नारा इति प्रोक्ताः	३७	दित्रैर्व्योम्नि पुराण-	२५	यत्सर्वात्महित न वर्णसहित	५९
आयुः पीयूषकुण्डै स्मृति-	६२	न कु पृथिवी पिपति	१२	रेषणात् क्लेशराशीनाम्	२
आहुर्नेत्रोत्थमन्त्रे स्मृत-	२४	नक्षत्रमृक्ष भ तारा	२५	लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातकमुग	६१
उड्डीय वाञ्छित यान्ति	१४	नक्षत्रे वाक्षिमध्ये च	२५	वर क्षित पाणि	२२
एको रथो गजश्चैको	४५	नभन्तु नभसा सार्ध	१	वर्णांगमो गवेन्द्रादौ	
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य	६५	नवमे प्राणमन्देहो	५४	२३, २९, ४६ ५९, ६५	
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च	३४	नामाकण्ठमुरस्तालु		वाज वाजस्तु पक्षेऽपि	२७
काश्यमिन्युच्यते तेज.	५७	निषद्वरस्तु जम्बाल-	१०	वाहो युग्य धनो वाहो	२७
कियती पञ्चसहस्री	९६	निषादधर्मगान्धार	५३	वृषाकपिर्वासुदेवे	३४
कुमारकाले आमलकी-	५५	पञ्चमे दह्यते गात्रम्	५४	श्यामा रात्रिस्तु विट् श्यामा	२५
कोकिलाना स्वरो रूप	५५	पञ्चाचाररतो नित्य	५५	वड्ज मयूरा ब्रुवते	५३
क्वचित्प्रवृत्ति क्वचिदप्रवृत्ति	६०	पट्टन शकटैर्गम्य	४९	मत्य दूरे विहरति समं	१४
गिरिकन्दरदुर्गेषु	३२	पतत्रिपत्रिपतग-	२९	सन्धिर्योनी सुरङ्गाया	९६
गोमवे सुरभि हन्यात्	५६	पत्न्यङ्गस्त्रिगुणै सर्वं	४४	सर्वपस्य प्रयत्नेन	५६
गो स्वर्गं सप्रवृष्टान्या	५८	पुण्डरीक सिताम्बुजम्	१०	स व्याख्याति न शास्त्रम्	३
गोर्गाः कामदुघा	५२	पुष्पसाधारणे काले	५३	स्वस्थे नरे सुखामीने	९६
चतु षष्टिकलाभिज्ञा	१८	प्रथमे जायते चिन्ता	५४	स्वानुभूत्यै भवेद्	१
चत्वार पुरवशजा	५८	प्रशस्या न नमस्यापि	२२	हावो मुखविकार स्यात्	१७
जानमानोऽय भगवान्	३१	प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्य	२	हिसानूनस्तेया-	२
				हिरण्यगर्भमभवत्	३७

भाष्यगता ग्रन्था ग्रन्थकाराश्च

अकलङ्क	१	१	द्विसन्धानकाव्यम्	३३	१	विद्यानन्दी	१	१
अनेकार्यवनिमञ्जरी-			द्विमन्धानभाष्यम्	६१	१०	शब्दभेदः	१	१७
	२५	२१	नाममाला	७२	२०	शाश्वतः	२५	९
	२७	१३	पञ्चनन्दिशास्त्रम्	१	१९	श्रीभोज	२५	९
अमरकोषः	८७	८	पूज्यपाद	१	१	समन्तभद्र	१	१
	१०	८	बृहत्प्रति क्रमणभाष्यम्	५८	१५	सूक्तिमुक्तावली	२२	१८
अमरसिंहः	१२	१५	भरतनाटकम्	५३	२२	सोमनीतिः	४८, १९, २४, २७	
	४३	६	भारतम्	४४	४		१९	२४
	५३	२०	महापुराणम्	५७	२२, २३	हलायुधः	१०	२६
अमरसिंहनाममाला	२९	६	यश कीर्ति	५८	३, ९		१२	२४
अमरसिंहभाष्यम्	१९	१२		२२	१५	हलायुधभाष्यम्-		
आशाधरमहाभिषेक	६२	१						२९ ५
इन्द्रनन्दिनी तिशस्त्रम्	५५	२३	यशस्तिलकम्		२ १६, १९	हैमः		९४ १०
कल्याणकीर्ति	१	२			२१	हैमनाममाला		२७ १९
क्षीरस्वामी	६२	६			२५	हैमी	९६ १७, २५, २७	
डाल्लणिकः	२९	६	यशस्तिलकचम्पूकाव्यम्	९८	८	हैमीनाममाला		३४ १२

सङ्केतविवरण

अ० चि० अभिधानचिन्तामणि
अनेका० म० अनेकार्थसङ्ग्रह
अम० को० अमरकोश
अम० को० क्षी० भा० अमर-
कोश क्षीरस्वामी भाष्य
अमर० अमरकोश
अ० स० अनेकार्थसङ्ग्रह
उ० सू० उणादिसूत्र
कल्प० को० कल्पद्रुकोश
का० उ० कातन्त्र उणादि
का० ह० उ० कातन्त्र रूपमाला
उत्तरार्धं
का० ८० पू० कातन्त्र रूपमाला
पूर्वार्धं
का० ८० पू० सू० कातन्त्ररूप-
माला पूर्वार्धसूत्र

का० सू० कातन्त्रसूत्र
क्षी० भा० क्षीरस्वामीभाष्य
क्षी० स्वा० क्षीरस्वामी
जन० समु० जनपदममुद्देश
जै० सू० जैनेन्द्रसूत्र
त० सू० तत्त्वार्थसूत्र
नीतिसा० नीतिसार
नी० वा० समु० सू० नीति वाक्या-
यामृत ममुद्देशसूक्ति
प० प० पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका
पा० उ० पाणिनि उणादि
पा० गणसू० पाणिनि गणसूत्र
पात० भाष्य पातञ्जलमहाभाष्य
पा० सू० पाणिनिसूत्र
भो० उ० भोजउणादि
मे० को० वा० व० मेदिनीकोश
वास्तवर्ग

यश० नि० आ० क० यशस्तिलक
आशवास कल्प
वि० को० का० विश्वलोचनकोश
कान्तवर्ग
वि० लो० विश्वलोचन कोश
श० च० शब्दार्णवचन्द्रिका
श० च० सू० शब्दार्णवचन्द्रिका
सूत्र
शा० कारिका शाकटायन कारिका
शा० सू० शाकटायन सूत्र
सर० क० सगस्वनीकण्ठाभरण
सार० समा० सू० सागस्वत
समाम सूत्र
हे० च० हेमचन्द्र
हे० श० हेमशब्दान्तरागम

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ ५० अशुद्धयः शुद्धयः पृष्ठ ५० अशुद्धयः शुद्धयः
७ १४ सर शर ६५ ९ विषाक्षय विषक्षयः
५३ २ स्तमित स्तनित ६९ २ निकुरो निकरो
५४ २१ मुक्तोषा- मुतोषा- ७१ २१ श्वेतो श्वेनो